श्री देव-शास्त्र-गुरु स्तुति (खण्ड-१)

नवदेव-भक्ति

द्रव्य नमन हो भाव नमन, मन वच काया से करूँ नमन।
मन वच काया से करूँ नमन ।।टेक।।

तीर्थ प्रणेता श्री तीर्थंकर, वीतराग सर्वज्ञ हितंकर।
अरहंतों को करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन ।।१।।

सर्व कर्ममल से वर्जित प्रभु, ज्ञानशरीरी अशरीरी विभु।
सिद्ध प्रभु को करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन ।।२।।

पंचाचार परायण ज्ञायक, साधु संघ के सुखमय नायक।
आचार्यों को करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन ।।३।।

शास्त्र पढ़ाने के अधिकारी, तत्त्वज्ञान देते अविकारी।
उपाध्याय को करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन ।।४।।

निज स्वभाव के उत्तम साधक, रत्नत्रय के जो हैं धारक।
निर्ग्रन्थों को करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन ।।५।।

समवशरण-सम श्रीजिनमन्दिर, जिन-सम जिनप्रतिमा है सुन्दर।
भक्ति भाव से करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन ।।६।।

तरण-तारणी श्री जिनवाणी, पढ़ें-पढ़ावें नित ही ज्ञानी।
हर्षित होकर करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन ।।७।।

अनेकांतमय शाश्वत दर्शन, परम अहिंसामयी आचरण।
जैनधर्म को करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन।।८।।

इनसे सम्बन्धित सुखकारी, धर्म आयतन मंगलकारी।
यथायोग्य मैं करूँ नमन, मन वच काया से करूँ नमन ।।९।।

मंगल-प्रभात

है ज्ञान-सूर्य का उदय जहाँ, मंगल प्रभात कहलाता है।
मिथ्यात्व महातम हो विनष्ट, सम्यक्त्व कमल विकसाता है॥१॥

वस्तु का रूप यथार्थ दिखे, नहिं इष्ट-अनिष्ट दिखाता है।
है भिन्न चतुष्टयवान द्रव्य, पर लक्ष्य नहीं हो पाता है॥२॥

अतएव विकारीभाव रहित, निज सुख अनुभूति होती है।
फिर स्वयं तृप्त उस ज्ञानी के, इच्छा पिशाचनी भगती है॥३॥

तत्क्षण संवरमय भावों से, नवबंध पद्धति रुकती है।
झड़ते हैं स्वयं कर्म बंधन, शिवरमणी उसको वरती है॥४॥

समवशरण स्तुति

शोभे समवशरण सुखकार, प्रभु का समवशरण सुखकार॥टेक॥

अन्तरीक्ष जिनराज विराजे, अपने ही आधार।
मानों कहते हैं हम सबसे, पर-आश्रय दुःखकार॥१॥
प्रभु-चरणों में इन्द्रादिक के, मुकुट झुके अविकार।
मानों दर्शावें हम सबको, जग का विभव असार॥२॥
ढुरते चौंसठ चमर कहत हैं, जिनपद ही है सार।
जो अपने प्रभुवर को झुकते, वे होते भवपार॥३॥
अनन्त-चतुष्टय-युत प्रभुवर की, महिमा अपरम्पार।
दर्शावें निज शुद्धातम की, ध्रुव प्रभुता अविकार॥४॥
शुद्धातम ही श्री जिनवर की, दिव्यध्वनि का सार।
अहो ! अनुभवें आनन्दित हों, सहज नमन अविकार॥५॥

उजालों का जन्म अंधेरे की कोख में ही हुआ है। संन्यासी कोई नहीं होता, केवल न्यास बदलता है।

जिनमन्दिर-दर्शन

बहु पुण्य उदय मम आयो, सुन्दर जिन-भवन लखायो।
भव्यों को सुख का कारण, करता भवताप निवारण॥१॥

जो समवशरण सम राजै, जिनसम जिनचैत्य विराजै।
जहाँ गंधकुटी सम वेदी, सिंहासन छत्र सफेदी॥२॥

शशि द्युति से अधिक उजाले, जहाँ यक्ष चमर बहु ढोरें।
अति उन्नत शिखर बनी है, जिस पर शुभ ध्वजा लगी है॥३॥

फहरे दे शुभ सन्देशा, यहाँ दु:ख का नहीं अन्देशा।
हे सुख इच्छुक ! यहाँ आओ, दु:ख कारण पाप भगाओ॥४॥

यहाँ खुद ही भाव बदलते, सब बहुविधि पुण्य सु-करते।
सुन्दर स्तोत्र उचारें, ध्वनि गगन माँहिं गुंजारें॥५॥

कोई शुभ पूजन करिके, कोई ध्यान प्रभु का धरिके।
जग की सब सुधि बुधि खोते, निज सुख में मग्न सु होते॥६॥

जहाँ शास्त्र सभा है होती, जिससे मिथ्या मति भगती।
कोई लीन धर्म चर्चा में, देखत उठती शुभ लहरें॥७॥

मधि मारबाड संसार, यह वृक्ष है छायादार।
भववन में पथिक भटकते, अकुलाते धैर्य न धरते॥८॥

उन सबको आश्रय दाता, जिनमन्दिर जग में त्राता।
प्रभु हर्ष प्रसंग महा है, जिनमन्दिर दर्श मिला है॥९॥

सत् देव-शास्त्र-गुरु पाये, रोमांच काय में आये।
शुभभाव हृदय में जागा, अज्ञान प्रमाद सु भागा॥१०॥

अब मैं चाहूँ जगदीश, निज चैत्य बनाऊँ ईश।
परिणति करूँ मैं मन्दिर, ध्रुव ज्ञान चैत्य उस अन्दर॥११॥

अरु करूँ प्रतिष्ठा भारी, मेटूँ आरति संसारी।
प्रभु भेदभक्ति को त्यागूँ, अरु निज अभेद में पागूँ॥१२॥

जिन-भक्ति

घड़ी जिनराज दर्शन की, हो आनंदमय हो मंगलमय,
घड़ी यह सत्समागम की, हो आनंदमय हो मंगलमय ॥१॥

अहो प्रभु भक्ति जिनपूजा, और स्वाध्याय तत्त्व-निर्णय,
भेद-विज्ञान स्वानुभूति, हो आनंदमय हो मंगलमय॥२॥

असंयम भाव का त्यागन, सहज संयम का हो पालन,
अनूपम शान्त जिन-मुद्रा, हो आनंदमय हो मंगलमय॥३॥

क्षमादिक धर्म स्वाश्रय से, सहज वर्ते सदा वर्ते,
परम निर्ग्रन्थ मुनि जीवन, हो आनंदमय हो मंगलमय॥४॥

हो अविचल ध्यान आतम का, कर्म बंधन सहज छूटें,
अचल ध्रुव सिद्ध पद प्रगटे, हो आनंदमय हो मंगलमय॥५॥

जिन-भक्ति

शुभ काललब्धि जागी भगवन, मैं पास आपके आया हूँ।
जागा है स्वपर विवेक अहो, निज महिमा लखि हर्षाया हूँ॥१॥

जिनवर गुणगान अहो निजगुण, चिन्तन का एक बहाना है।
तुम साक्षी में प्रभुवर मुझको, निज शुद्धातम को ध्याना है॥२॥

मैं नहीं अन्य कुछ तुम-सम प्रभु, चिन्मूरति श्रद्धा आई है।
स्थिर स्वरूप आनन्दमयी, कृतकृत्य दृष्टि प्रगटाई है॥३॥

मैं कालातीत अखण्ड अनादि, अविनाशी ज्ञायक प्रभु हूँ।
प्रतिसमय-समय में पूर्ण अहो, ज्ञाता-दृष्टा ज्ञायक ही हूँ॥४॥

आनन्द प्रवाह अजस्र बहे, मैं सहज स्वयं आनन्दमय हूँ।
आनन्दमयी मेरा जीवन, मैं तो सदैव आनन्दमय हूँ॥५॥

मम ज्ञान में ज्ञान ही भासित हो, फिर लोकालोक भले झलके।
पर्यय निज में ही मग्न रहे, वस कालावली अनन्त बहे॥६॥

जिन-भक्ति

धन्य घड़ी मैं दर्शन पाया, आज हृदय में आनन्द छाया।
श्री जिनबिम्ब मनोहर लखकर, जिनवररूप प्रत्यक्ष दिखाया॥१॥

मुद्रा सौम्य अखण्डित दर्पण, में निजभाव अखण्ड लखाया।
निज महिमा सर्वोत्तम लखकर, फूला उर में नहीं समाया॥२॥

राग प्रतीक जगत में नारी, शस्त्र द्वेष का चिह्न बताया।
वस्त्र वासना के लक्षण हैं, इन बिन निर्विकार है काया॥३॥

जग से निस्पृह अन्तर्दृष्टि, लोकालोक तदपि झलकाया।
अद्‌भुत स्वच्छ ज्ञानदर्पण में, मुझको ज्ञानहि ज्ञान सुहाया॥४॥

कर पर कर देखे मैं जब से, नहिं कर्त्तृत्वभाव उपजाया।
आसन की स्थिरता ने प्रभु, दौड़-धूप का भाव भगाया॥५॥

निष्कलंक अरु पूर्ण विरागी, एकहि रूप मुझे प्रभु भाया।
निश्चय यही स्वरूप सु मेरा, अन्तर में प्रत्यक्ष मिलाया॥६॥

जिनमुद्रा दृष्टि में बस गई, भव स्वाँगों से चित्त हटाया।
'आत्मन्' यही दशा सुखकारी, होवे भाव हृदय उमगाया॥७॥

जिन-भक्ति

कैसी सुन्दर जिनप्रतिमा है, कैसा सुन्दर है जिनरूप।
जिसे देखते सहज दीखता, सबसे सुन्दर आत्मस्वरूप॥ टेक ॥

नग्न दिगम्बर नहीं आडम्बर, स्वाभाविक है शांत स्वरूप।
नहीं आयुध नहीं वस्त्राभूषण, नहीं संग नारी दुखरूप॥कैसी.॥

बिन शृङ्गार सहज ही सोहे, त्रिभुवन माँहीं अतिशय रूप।
कायोत्सर्ग दशा अविकारी, नासादृष्टि आनन्दरूप॥कैसी.॥

अर्हत् प्रभु की याद दिलाती, दर्शाती अपना प्रभु रूप।
बिन बोले ही प्रगट कर रही, मुक्तिमार्ग अक्षय सुखरूप॥कैसी.॥

जिसे देखते सहज नशावें, भव-भव के दुष्कर्म विरूप।
भावों में निर्मलता आवे, मानो हुये स्वयं जिनरूप।।कैसी.।।

महाभाग्य से दर्शन पाया, पाया भेद-विज्ञान अनूप।
चरणों में हम शीश नवावें, परिणति होवे साम्यस्वरूप।।कैसी.।।

प्रभु-दर्शन

अद्‌भुत प्रभुता आज निहारी, आनन्द उर न समाया है।
मानो रंक लही चिन्तामणि, त्यों निज वैभव पाया है।।१।।

ध्रुव चैतन्यमयी जीवन लख, जन्म अरु मरण नशाया है।
दर्शन ज्ञान चक्षु दो शाश्वत, लोकालोक दिखाया है।।२।।

सुख शक्ति देखी क्या मानो, सुख सागर लहराया है।
निज सामर्थ्य अनन्त निहारी, ओर-छोर नहिं पाया है।।३।।

अब स्वाधीन अखण्ड प्रतापी, शोभायुत प्रभु भाया है।
निज के सब भावों में व्यापक, विभु प्रत्यक्ष दिखाया है।।४।।

सदा प्रकाशित परम स्वच्छ, मोहान्धकार विनशाया है।
स्वानुभूति से निज अन्तर में, निजानंद रस पाया है।।५।।

अध्यवसान मुक्ति का भी नहिं, मुक्त स्वरूप दिखाया है।
परमतृप्ति उपजी अब मेरे, निज में सर्वस्व पाया है।।६।।

हो निस्पृह उपकारी प्रभुवर, निजपद हमें दिखाया है।
भावसहित वन्दन हे जिनवर, ये रहस्य दरशाया है।।७।।

जिन स्तवन

जय जय जिनवर जय जय जिनवर, है दर्श आपका मंगलकर।
स्मरण आपका मंगलकर।।टेक।।

पूजक से नहीं राग जिनेश्वर, निंदक से नहिं द्वेष है।
वीतराग सर्वज्ञ ज्ञान में, झलके विश्व अशेष है।
धर्मतीर्थ के परम-प्रणेता, दिव्यध्वनि है जग हितकर।।जय.।।

षट् द्रव्यों का सहज परिणमन, होय सदा स्वाधीन है।
ज्यों-ज्यों उलझे पर-द्रव्यों में, भोगे दु:ख असीम हैं।।
भेदज्ञान का मंत्र सिखाया, सब ही को आनन्दकर।।जय.।।

परमानन्दमय चित्स्वरूप ही, लोकोत्तम अभिराम है।
ध्येय यही है आराधन से, हो परिणति निष्काम है।
नाथ आपसे ही यह सीखा, स्वानुभूति ही है सुखकर।।जय.।।

होय प्रभु निर्ग्रन्थ मौन हो, ध्याऊँ आतमराम मैं।
निज प्रभुता में तृप्त रहूँ, विभु सहज लहूँ शिवधाम मैं।
यही वंदना, यही अर्चना, संवेदन वर्ते सुखकर।।जय.।।

देव दर्शन

तीन भुवन के स्वामी मेरे, आया सुखद सबेरा।
आनन्द उर न समाये, प्रभुवर दर्शन पाया तेरा।।टेक।।

वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, हम सुनी नहीं जिनवाणी।
कर्ता-धर्ता तुमको माना, कर बैठा नादानी।।
तुम तो साक्षीभूत जगत के, दूर हुआ भ्रम मेरा।।१।।

कण-कण है स्वाधीन जगत का तुमने प्रभु बतलाया।
निज-पर के कर्तापन का भ्रम जिनवर दूर भगाया।।
सर्व विकल्प शून्य आनन्दमय, जिनवर दर्शन तेरा।।२।।

तन-मन कर्म रंग-रागादिक देते भिन्न दिखाई।
सम्यग्ज्ञान कला उर जागी, निज प्रभुता मैं पाई।।
मुक्त स्वरूप अहो प्रगटा अब, सफल हुआ भव मेरा।।३।।

सम्यक् हुई प्रतीति प्रभुवर, तुम सम ही प्रभु मैं हूँ।
हूँ गुणधाम सहज अभिराम, सु आनन्द धाम सदा हूँ।।
निज में ही रम जाऊँ विभुवर, अभिनन्दन है तेरा।।४।।

जिन दर्शन

ऐसा ही प्रभु मैं भी हूँ, ये प्रतिबिम्ब सु मेरा है।
भली भाँति मैंने पहिचाना, ऐसा रूप सु मेरा है॥टेक॥

ज्ञान शरीरी अशरीरी प्रभु, सब कर्मों से न्यारा है।
निष्क्रिय परमप्रभु ध्रुव ज्ञायक अहो प्रत्यक्ष निहारा है॥
जैसे प्रभु सिद्धालय राजे, वही स्वरूप सु मेरा है॥ ऐसा.॥

रागादि दोषों से न्यारा, पूर्ण ज्ञानमय राज रहा।
असम्बद्ध सब परभावों से, चेतन-वैभव छाज रहा॥
बिन्मूरति चिन्मूरति अनुपम ज्ञायक भाव सु मेरा है॥ ऐसा.॥

दर्शन-ज्ञान अनन्त विराजे, वीर्य अनन्त उछलता है।
सुख सागर अन्तर लहरावे, ओर-छोर नहिं दिखता है॥
परम-पारिणामिक अविकारी, ध्रुव स्वरूप ही मेरा है॥ ऐसा.॥

ध्रुव दृष्टि प्रगटी अब मेरे, ध्रुव में ही स्थिरता हो।
ज्ञेयों में उपयोग न जावे, ज्ञायक में ही रमता हो॥
परम स्वच्छ स्थिर आनन्दमय, शुद्धस्वरूप ही मेरा है॥ ऐसा.॥

जिन-स्तवन

कैसा अद्‌भुत शान्त स्वरूप, अक्षय मंगलमय जिनरूप॥टेक॥

अहो परम मंगल के काज, हमने पहिचाने जिनराज।
जिन-समान ही आत्मस्वरूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥१॥

कर्म कलंक हुए नि:शेष, अनन्त-चतुष्टय भाव विशेष।
निर्विकल्प चैतन्य स्वरूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥२॥

अद्‌भुत महिमा मंडित देव, सब संक्लेश नशें स्वयमेव।
तदपि अकर्ता ज्ञाता रूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥३॥

सर्व कामना सहज नशावें, निजगुण निज में ही प्रगटावें।
विलसे निज आनन्द स्वरूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥४॥

शरण में आये हे जिननाथ, दर्शन पाकर हुए सनाथ।
प्रगट दिखाया ज्ञायक रूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥५॥

बाह्य सुखों की नहीं कामना, शिवसुख की हो रही भावना।
ध्यावें ध्रुव शुद्धात्म स्वरूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥६॥

भक्ति भाव से शीश नवावें, अन्तर्मुख हो प्रभु को पावें।
प्रभु प्रभुता जग माँहिं अनूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥७॥

धन्य हुए कृत-कृत्य हुए हैं, सर्व मनोरथ सिद्ध हुए हैं।
मानों हुए अभी शिव रूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥८॥

कैसा सुख अरु कैसा ज्ञान, वचनातीत अहो भगवान।
सहज मुक्त परमात्म स्वरूप॥ कैसा अद्‌भुत शान्त.......॥९॥

जिन-स्तवन

है यही भावना हे स्वामिन्, तुम सम ही अन्तर्दृष्टि हो।
है यही कामना हे प्रभुवर, तुम सम ही अन्तर्वृत्ति हो॥टेक॥

तुमको पाकर सन्तुष्ट हुआ, निज शाश्वतपद का भान हुआ।
पर तो पर ही है देह स्वाँग, तुमको लख भेद-विज्ञान हुआ॥
मैं ज्ञानानंद स्वरूप सहज, ज्ञानानन्दमय मम सृष्टि हो॥है यही...१॥

तुम निर्मोही रागादि रहित, निष्काम परम निर्दोष प्रभो।
निष्कर्म, निरामय, निष्कलंक, निर्ग्रन्थ सहज अक्षोभ अहो॥
मेरा भी ऐसा ही स्वरूप, अनुभूति धर्ममय वृष्टि हो॥है यही...२॥

इन्द्रादिक चरणों में नत हों, पर आप परम निरपेक्ष रहो।
अक्षयवैभव अद्‌भुत प्रभुता, लखते ही चित आनन्दमय हो॥
हे परमपुरुष आदर्श रहो, उर में निष्काम सु-भक्ति हो॥है यही...३॥

संसार प्रपंच महा-दुखमय, मेरा मन अति ही घबड़ाया।
होकर निराश सबसे प्रभुवर, मैं चरण शरण में हूँ आया॥
मम परिणति में भी स्वाश्रय से, रागादिक की निवृत्ति हो॥है यही...४॥

जगख्याति-लाभ की चाह नहीं, हो प्रगट आत्मख्याति जिनवर।
उपसर्गों की परवाह नहीं, आराधन हो सुखमय प्रभुवर॥
सब कर्म कलंक सहज विनशें, विभु निजानन्द में तृप्ति हो॥है यही...५॥

सनाथाष्टक

देवों के देव श्री जिनदेव। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥टेक॥
महापुण्य से दर्शन पाया, भक्तिभाव उर में उमगाया।
स्वयमेव चरणों में झुकता है माथ। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥१॥

तुम ही हो जग में शरण सहारे, निरपेक्ष बांधव हो तुम ही हमारे।
अहो अहो तुम ही हो सांचे तात। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥२॥

तुम से विमुख रह बहुदुख उठाये, आज विघन सब सहज नशाये।
दर्शन से स्वामी हुये हम सनाथ। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥३॥

तत्त्वों का स्पष्ट ज्ञान हुआ है, निजपर का भेद-विज्ञान हुआ है।
अनुभव में आया है चैतन्य नाथ। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥४॥

जग से उदासी हुयी सुखकारी, दूर हुये दुर्भाव विकारी।
मन में बसी है छवि मुनिनाथ। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥५॥

वीतराग-निर्दोष सर्वज्ञ तुम्हीं हो, तीर्थ प्रणेता हितैषी तुम्हीं हो।
समवशरण में न हो दिन-रात। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥६॥

चतुर्निकाय के इंद्र नमत हैं, चक्री नरेन्द्र मृगेन्द्र नमत हैं।
मुनीन्द्र गणीन्द्र नवावत हैं माथ। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥७॥

रत्नत्रयमार्ग प्रभु ने दिखाया, मोक्षार्थी भव्यों को अन्तर में भाया।
हो ऐसा बल ध्यावें हम निज नाथ। नाथों के नाथ श्री जिननाथ॥८॥

दर्शन-स्तुति

(तर्ज-निरखी निरखी मनहर मूरति...)

लखी-लखी प्रभु वीतराग छवि, आज मैं जिनेन्द्रा।
भूली-भूली निज निधि पाई, आज मैं जिनेन्द्रा॥टेक॥

तुम्हें देखकर अब तो मैंने, निज को निज से जान के।
निज का शाश्वत वैभव पाया, आपा स्वयं पिछान के॥
पर आश्रय के सब दुख विनशे, आज हो जिनेन्द्रा॥लखी.१॥

आतम सुखमय सुख का कारण, आज स्वयं ही देखा है।
आतम के आश्रय से जिनवर, मिटे करम की रेखा है॥
अपने में स्थिरता पाऊँ, चाहूँ यही जिनेन्द्रा॥लखी.२॥

तुझ सी ही प्रभुता है निज में, नहीं मुझे कुछ करना है।
'है' की मात्र प्रतीति अनुभव, थिरता से शिव होना है॥
सब संकल्प-विकल्परहित हो, निज ध्याऊँ जिनेन्द्रा ॥लखी.३॥

दर्शन-स्तुति

नाथ तुम्हारे दर्शन से, निज दर्शन मैंने पाया।
तुम जैसी प्रभुता निज में लख, चित मेरा हर्षाया॥टेक॥

तुम बिन जाने निज से च्युत हो, भव-भव में भटका हूँ।
निज का वैभव निज में शाश्वत, अब मैं समझ सका हूँ॥
निज प्रभुता में मगन होऊँ, मैं भोगूँ निज की माया॥नाथ.॥

पर्यय में पामरता, तब भी द्रव्य सुखमयी राजे।
लक्ष्य तजूँ पर्यायों का, निजभाव लखूँ सुख काजे॥
पर्यायों में अटक-भटक कर, मैं बहु दुःख उठाया॥नाथ.॥

पद्मासन थिर मुद्रा, स्थिरता का पाठ पढ़ाती।
निजभाव लखे से सुख होता, नासादृष्टी सिखलाती॥
कर पर कर ने कर्तृत्व रहित, सुखमय शिवपंथ सुझाया॥नाथ.॥

यही भावना अब तो भगवन, निज में ही रम जाऊँ।
आधि-व्याधि-उपाधि रहित, मैं परमसमाधि पाऊँ॥
ज्ञानानन्दमय ध्रुव स्वभाव ही, अब मेरे मन भाया॥नाथ.॥

जिन-दर्शन

आज अद्भुत छवि निज निहारी, भाव दूर भगे सब विकारी।
पूर्ण प्रभुता प्रभु सी लखाई, दीनता आज सारी पलाई॥टेक॥

मैं स्वयं ही सहज सुख सागर, चेतनादिक गुणों का हूँ आगर।
शक्ति शाश्वत अपरिमित सु-धारी, आज अद्भुत छवि निज निहारी॥१॥

निज प्रदेशत्व रूपी किला है, जो कभी ना किसी से भिदा है।
कर्म रागादि भी रहते बाहर, पैठ पायें कदापि न अन्दर॥
अन्तरंग में सदा अविकारी, आज अद्भुत छवि निज निहारी॥२॥

भूल से हीन मैंने था माना, आज देखा स्वयं का निधाना।
अहा! वैभव अगुरुलघु ही पाया, द्रव्यपन ज्यों का त्यों ही लखाया।
अब जरूरत सभी की विसारी, आज अद्भुत छवि निज निहारी॥३॥

जागी सम्यक्ज्ञान कला है, दूर भागी मिथ्यात्व बला है।
मुक्ति मुझको तो मुझमें ही दिखती, दृष्टि बाहर कहीं भी न टिकती॥
होवे थिरता प्रभो सुखकारी, आज अद्भुत छवि निज निहारी॥४॥

धन्य अवसर प्रभो आज पाया, मुझे निज का माहात्म्य दिखाया।
निज ही सर्वोत्कृष्ट सही है, कामना अब नहीं कुछ रही है॥
मैं तो मंगलमय चिन्मूर्तिधारी, आज अद्भुत छवि निज निहारी॥५॥

प्रभु-दर्शन

प्रभु वीतराग मुद्रा तेरी, कह रही मुझे निधि मेरी है।
हे परमपिता त्रैलोक्यनाथ, मैं करूँ भक्ति क्या तेरी है॥१॥

ना शब्दों में शक्ति इतनी, जो वरण सके तुम वैभव को।
बस मुद्रा देख हरष होता, आतम निधि जहाँ उकेरी है॥२॥

इससे दृढ़ निश्चय होता है, सुख ज्ञान नहीं है बाहर में।
सब छोड़ स्वयं में रम जाऊँ, अन्तर में सुख की ढेरी है॥३॥

नहिं दाता हर्ता कोई है, सब वस्तु पूर्ण हैं निज में ही।
पूर्णत्व भाव की हो श्रद्धा, फिर नहीं मुक्ति में देरी है॥४॥

देव-स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, सविनय शीश नवाऊँ।
यही भावना मेरी भगवन्, तुम समान बन जाऊँ॥१॥

तेरे दर्शन से हे प्रभुवर, अन्तर-ज्योति जलाऊँ।
तेरी वाणी से मैं अद्भुत, भेदज्ञान प्रगटाऊँ॥२॥

मैं अविनाशी देह विनाशी, ऐसी श्रद्धा लाऊँ।
चाह दाह आकुलता मेटूँ, ज्ञान-विराग बढ़ाऊँ॥३॥

मैं नहिं पर का पर नहिं मेरा, सुखराशी पद पाऊँ।
आपरूप अपना पद पाकर, अपने में रम जाऊँ॥४॥

ज्ञाता-दृष्टा बनकर पर का, कर्ता-भोक्ता भाव मिटाऊँ।
राग-द्वेष-मोहादिक बन्धन, से छुटकारा पाऊँ॥५॥

मैं चिद्पिण्ड अखण्ड अमूरति, जन्म-मरण नहिं चाहूँ।
चिदानन्द ध्रुव आतम मेरा, अक्षय सुख सरसाऊँ॥६॥

परमातम जो शक्ति छिपी है, उसको अब प्रगटाऊँ।
निजस्वभाव में थिर हो स्वामी, भव सागर तिर जाऊँ॥७॥

भूल करना मानव की कमजोरी है, लेकिन उसे स्वीकार कर उसमें सुधार करना मानव की ताकत है।

सत्य का पक्ष ही निष्पक्ष है।

तीर्थ-वन्दना

(चौपाई)

तीर्थ-वन्दना मंगलकारी, तीर्थ-वन्दना आनन्दकारी ॥टेक॥

महाभाग्य से हो जिनदर्शन, महाभाग्य से चरण-स्पर्शन ॥
भाव-विशुद्धि हो सुखकारी, तीर्थ-वन्दना मंगलकारी ॥१॥

प्रभु की शांतछवि को निरखें, परमतत्त्व को अब हम परखें।
शाश्वत ज्ञायक प्रभु अविकारी, तीर्थ-वन्दना मंगलकारी ॥२॥

आत्म साधना की यह भूमि, धर्म आराधन की यह भूमि।
भायें तत्त्व-भावना प्यारी, तीर्थ-वंदना मंगलकारी ॥३॥

यहाँ संतों की याद सु-आये, मुक्तिमार्ग में मन ललचाये।
छूटे जग प्रपंच दुखकारी, तीर्थ-वन्दना मंगलकारी ॥४॥

अहो जिनेश्वर क्या कहते हैं, सदा सहज निज में रहते हैं।
हम भी होवें शिवमगचारी, तीर्थ-वन्दना मंगलकारी ॥५॥

हो सम्यक् श्रद्धान हमारा, हो निर्मल सद्ज्ञान हमारा।
होवें सम्यक् चारित्रधारी, तीर्थ-वन्दना मंगलकारी ॥६॥

नहीं कामना भोगों की हो, नहीं याचना वैभव की हो।
प्रभु सम प्रभुता होय हमारी, तीर्थ-वंदना मंगलकारी ॥७॥

भक्ति भाव से प्रभु गुण गावें, प्रभु को हृदय माँहिं वसावें।
सफल वंदना होय हमारी, तीर्थ-वंदना मंगलकारी ॥८॥

आत्मा में ज्ञान तो सबके है,
पर धन्य वे हैं जिनके ज्ञान में आत्मा है।

जितना अधिक बाह्य में सुख ढूंढ़ेगा,
उतना ही अधिक दुखी होगा।

नित जयवंत प्रभु दर्शाती ...

नित जयवंत प्रभु दर्शाती, जिनवाणी जयवंत रहे ॥टेक॥

निज अक्षय वैभव दर्शाती, निज शाश्वत प्रभुता दर्शाती।
आनन्दमय ज्ञायक दर्शाती, जिनवाणी जयवंत रहे ॥१॥

सब संसार असार दिखाती, सारभूत समयसार दिखाती।
साँचा मुक्तिमार्ग दिखाती, जिनवाणी जयवंत रहे ॥२॥

नव तत्त्वों का स्वांग दिखाती, भिन्न सहज चिद्रूप दिखाती।
ज्ञानमात्र शिवरूप दिखाती, जिनवाणी जयवंत रहे ॥३॥

अन्तर द्रव्य दृष्टि प्रकटाती, अनेकांतमय ज्योति जगाती।
परम अहिंसा ध्वज फहराती, जिनवाणी जयवंत रहे ॥४॥

सत्य शील सन्तोष जगाती, अविनाशी सुख शांति दिखाती।
भाव नमन हो सहज नमन हो, जिनवाणी जयवंत रहे ॥५॥

माँ जिनवाणी मुझ अन्तर में...

माँ जिनवाणी मुझ अन्तर में, होकर मुझ रूप समा जाओ।
शान्त शुद्ध ध्रुव ज्ञायक प्रभु की, महिमा प्रतिक्षण दर्शाओ ॥टेक॥

चैतन्य नाथ की बात सुने से, अद्भुत शान्ति मिलती है।
मानो निज वैभव प्रकट हुआ, सब आधि-व्याधि टलती है ॥१॥

ज्ञायक महिमा सुनते-सुनते, बस ज्ञायकमय जीवन होवे।
निज ज्ञायक में ही रम जाऊँ, सुनने का भाव विलय होवे ॥२॥

हे माँ तेरा उपकार यही, प्रभु सम प्रभु रूप दिखाया है।
चैतन्य रूप की बोधक माँ, मैं सविनय शीश नवाया है ॥३॥

परम उपकारी जिनवाणी...

परम उपकारी जिनवाणी, सहज ज्ञायक बताया है।
हुआ निर्भार अन्तर में, परम आनन्द छाया है ॥टेक॥

अहो परिपूर्ण ज्ञाता रूप, प्रभु अक्षय विभवमय हूँ।
सहज ही तृप्त निज में ही, न बाहर कुछ सुहाया है॥१॥

उलझकर दुर्विकल्पों में, बीज दुख के रहा बोता।
ज्ञान आनन्दमय अमृत, धर्म माता पिलाया है॥२॥

नहीं अब लोक की चिन्ता, नहीं कर्मों का भय किंचित्।
ध्येय निष्काम ध्रुव ज्ञायक, अहो दृष्टि में आया है॥३॥

मिटी भ्रान्ति मिली शान्ति, तत्त्व अनेकान्तमय जाना।
सार वीतरागता पाकर, शीश सविनय नवाया है॥४॥

मंगलमय है जिनवाणी...

मंगलमय है जिनवाणी, आनंदमय है जिनवाणी।
नित्य बोधिनी जिनवाणी, जग कल्याणी जिनवाणी॥१॥

साँची माता जिनवाणी, संकट त्राता जिनवाणी।
सब सुख दाता जिनवाणी, मोक्ष प्रदाता जिनवाणी॥२॥

मोह भगावे जिनवाणी, ज्ञान बढ़ावे जिनवाणी।
काम नशावे जिनवाणी, वैराग्य जगावे जिनवाणी॥३॥

निजानंद रस बरसानी, निज निधि निज में ही जानी।
कोई नहीं जिसकी सानी, सहज नमूँ माँ जिनवाणी॥४॥

बोलो जय जयकार...

बोलो जय जयकार, जिनवाणी सुखकार।
जय जयकार, जय जयकार, जय जयकार॥ बोलो...॥टेक॥

तू एकान्त नशानेवाली, अनेकान्त दरशाने वाली।
मुक्तिमार्ग बतलानेवाली, नाशक मिथ्याचार॥बोलो...॥१॥

तुझसे ही जग में उजियाला, तू पवित्र श्रुतज्ञान निराला।
है शुभ गुण मंडित मणिमाला, तू जग का शृङ्गार॥ बोलो...॥२॥

तीर्थंकर प्रभु की है वाणी, अंजुलि भर भर पीवें ज्ञानी।
आत्म-ज्ञान पावें भवि प्राणी, तू ही जग आधार॥ बोलो...॥३॥

सम्यक् दर्शन मित्र हमारा, सम्यक् ज्ञान विचित्र हमारा।
सत् सम्यक् चारित्र हमारा, मुक्ति मार्ग हितकार॥ बोलो...॥४॥

माँ हमको स्वात्माभिमान दे, रत्नत्रय का सहज दान दे।
कर्म-विनाशक विमलज्ञान दे, वरद स्व-पाणि पसार॥ बोलो...॥५॥

तू ही रक्षक जननि हमारी, तन-मन-धन तुझ पर बलिहारी।
पावें निज स्वभाव अविकारी, वन्दन बारम्बार॥ बोलो...॥६॥

शिवसुखदानी है जिनवाणी...

शिवसुखदानी है जिनवाणी॥टेक॥
स्वयं स्वयं को भूल गयो है, मोह महातम छाय रहो है।
दूर करन सूरज जानी, शिवसुखदानी है................॥१॥

परभावों से भिन्न स्व आतम, ज्ञानरूप शाश्वत परमातम।
द्रव्यदृष्टि से दर्शानी, शिवसुखदानी है.............॥२॥

स्याद्वाद शैली अति प्यारी, वस्तुस्वरूप दिखावन हारी।
अनेकान्तमय गुणखानी, शिवसुखदानी है............॥३॥

जिनवाणी अभ्यास करें जो, सम्यक् तत्त्व प्रतीति धरें जो।
पावें निश्चय शिव रजधानी, शिवसुखदानी है.........॥४॥

शीश नवावें श्रद्धा लावें, जिनवाणी नित पढ़े पढ़ावें।
रागादिक की हो हानी, शिवसुखदानी है.............॥५॥

नमों मैं सदा ही श्री जिनवाणी...

नमों मैं सदा ही श्री जिनवाणी।
हमें आत्म-प्रभुता दिखाती है वाणी॥टेक॥

परम ज्ञान दाता यही धर्म माता।
हमें मुक्ति मारग दिखाती है वाणी॥ नमो मैं...॥१॥
विरह ज्ञानियों का हमें है सताता।
संदेश उनका सुनाती है वाणी॥ नमो मैं...॥२॥
परम वीतरागी हुए होंगे ज्ञानी।
सु परिचय सभी का कराती है वाणी॥ नमो मैं...॥३॥
गुरुवर का उपदेश तत्काल बोधक।
सतत बोधिनी है कही जिनवाणी॥ नमो मैं...॥४॥
महामोह अंधेर जगभर में छाया।
सहज ज्ञान सूरज उगाती है वाणी॥ नमो मैं...॥५॥
विषय चाह दावाग्नि लागी भयंकर।
उसे ज्ञान जल से बुझाती है वाणी॥ नमो मैं...॥६॥
महिमा स्वयं की स्वयं ही न जानी।
हमें आत्म प्रत्यक्ष दिखाती है वाणी॥ नमो मैं...॥७॥
समझकर स्वयं में ही रम जावें यदि हम।
हमें भी परम प्रभु बनाती है वाणी॥ नमो मैं...॥८॥
सबके हृदय में बसे जिनवाणी।
परम शान्ति पावें सभी भव्य प्राणी॥ नमो मैं...॥९॥

गुरु निर्ग्रन्थ परिग्रह....

गुरु निर्ग्रन्थ परिग्रह त्यागी, भव-तन-भोगों से वैरागी।
आशा पाशी जिनने छेदी, आनंदमय समता रस वेदी॥१॥
ज्ञान-ध्यान-तप लीन रहावें, ऐसे गुरुवर मोकों भावें।
हरष-हरष उनके गुण गाऊँ, साक्षात् दर्शन मैं पाऊँ॥२॥
उनके चरणों शीश नवाकर, ज्ञानमयी वैराग्य बढ़ाकर।
उनके ढिंग ही दीक्षा धारूँ, अपना पंचमभाव संभारूँ॥३॥
सकलप्रपंच रहित हो निर्भय, साधूँ आतमप्रभुता अक्षय।
ध्यान अग्नि में कर्म जलाऊँ, दुखमय आवागमन नशाऊँ॥४॥

धन्य-धन्य मुनिवर का जीवन...

धन्य-धन्य मुनिवर का जीवन, होवे प्रचुर आत्म संवेदन।
धन्य-धन्य जग में शुद्धातम, धन्य अहो आतम आराधन॥१॥

होय विरागी सब परिग्रह तज, शुद्धोपयोग धर्म का धारन।
तीन कषाय चौकड़ी विनशी, सकल चरित्र सहज प्रगटावन॥२॥

अप्रमत्त होवें क्षण-क्षण में, परिणति निज स्वभाव में पावन।
क्षण में होय प्रमत्तदशा फिर, मूल अट्ठाईस गुण का पालन॥३॥

पञ्च महाव्रत पञ्च समिति धर, पञ्चेन्द्रिय जय जिनके पावन।
षट् आवश्यक शेष सात गुण, बाहर दीखे जिनका लक्षण॥४॥

विषय कषायारम्भ रहित हैं, ज्ञान ध्यान तप लीन साधुजन।
करुणा बुद्धि होय भव्यों प्रति, करते मुक्ति मार्ग सम्बोधन॥५॥

रचना शुभ शास्त्रों की करते,निरभिमान निस्पृह जिनका मन।
आत्मध्यान में सावधान हैं, अद्भुत समतामय है जीवन॥६॥

घोर परिषह उपसर्गों में, चलित न होवे जिनका आसन।
अल्पकाल में वे पावेंगे, अक्षय, अचल, सिद्ध पद पावन॥७॥

ऐसी दशा होय कब 'आत्मन्', चरणों में हो शत-शत वंदन।
मैं भी निज में ही रम जाऊँ, गुरुवर समतामय हो जीवन॥८॥

धन्य मुनिराज की समता...

धन्य मुनिराज की समता, धन्य मुनिराज का जीवन।
धन्य मुनिराज की थिरता, प्रचुर वर्ते स्वसंवेदन॥टेक॥

शुद्ध चिद्रूप अशरीरी लखें, निज को सदा निज में।
सहज समभाव की धारा, बहे मुनिवर के अंतर में॥
है पावन अन्तरंग जिनका, है बहिरंग भी सहज पावन॥ धन्य...॥१॥

कर्मफल के अवेदक वे, परम आनंद रस वेदें।
कर्म की निर्जरा करते, बढ़े जायें सु शिवमग में॥
मुक्ति पथ भव्य प्रकटावें, अहो करके सहज दर्शन॥ धन्य... ॥२॥

परम ज्ञायक के आश्रय से, तृप्त निर्भय सहज वर्ते।
अवांछक निस्पृही गुरुवर, नवाऊँ शीश चरणन में॥
अन्तरंग हो सहज निर्मल, गुणों का होय जब चिन्तन॥ धन्य...॥३॥

जगत के स्वांग सब देखे, नहीं कुछ चाह है मन में।
सुहावे एक शुद्धातम, आराधूँ होंस है मन में॥
होय निर्ग्रन्थ आनन्दमय, आपसा मुक्तिमय जीवन॥ धन्य... ॥४॥

भावना सहज ही होवे, दर्श प्रत्यक्ष कब पाऊँ।
नशे रागादि की वृत्ति, अहो निज में ही रम जाऊँ॥
मिटे आवागमन होवे, अचल ध्रुव सिद्धगति पावन॥धन्य...॥५॥

धनि मुनिराज हमारे हैं...

धनि मुनिराज हमारे हैं॥टेक॥

सकल प्रपंच रहित निज में रत, परमानन्द विस्तारे हैं।
निर्मोही रागादि रहित हैं, केवल जानन हारे हैं॥१॥

घोर परिषह उपसर्गों को, सहज ही जीतन हारे हैं।
आत्मध्यान की अग्निमाँहिं जो सकल कर्म-मल जारे हैं॥२॥

साधैं सारभूत शुद्धातम, रत्नत्रय निधि धारे हैं।
तृप्त स्वयं में तुष्ट स्वयं में, काम-सुभट संहारे हैं॥३॥

सहज होंय गुण मूल अट्ठाईस, नग्न रूप अविकारे हैं।
वनवासी व्यवहार कहत हैं, निज में निवसन हारे हैं॥४॥

वनवासी सन्तों को नित....

वनवासी सन्तों को नित ही, अगणित बार नमन हो।
द्रव्य-नमन हो भाव-नमन हो, अरु परमार्थ-नमन हो॥टेक॥
गृहस्थ अवस्था से मुख मोड़ा, सब आरम्भ परिग्रह छोड़ा।
ज्ञान-ध्यान-तप लीन मुनीश्वर, अगणित बार नमन हो॥१॥
जग विषयों से रहे उदासी, तोड़ी जिनने आशा पाशी।
ज्ञानानंद विलासी गुरुवर, अगणित बार नमन हो॥२॥
अहंकार ममकार न लावें, अंतरंग में निज पद ध्यावें।
सहज परम निर्ग्रन्थ दिगम्बर, अगणित बार नमन हो॥३॥
ख्यातिलाभ की नहिं अभिलाषा, सारभूत शुद्धातम भासा।
आतमलीन विरक्त देह से, अगणित बार नमन हो॥४॥
उपसर्गों में नहिं अकुलावें, परीषहों से नहीं चिगावें।
सहज शान्त समता के धारक, अगणित बार नमन हो॥५॥
जिनशासन का मर्म बतावें, शाश्वतसुख का मार्ग दिखावें।
अहो-अहो जिनवर से मुनिवर, अगणित बार नमन हो॥६॥
ऐसा ही पुरुषार्थ जगावें, धनि निर्ग्रन्थ दशा प्रगटावें।
समय-समय निर्ग्रन्थ रूप का, सहजपने सुमिरन हो॥७॥

हे कुन्दकुन्द शिवचारी गरुवर...

हे कुन्दकुन्द शिवचारी गुरुवर लाखों प्रणाम।
हे कुन्दकुन्द अविकारी गुरुवर लाखों प्रणाम॥
सौम्य मूर्ति निर्ग्रन्थ दिगम्बर, लेश नहीं जिनके आडम्बर।
प्रचुर स्वसंवेदनमय जीवन, लाखों प्रणाम....॥१॥

समयसार रचनार नमामी, शुद्धातम दातार नमामी।
मूलसंघ के नायक गुरुवर, लाखों प्रमाण....॥२॥

विषय कषायारम्भ नहीं है ज्ञान-ध्यान-तप लीन सही है।
भव का अन्त सुझाते गुरुवर, लाखों प्रणाम... ॥३॥

है व्यवहार का पक्ष अनादि से, नहिं स्वभाव का लक्ष अनादि से।
पक्षातिक्रान्त दिखाते प्रभुवर, लाखों प्रणाम... ॥४॥

जैनधर्म के गौरव गुरुवर, तुमसा ही मैं होऊँ सत्वर।
भावलिंग-मय संत तुम्हें है, लाखों प्रणाम... ॥५॥

दृष्टि में ध्रुव शुद्ध आत्मा ज्ञान अहो अनुभवे आत्मा।
हो रमण आतमा में ही गुरुवर, लाखों प्रणाम ... ॥६॥

तुमको अन्तर में ही निरखती, भक्ति हृदय में आज उछलती।
है सर्वस्व समर्पण तुमको, लाखों प्रणाम... ॥७॥

निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु...

निर्ग्रन्थ दिगम्बर साधु अलौकिक जग में।
निर्भय स्वाधीन विचरते मुक्ति-मग में॥टेक॥

अन्तर्दृष्टि प्रगटाई निज रूप लख्यो सुखदाई।
बाहर से हुये उदास सहज अन्तरंग में॥निर्भय... ॥१॥

जग में कुछ सार न पाया, अन्तर पुरुषार्थ बढ़ाया।
तज सकल परिग्रह भोग बसै जा वन में॥निर्भय... ॥२॥

निर्दोष अठ्ठाईस गुण हैं, देखो निज माँहिं मगन हैं।
कुछ ख्याति लाभ पूजादि चाह नहिं मन में॥ निर्भय... ॥३॥

जिन तीन चौकड़ी टूटी, ममता की बेड़ी छूटी।
अद्भुत समता वर्ते जिनकी परिणति में॥निर्भय...॥४॥

निस्पृह आतम आराधैं, रत्नत्रय पूर्णता साधैं।
निष्कम्प रहें उपसर्ग और परीषह में॥निर्भय...॥५॥

शुद्धात्म स्वरूप दिखावैं, शिव मार्ग सहज ही बतावैं।
गुण चिंतन कर निज शीश धरें चरणन में॥निर्भय...॥६॥

जंगल में मुनिराज अहो...

जंगल में मुनिराज अहो मंगल स्वरूप निज ध्यावें।
बैठ समीप संत चरणों में, पशु भी बैर भुलावें॥टेक॥

अरे सिंहनी गौ-वत्सों को, स्तनपान कराती।
हो निशंक गौ सिंह-सुतों पर, अपनी प्रीति दिखाती॥
न्योला अहि मयूर सब ही मिल, तहाँ आनन्द मनावें॥बैठ समीप. ॥१॥

नहीं किसी से भय जिनको, जिनसे भी भय न किसी को।
निर्भय ज्ञान गुफा में रह, शिव-पथ दर्शायें सभी को॥
जो विभाव के फल में भी, ज्ञायकस्वभाव निजध्यावें॥बैठ समीप. ॥२॥

वेदन जिन्हें असंग ज्ञान का, नहीं संग में अटकें।
कोलाहल से दूर स्वानुभव, परम सुधारस गटकें॥
भवि दर्शन उपदेश श्रवण कर, जिनसे शिवपद पावें॥बैठ समीप. ॥३॥

ज्ञेयों से निरपेक्ष ज्ञानमय, अनुभव जिनका पावन।
शुद्धातम दर्शाती वाणी, प्रशम मूर्ति मन भावन॥
अहो जितेन्द्रिय गुरू अतीन्द्रिय, ज्ञायक गुरु दरशावें॥बैठ समीप. ॥४॥

निज ज्ञायक ही निश्चय गुरुवर, अहो दृष्टि में आया।
स्वयं सिद्ध ज्ञानानन्द सागर, अन्तर में लहराया॥
नित्य निरंजन रूप सुहाया, जाननहार जनावें॥ बैठ समीप. ॥५॥

जिन आदतों को हम प्रयत्नपूर्वक पालते हैं, वे हमारा भाग्य बन जाती हैं और फिर हम उनके दास बन जाते हैं।

श्री नित्य-नैमित्तिक पूजन (खण्ड-२)

मंगलाष्टक

वीतराग-सर्वज्ञ हितंकर, त्रिभुवन स्वामी जो सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, श्री अरहंत हों मंगलकार॥१॥

ज्ञानशरीरी अशरीरी प्रभु, मुक्त स्वरूप नित्य सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, सिद्ध प्रभु हों मंगलकार॥२॥

पंचाचार परायण गुरुवर, सकल संघ नायक सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, श्री आचार्य हों मंगलकार ॥३॥

साधु संघ में अधिकारी हो, धर्म-ज्ञान देते सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, उपाध्याय हों मंगलकार॥४॥

विषयाशा-आरंभ रहित हैं, ज्ञानी मुनिवर जो सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, साधु सर्व हों मंगलकार॥५॥

जिनवाणी जिनतीर्थ चैत्य, चैत्यालय जग में जो सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, हम सबको हों मंगलकार॥६॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरितमय, धर्म अहिंसा शिव सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, दशलक्षण हों मंगलकार॥७॥

पंचकल्याणक तीर्थेश्वर के, दर्शाये सुरगण सुखकार।
भक्ति सहित हम करें स्मरण, हम सबको हों मंगलकार॥८॥

धर्म महोत्सव आज मनावें, लें जिन नाम परम सुखकार।
नित परिणाम पवित्र हमारे, हम सबको हों मंगलकार॥९॥

जिन-जिन का हित हुआ है, ज्ञान और वैराग्य से हुआ है।

जिनप्रतिमा प्रक्षाल पाठ

(दोहा)

धन्य दिवस है आज का, धन्य घड़ी है आज।
करें प्रभो प्रक्षाल हम, भाव विशुद्धि काज॥१॥

(तर्ज- तुम्हारे दर्श बिन स्वामी)

परम पावन अहो जिनवर, जगत की कलुषता हरते।
स्वयं रागादि मल हरने, प्रभो ! प्रक्षाल हम करते॥२॥

स्वयं की साधना करके, त्रिजग की पूज्यता पाई।
पूज्यता स्वयं की लखकर, प्रभो पूजा सहज करते॥३॥

निहारें शान्त मुद्रा जब, नेत्र पावन सहज होते।
हाथ होते सहज पावन, चरण-स्पर्श जब करते॥४॥

करें गुणगान भक्ति से, होय रसना तभी पावन।
सहज ही चित्त हो पावन, प्रभु का ध्यान जब धरते॥५॥

जन्म कल्याण में स्वामी, किया अभिषेक इन्द्रों ने।
लगाया था सु गंधोदक, शीश जय-जय ध्वनि करते॥६॥

किन्तु स्नान ही त्यागा, धरी निर्ग्रंथ दीक्षा जब।
ध्यान धारा सहज वर्ते, प्रभु सब कर्म मल हरते॥७॥

पूर्ण निर्दोष निर्मल हो, तीर्थ प्रभु आप प्रगटाया।
बहायी ज्ञानमय गंगा, भव्य स्नान शुभ करते॥८॥

अहो कैसा समय होगा, याद कर हर्ष उमगाता।
महा आनंद से हम भी, अर्चना नाथ की करते॥९॥

धन्य जिनबिम्ब है जग में, अहो चिद्बिम्ब दर्शाते।
नीर प्रासुक ही लेकर हम, प्रभो प्रक्षाल शुभ करते॥१०॥

यत्न से करते परिमार्जन, प्रभो रोमांच तन में हो।
आत्मप्रभुता दिखाती है, अर्घ्य चरणों में जब धरते॥११॥

संजोए भावना स्वामी, होंय हम भी प्रभु के सम।
लगावें शीश गंधोदक, अहो जिन-रूप उर धरते॥१२॥

(दोहा)

लोकोत्तम मंगलमयी, अनन्य शरण जिननाथ।
प्रभु चरणों में शीश धर, हम भी हुए सनाथ॥१३॥

विनय पाठ

सफल जन्म मेरा हुआ, प्रभु दर्शन से आज।
भव समुद्र नहिं दीखता, पूर्ण हुए सब काज॥१॥

दुर्निवार सब कर्म अरु, मोहादिक परिणाम।
स्वयं दूर मुझसे हुए, देखत तुम्हें ललाम॥२॥

संवर कर्मों का हुआ, शान्त हुए गृह जाल।
हुआ सुखी सम्पन्न मैं, नहिं आये मम काल॥३॥

भव कारण मिथ्यात्व का, नाशक ज्ञान सुभानु।
उदित हुआ मुझमें प्रभो, दीखे आप समान॥४॥

मेरा आत्मस्वरूप जो, ज्ञानादिक गुण खान।
आज हुआ प्रत्यक्ष सम, दर्शन से भगवान॥५॥

दीन भावना मिट गई, चिन्ता मिटी अशेष।
निज प्रभुता पाई प्रभो, रहा न दुख का लेश॥६॥

शरण रहा था खोजता, इस संसार मँझार।
निज आतम मुझको शरण, तुमसे सीखा आज॥७॥

निज स्वरूप में मगन हो, पाऊँ शिव अभिराम।
इसी हेतु मैं आपको, करता कोटि प्रणाम॥८॥

मैं वन्दौं जिनराज को, धर उर समता भाव।
तन-धन-जन-जगजाल से, धरि विरागता भाव॥९॥

यही भावना है प्रभो, मेरी परिणति माहिं।
राग-द्वेष की कल्पना, किंचित् उपजे नाहिं॥१०॥

पूजा पीठिका (भाषा)

(छन्द-सखी)

अरहन्त सिद्ध सूरि नामा, उवझाय साधु गुणधामा।
परमेष्ठी पद सुखकारी, पूजन करिहों दु:खहारी॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमन्त्रेभ्यो नमः पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

(छन्द-झूलना)

चार मंगल शरण श्रेष्ठ हैं लोक में,
आप्त अरु सिद्ध साधु दयामय धरम।
अन्य में ढूँढना सुख दु:खकार है,
वे स्वयं सुख रहित सुख न उनका मरम॥
हे प्रभो आपको लख ये निश्चय हुआ,
शरण अपनी से कटते स्वयं सब करम।
बाह्य दृष्टि तजूँ अब निजातम भजूँ,
लीन निज में हुए से मिले पद परम॥

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि

मंगल विधान (भाषा)

हूँ द्रव्यदृष्टि से अति पवित्र, परिणति ही मात्र अपावन है।
चिर से ही पर में भ्रमित रही, शुचिकारी तव आराधन है॥

हे प्रभो ! शान्त नासाग्र दृष्टि, थिर मुद्रा हमें बताती है।
शान्ति शुचिता अन्तर में है, बाहर से कभी न आती है॥

है रूप हमारा मंगलमय, आराध्य हमारे मंगलमय।
रागादि विकारी भाव भगें, परिणति भी होवे मंगलमय॥

तुम नाम मंत्र है मंगलमय, हे कर्ममुक्त ! तुम मंगलमय।
सम्यक्त्व आदि गुण युक्त सिद्ध मैं नमन करूँ हे मंगलमय॥

हों दु:ख सभी तत्क्षण विनष्ट, स्मरण किए तुम सम निजरूप।
डाकिनि, भूत पिशाच, नागगद सभी दूर हों हे शिवभूप॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि॥

जिनसहस्रनाम अर्घ्य

गुण अनन्त हैं प्रभो आपके, मेरी है सामर्थ्य कहाँ।
सहस्रनाम से अर्चन करके, अर्घ्य चढ़ाऊँ आज यहाँ॥

ॐ ह्रीं भगवज्जिनस्याऽष्टाधिकसहस्रनामेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजा प्रतिज्ञा पाठ

(तर्ज-इन्साफ की डगर पे...)

जो तीन लोक स्वामी मुक्ति रमापति हैं।
हैं स्याद्वाद नायक, सानन्त चार जो हैं॥
कर वन्दना उन्हीं की, पूजा विधि करूँगा।
जो भव्य प्राणियों को, हैं पुण्य बन्ध हेतु॥
निज आत्मरूप महिमा, जिनने प्रकट दिखाई।
ऐसे त्रिलोक गुरु, पुंगव स्वस्ति दायक॥
उन पूर्ण ज्ञान दर्शन आनन्द वीर्य वैभव।
दें प्रेरणा सतत, मुक्ति हेतु मुझको॥
निजभाव द्रव्यद्रष्टि से शुद्ध जाना।
पर्याय शुद्धि हेतु, अवलम्ब मैंने लीना॥
बहु युक्तियों से अब तो, रागादि कर विनष्ट।
भूतार्थ यज्ञ द्वारा, मैं भी प्रभु बनूँगा॥
अर्हत् पुराण पुरुषोत्तम, हे गुरु हितंकर।
सब वस्तुयें तजूँगा, निज पूर्ण ज्ञान हेतु॥
नित पुण्य-पाप द्वारा परिणति हुई विकारी।
मैं पाप तो तजा है, अब पुण्य भी तजूँगा॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि॥

स्वस्ति मंगल पाठ

(मत्तसवैया छन्द)

श्री ऋषभ अजित सम्भव अभिनन्दन सुमति सुमतिप्रदायक हैं।
श्री पद्मप्रभ अरु श्रीसुपार्श्व, चन्द्रप्रभ स्वस्ति दायक हैं॥

श्री पुष्पदंत शीतल श्रेयांस, श्री वासुपूज्य और विमल प्रभु।
श्री अनन्त धर्म और शान्ति कुंथु, मंगलमय मुक्ति विधायक हैं॥

अरनाथ मल्लि मुनिसुव्रतजी, नमिनाथ नेमि अरु पार्श्वप्रभु।
श्री वर्द्धमान जिन सुखवर्द्धक, निज पर विवेक प्रगटायक हैं॥

इन सम ही जड़ वैभव तजकर, सम्यक्त्वी इच्छामुक्त बनें।
निज का पुरुषार्थ मूल कारण, ये ही व्यवहार सहायक हैं॥

हो जिनवाणी अभ्यास सदा, तत्त्वों का सम्यक् निर्णय हो।
रागादि विकारी भाव भगें, जिनवाणी स्वस्ति दायक हो॥

द्रव्यानुयोग चरणानुयोग से, सत् श्रद्धा चारित्र धरें।
प्रथमानुयोग, करणानुयोग, दृग-ज्ञान-वृत्ति दृढ़ स्वच्छ करें॥

हैं बुद्धि ऋद्धियाँ प्रकट जिन्हें, पर लक्ष्य नहीं उन पर जिनका।
तप घोर करें आकाश चलें, है पार नहीं जिनके बल का॥

मन-वाँछित रूप बना सकते, भारी हल्का, लम्बा छोटा।
जो सर्वौषधियों की निधि हैं, ऋद्धि अक्षीण से ना टोटा॥

पर नहीं प्रयोग करें इनका, निजख्याति लाभ पूजा हेतु।
उन सम जड़ वैभव ठुकराऊँ, तब होवें वे मुक्ति सेतु॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि॥

ऐसा योग्य मनुष्य भव एवं सत्संग के साधन मिले हैं
और जीव विचार न करे।
तब यह क्या पशु की देह में विचार करेगा ? कहाँ करेगा ?

श्री देव-शास्त्र-गुरु पूजन

(दोहा)

देव-शास्त्र-गुरुवर अहो, मम स्वरूप दर्शाय।
किया परम उपकार मैं, नमन करूँ हर्षाय॥
जब मैं आता आप ढिंग, निज स्मरण सु आय।
निज प्रभुता मुझमें प्रभो, प्रत्यक्ष देय दिखाय॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

जब से स्व-सन्मुख दृष्टि हुई, अविनाशी ज्ञायक रूप लखा।
शाश्वत अस्तित्व स्वयं का लखकर जन्म-मरणभय दूर हुआ॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

निज परमतत्त्व जब से देखा, अद्भुत शीतलता पाई है।
आकुलतामय संतप्त परिणति, सहज नहीं उपजाई है॥श्री देव..॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

निज अक्षयप्रभु के दर्शन से ही, अक्षयसुख विकसाया है।
क्षत् भावों में एकत्वपने का, सर्व विमोह पलाया है॥श्री देव..॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम परम ज्ञायक प्रभुवर, जब से दृष्टि में आया है।
विभु ब्रह्मचर्य रस प्रकट हुआ, दुर्दान्त काम विनशाया है॥श्री देव..॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

हुआ निमग्न तृप्ति सागर में, तृष्णा ज्वाल बुझाई है।
क्षुधा आदि सब दोष नशें, वह सहज तृप्ति उपजाई है॥श्री देव..॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

ज्ञान भानु का उदय हुआ, आलोक सहज ही छाया है।
चिरमोह महातम हे स्वामी, क्षणभर में सहज विलाया है॥
श्री देव-शास्त्र-गुरुवर सदैव, मम परिणति में आदर्श रहो।
ज्ञायक में ही स्थिरता हो, निज भाव सदा मंगलमय हो॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

द्रव्य-भाव-नोकर्म शून्य, चैतन्य प्रभु जब से देखा।
शुद्ध परिणति प्रकट हुई, मिटती परभावों की रेखा॥श्री देव..॥

ॐह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

अहो पूर्ण निज वैभव देखा, नहीं कामना शेष रही।
निर्वाञ्छक हो गया सहज मैं, निज में ही अब मुक्ति दिखी॥श्री देव..॥

ॐह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यः मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज से उत्तम दिखे न कुछ भी, पाई निज अनर्घ्य माया।
निज में ही अब हुआ समर्पण, ज्ञानानन्द प्रकट पाया॥श्री देव..॥

ॐह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

ज्ञानमात्र परमात्मा, परम प्रसिद्ध कराय।
धन्य आज मैं हो गया, निज स्वरूप को पाय॥

(हरिगीत-छन्द)

चैतन्य में ही मग्न हो, चैतन्य दरशाते अहो।
निर्दोष श्री सर्वज्ञ प्रभुवर, जगत्साक्षी हो विभो॥

सच्चे प्रणेता धर्म के, शिवमार्ग प्रकटाया प्रभो।
कल्याण वाँछक भविजनों, के आप ही आदर्श हो॥

शिवमार्ग पाया आप से, भवि पा रहे अरु पायेंगे।
स्वाराधना से आप सम ही, हुए हो रहे होयेंगे॥

तव दिव्यध्वनि में दिव्य-आत्मिक , भाव उद्घोषित हुए।
गणधर गुरु आम्नाय में, शुभ शास्त्र तब निर्मित हुए॥

निर्ग्रन्थ गुरु के ग्रन्थ ये, नित प्रेरणायें दे रहे।
निजभाव अरु परभाव का, शुभ भेदज्ञान जगा रहे॥

इस दुषम भीषण काल में, जिनदेव का जब हो विरह।
तब मात सम उपकार करते, शास्त्र ही आधार हैं॥

जग से उदास रहें स्वयं में, वास जो नित ही करें।
स्वानुभव मय सहज जीवन, मूल गुण परिपूर्ण हैं॥

नाम लेते ही जिन्हों का, हर्ष मय रोमाँच हो।
संसार-भोगों की व्यथा, मिटती परम आनन्द हो॥

परभाव सब निस्सार दिखते, मात्र दर्शन ही किए।
निजभाव की महिमा जगे, जिनके सहज उपदेश से॥

उन देव-शास्त्र-गुरु प्रति, आता सहज बहुमान है।
आराध्य यद्यपि एक, ज्ञायकभाव निश्चय ज्ञान है॥

प्रभु ! अर्चना के काल में भी, भावना ये ही रहे।
धन्य होगी वह घड़ी, जब परिणति निज में रहे॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

अहो कहाँ तक मैं कहूँ, महिमा अपरम्पार।
निज महिमा में मगन हो, पाऊँ पद अविकार॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि॥

> धर्म यह वस्तु बहुत गुप्त रही है। वह बाह्य संशाधनों से मिलनेवाली नहीं है। अपूर्व अंत:संशोधन से ही प्राप्त होती है।

श्री विद्यमान बीस तीर्थंकर पूजन

(अडिल्ल)

ढाई द्वीप में पाँच विदेह हैं शाश्वते।
तीर्थंकर जहँ बीस सदा ही राजते॥
भक्ति भाव से करूँ सहज आराधना।
निज पद पाऊँ नाथ यही है भावना॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा: ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा: ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ: ठ: स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा: ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(चौपाई)

स्वयं सिद्ध शुद्धातम ध्याय, जन्म जरा मृत दोष नशाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधर-युगमन्धर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनन्तवीर्य-सूरिप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चंद्रानन-भद्रबाहु भुजंगम्-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरषेण-महाभद्र देवयशो-ऽजितवीर्येतिविद्यमान विंशतितीर्थङ्करेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्रोधादिक दुर्भाव नशाय, क्षमाधार भव ताप मिटाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य: भवातापविनाशनाय चन्दनम् निर्व. स्वाहा।

इन्द्रिय सुख क्षत् विक्षत् रूप, त्याग लहूँ आनन्द अनूप।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽक्षय पद प्राप्तये अक्षतम् नि. स्वाहा।

त्यागूँ प्रभु अब्रह्म दुखदाय, निश्चय परम शील प्रगटाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य: कामबाण विध्वंशनाय पुष्पम् नि. स्वाहा।

क्षुधा वेदनीय उपशम होय, पाऊँ निजानन्द रस सोय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य: क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् निर्व. स्वाहा।

मोह महातम तुरत नशाय, आत्मज्ञान की ज्योति जगाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य: मोहांधकार विनाशनाय दीपम् निर्व.स्वाहा।

जलें कर्म भव दुख विनशाय, निर्मल आत्मध्यान प्रगटाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽष्टकर्म विनाशनाय धूपम् नि.स्वाहा।

सुखमय सम्यक्चारित्र धार, महा मोक्षफल पाऊँ सार।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.स्वाहा।

सहज भावमय अर्घ्य चढ़ाय, निज अविचल अनर्घ्यपद पाय।
सीमंधर आदिक जिन बीस, चरणों में नित नाऊँ शीश॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

अहो विदेहीनाथ के, गुण गाऊँ सुखकार।
देह रहित शुद्धात्मा, ध्याऊँ नित अविकार॥

(वीरछन्द)

श्री सीमंधर श्री युगमंधर श्री, बाहु सुबाहु सु संजातक।
स्वयंप्रभ ऋषभानन वन्दूँ, अनन्तवीर्य नाशें पातक॥

श्री सूर्यप्रभ विशालकीर्ति जी, जजूँ वज्रधर चन्द्रानन।
भद्रबाहु अरु श्री भुजंगम, ईश्वर जिन भव दुख भानन॥

नेमिप्रभ श्री वीरसेन जिन, महाभद्र प्रभु मंगलकार।
श्री देवयश अजितवीर्य को, नमूँ नित्य त्रय योग संभार॥

बीस तीर्थंकर सदा विदेहों, में शोभें आनन्दकारी।
धनुष पाँच सौ काय विराजे, समवशरण महिमा न्यारी॥

सिंहासन पर अन्तरीक्ष प्रभु, तिष्ठे अपने ही आधार।
चौंसठ चमर छत्र त्रय शोभित, भामण्डल द्युति लसे अपार॥

मोह विजय को सूचित करती, दुंदुभि धुनि संदेश सुनाय।
आओ आओ अहो जगत जन, सुनो दिव्यध्वनि शिव सुखदाय॥

धर्मतीर्थ तहँ शाश्वत वर्ते, महिमा मुझसे कही न जाय।
धन्य-धन्य जो प्रत्यक्ष देखें, सुनें दिव्यध्वनि बोधि लहाय॥

हो निर्ग्रंथ रमें निज माँहीं, परमातम पद पावें सार।
भाव सहित उनका यश गाऊँ, सहज नमन होवे अविकार॥

(घत्ता)

जय जिन गुण सारं मंगलकारं, गाऊँ अति ही हर्षाऊँ।
निज में रम जाऊँ, कर्म नशाऊँ, ऐसे ही गुण प्रगटाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्य: जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जो जिन पूजें भाव से, धरें नित्य ही ध्यान।
अल्पकाल में वे लहें, अविनाशी निर्वान॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालयों को अर्घ्य

तीन लोक में अकृत्रिम चैत्यालय, अरु जिनबिम्ब महा।
जिनके दर्शन से निज दर्शन, होते हैं सुखदाय अहा॥
उन सब अकृत्रिम जिनबिम्बों, को मैं अर्घ चढ़ाता हूँ।
निज अकृत्रिम भाव लखूँ, बस यही भावना भाता हूँ॥

ॐह्रीं श्री अकृत्रिम चैत्य-चैत्यालय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री कृत्रिम जिनबिम्बों को अर्घ्य

जिस प्रकार पाषाण खण्ड में, शिल्पी बिम्ब प्रगटाता है !
मंत्र विधि से होय प्रतिष्ठा, त्रिजग पूज्य बन जाता है !!
उस प्रकार मैं निज परिणति में, ज्ञायक का प्रतिबिम्ब धरूँ !
रत्नत्रय से होय प्रतिष्ठा, त्रिजग पूज्य पद प्राप्त करूँ !!

ॐह्रीं श्री कृत्रिम जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री कृत्रिमाकृत्रिम चैत्य-चैत्यालयों को अर्घ्य

तीन लोक में राजते, जिनमंदिर अविकार।
अकृत्रिम-कृत्रिम महा, नमहुँ त्रियोग संभार॥
उनमें जो प्रतिबिम्ब हैं, चित्स्वरूप दर्शाय।
करें परम उपकार नित, पूजूँ चित हर्षाय॥

ॐ ह्रीं श्री कृत्रिमाकृत्रिम चैत्य-चैत्यालस्थ जिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.।

श्री सिद्ध पूजन

(दोहा)

सर्व कर्म बन्धन रहित, नित्य निरामय जान।
परम सूक्ष्म सिद्धात्मा, चित्स्वरूप पहिचान॥
पूजूँ भक्ति भाव से, करूँ भेद विज्ञान।
निश्चय से मैं भी अहो, शाश्वत सिद्ध समान॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः
ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् !अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

(बसन्ततिलका)

भववास दुःखमय तज निज में बसे जो।
निर्मल गुणाकर हुए शिव में बसे जो॥
जल सम पवित्र होकर मैं सिद्ध ध्याऊँ।
जन्मादि दोष क्षण में प्रभु सम नशाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्म-मरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि.।

सम्यक्त्व आदि गुण युत जगपूज्य हैं जो।
निरखेद तृप्त निज में अविचल रहें जो।
चन्दन समान शीतल हो सिद्ध ध्याऊँ।
संताप रूप भव में फिर ना भ्रमाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने भवातापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

अन्तिम शरीर से जो कुछ न्यून राजें।
अशरीर ज्ञानमय जो अक्षय विराजें॥

ले भाव अक्षत सहज मैं सिद्ध ध्याऊँ।
क्षत् रूप जग विभव अब किञ्चित् न चाहूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

स्वाधीन मग्न निज में निश्चल हुए जो।
कामादि दोष नाशे सुखमय हुए जो॥
निष्काम भावमय हो मैं सिद्ध ध्याऊँ।
हो ब्रह्मरूप शाश्वत आनन्द पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

हे आत्मनिष्ठ योगीश्वर ध्यान गम्य।
प्रभुवर करूँ सुभक्ति वाणी अगम्य॥
निज में ही तृप्त हो प्रभु पूजा रचाऊँ।
दुखमय क्षुधादि नाशें प्रभुता सु पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

हे चित्प्रकाशमय परमेश्वर अलौकिक।
निज में निमग्न रहते तिहुँ जग के ज्ञायक॥
निर्मोह ज्ञानमय हो मैं सिद्ध ध्याऊँ।
ज्ञायक स्वरूप सहजहिं ज्ञायक रहाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

ध्रुव ध्येय रूप शुद्धातम सुखकारी।
दर्शाय देव कीना उपकार भारी॥
हो मग्न ध्येय माँहीं पूजा रचाऊँ।
दुष्टाष्ट कर्म बन्धन सहजहिं नशाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म-दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

अक्षय अनंत अविकारी मुक्तिनाथ।
वाँछा न शेष पाया चैतन्य नाथ॥
आनन्द विभोर हो प्रभु पूजा रचाऊँ।
अनुपम अचल सु शाश्वत गति शीघ्र पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफल-प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

त्रैलोक्य चूड़ामणि प्रभुवर हुए हैं।
साक्षात् शुद्ध आत्मा विभु आप ही हैं॥
भावार्घ्य लेय सुखमय पूजा रचाऊँ।
अविचल अनर्घ अक्षय प्रभुता सु पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

अविकल परमानन्दमय, अविनाशी गुणखान।
भक्ति भाव पूरित हृदय, सहज करूँ गुणगान॥

(चौपाई)

स्वयं सिद्ध परमातम ध्याया, कर्म कलंक समूल नशाया।
प्रगटे गुण अनन्त अविकारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

जय जय क्षायिक सम्यक्दर्शन, केवलज्ञान सु केवलदर्शन।
हुए अनन्त सु वीरजधारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

अगुरुलघु सूक्ष्मत्व अवगाहन, अव्याबाध प्रगट भयो पावन।
बिन्मूरति चिन्मूरति धारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

गुणस्थान चौदह के पार, नित्य निरामय ध्रुव अविकार।
परमानन्द दशा विस्तारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

तीर्थंकर जब दीक्षा धारें, सिद्ध प्रभु का नाम उचारें।
अचल अनूपम पदवी धारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

आत्माराधन का फल पाया, पंचम भाव प्रत्यक्ष दिखाया।
महिमावंत ध्येय सुखकारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

एक क्षेत्र में प्रभू अनन्ते, सत्ता भिन्न-भिन्न विलसन्ते।
अहो सु अद्भुत प्रभुता धारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

सिद्धालय ज्यों सिद्ध विराजे, देह माँहिं त्यों आतम राजे।

ज्ञायक रूप परम अविकारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

भेदज्ञान करके पहिचाना, द्रव्यदृष्टि धरि सहज प्रमाना।
होऊँ निश्चय शिवमगचारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

सहज रहूँ प्रभु जाननहार, परभावों का हो परिहार।
कटे कर्मबन्धन दु:खकारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

अपने में संतुष्ट रहाऊँ, अपने में ही तृप्त रहाऊँ।
हुई नि:शेष कामना सारी, जजूँ सिद्ध नित मंगलकारी॥

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

निश्चल सिद्धस्वरूप, ज्ञानस्वभावी आत्मा।
सहज शुद्ध चिद्रूप, अनुभव करि आनन्द भयो॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री सीमन्धर जिनपूजन

(सोरठा)

सीमन्धर जिन नाथ, पूर्व विदेह विराजते।
हृदय विराजो नाथ, भाव सहित पूजा रचों॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(वीरछन्द)

जन्म जरा मृत चक्र नाशने, जिन चरणों में आया हूँ।
तुम हो अक्षय अविनाशी प्रभु, यह लख अति हर्षाया हूँ॥
यह जल लख निस्सार जिनेश्वर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ॥
विद्यमान सीमंधर स्वामी ! आत्म भावना भाता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु रोग विनाशनाय जलं नि.स्वाहा।

निजानन्द का वेदन करते, भवाताप उत्पन्न न हो।
वर्ते निज में तृप्त परिणति, कर्मोदय से खिन्न न हो॥

चन्दन लख निस्सार जिनेश्वर सन्मुख आज चढ़ाता हूँ।
विद्यमान सीमंधर स्वामी ! आत्म भावना भाता हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री सीमन्धरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनम् नि.स्वाहा।

अक्षय तो अपना ही वैभव, अक्षय तो अपना पद है।
अक्षय तो अपनी ही प्रभुता, पर का तो झूठा मद है॥
क्षत् भावों को त्याग जिनेश्वर अक्षत आज चढ़ाता हूँ॥विद्यमान॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधर जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतम् नि. स्वाहा।

काम वेदना का उपाय तो, ब्रह्मचर्य का धारण है।
परम ब्रह्म की सहज साधना, ब्रह्मचर्य का साधन है॥
पुष्पों को निस्सार जान प्रभु सन्मुख आज चढ़ाता हूँ॥विद्यमान॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंशनाय पुष्पम् नि. स्वाहा।

क्षुधा वेदना नहिं उपजावे, ज्ञानामृत से तृप्त रहे।
भोजन बिन ही अहो जिनेश्वर, सुखमय आप विराज रहे॥
ये नैवेद्य असार जानकर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ॥विद्यमान॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् नि. स्वाहा।

ज्ञानोद्योत रहे अन्तर में, वस्तु स्वरूप झलकता है।
सहज प्रवर्ते भेदज्ञान प्रभु, महामोहतम नशता है॥
जड़ दीपक निस्सार जानकर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ॥विद्यमान॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपम् नि. स्वाहा।

अहो ! अगन्ध आत्मा जाना, धर्म सुगन्धि प्रगट हुई।
घ्राणेन्द्रिय का विषय दु:खमय, बाह्य गन्ध से विरति हुई॥
धूप जान निस्सार जिनेश्वर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ॥विद्यमान॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपम् नि. स्वाहा।

कर्म फलों से हुई उदासी, मोक्ष महाफल पाऊँगा।
हे जिन स्वामी ! अन्तर्मुख हो निज पुरुषार्थ बढ़ाऊँगा॥
जड़ फल लख निस्सार जिनेश्वर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ॥विद्यमान॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हे अनर्घ्य पद दाता ! ज्ञाता-दृष्टा रह निजपद ध्याऊँ।
निश्चय ही तुम सम हे स्वामी, ध्रुव अनर्घ्य जिनपद पाऊँ॥
द्रव्य-भावमय अर्घ्य जिनेश्वर, सन्मुख आज चढ़ाता हूँ॥विद्यमान॥
ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

गुण अनन्त मंगलमयी, कैसे करूँ बखान।
भक्तिवश बाचाल हो, करूँ अल्प गुणगान॥

(वीरछन्द)

समवशरण में नाथ विराजे, चतुर्मुखी अन्तर्मुख हो।
भक्ति उर में सहज उमड़ती, जब परिणति प्रभु सन्मुख हो॥

आगम से प्रभु महिमा सुन, प्रत्यक्ष लखूँ ऐसा मन हो।
जिनवर तुम ही प्राण हमारे, तुम ही तो जीवनधन हो॥

धर्म-तीर्थ के परम प्रणेता, धर्म-पिता सर्वज्ञ महान।
अष्टादश दोषों से न्यारे, तिहुँ जग भूषण हे भगवान॥

दिव्यध्वनि से वर्षाते प्रभु, धर्मामृत परमानन्ददाय।
जिसको पीते-पीते स्वामी, जन्म-जरा-मृत रोग नशाय॥

अहो अलौकिक वस्तुस्वरूप, दिखाया प्रभुवर नित अविकार।
हेय-रूप पर-भाव बताये, उपादेय शुद्धातम सार॥

अन्य न कोई दुख का कारण, भूल स्वयं को है हैरान।
इसीलिए प्रभु कहा आपने, श्रेय मूल है सम्यग्ज्ञान॥

निज अक्षय प्रभुता दर्शायी, किया अनन्त परम उपकार।
हो निर्ग्रन्थ आत्मपद साधूँ निश्चय होऊँ भव से पार॥

रहे देह में फिर भी न्यारा, अन्तर माँहिं विदेही नाथ।
सहज स्मरण हो आता है, तुम्हें पूजते हे जिननाथ॥

यद्यपि आप दूरवर्ती हैं, किन्तु भाव में सदा समीप।
ज्ञान माँहिं प्रत्यक्ष वत् निरखूँ, जले स्वयं अन्तर का दीप॥

निर्मम हुआ शान्त चित प्रभुवर, परम प्रभू का ध्यान रहे।
निर्मल साम्यभाव की धारा, सहजपने सुखकार बहे॥

हो निर्ग्रंथ निमग्न रहूँ नित, सर्व विभाव नशाऊँगा।
हुआ सहज विश्वास शीघ्र ही, तुम सम ही हो जाऊँगा॥

(त्रिभंगी)

जय-जय सीमंधर, तिहुँजग सुखकर, नृप श्रेयांससुत अविकारी।
सत्यदेवी नन्दन, करते वन्दन, वृषभ चिन्ह मंगलकारी॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

सीमंधर भगवान को, जो पूजें चित धार।
निज सीमा पहिचानकर, सहज लहें भवपार॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री शांति-कुन्थु-अरनाथ जिनपूजन

(वीर-छन्द)

हो चक्रवर्ति अरु कामदेव, प्रभु तीर्थंकर पदवी धारी।
हे शांति-कुन्थु-अरनाथ ! सदा, मैं करूँ वंदना अविकारी॥
आकर आप समीप जिनेश्वर, आनन्द उर न समाया है।
तव दर्शन पाकर नाथ आज, निजदर्शन मैंने पाया है॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्राः ! अत्र अवतरन्तु अवतरन्तु संवौषट् इत्याह्वननम् । ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्राः ! अत्र तिष्ठन्तु तिष्ठन्तु ठः ठः स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्राः! अत्र मम सन्निहिता भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(अवतार छन्द)

मिथ्यामल धोने आज, सम्यक् जल पाया।
प्रभु जन्म-जरा-मृत्यु शून्य, ज्ञायक दिखलाया॥

हे शांति-कुन्थु-अरनाथ, चरणन शिर नाऊँ।
है महामहिम निजभाव, प्रभुता प्रगटाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं..।

संताप रहित निज भाव, निज में दरशाया।
भव ताप नशावन हेतु, चन्दन सम पाया॥
हे शांति-कुन्थु-अरनाथ, चरणन शिर नाऊँ।
है महामहिम निजभाव, प्रभुता प्रगटाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यो भवाताप विनाशनाय चन्दनं..।

शाश्वत अक्षत निजभाव, दृष्टि में आया।
क्षत् रागादिक विनशाय, अक्षयपद ध्याया॥ हे शांति.॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्योऽक्षयपद प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

निष्काम रूप लख देव, काम पलाया है।
सम्यक् श्रद्धा का पुष्प, आज चढ़ाया है॥ हे शांति.॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.।

दर्शन कर निज में नाथ, तृप्ति पाई है।
भव-भव की क्षुधा जिनेश, आज नशायी है॥ हे शांति.॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.।

तिहुंजग का जाननहार, आज जनाया है।
आलोकित है निज लोक, मोह भगाया है॥ हे शांति.॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि.।

प्रभु आत्मध्यान की अग्नि, अब सुलगाई है।
पर-परणति की दुर्गन्ध सर्व जलाई है॥ हे शांति.॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्योऽअष्टकर्म दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

फल की अभिलाषा नाहिं, निजपद पाया है।
पूर्णत्व स्वयं में देख, आनन्द छाया है॥ हे शांति.॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

प्रभु वीतराग विज्ञान-मय शुभ अर्घ लिया।
निज में अनर्घ पद नाथ, निज से प्राप्त किया॥ हे शांति.॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ-कुन्थुनाथ-अरनाथ-जिनेन्द्रेभ्योऽनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

दोहा- जग जड़ वैभव त्यागकर, निज वैभव प्रगटाय।
शांति-कुन्थु-अरनाथ की, नित जयमाला गाय॥

(जोगीरासा)

शांति जिनेश्वर दर्शन कर, निज शान्त स्वरूप लखाया।
धन्य परम उपकारी निज सुख, निज में मुझे दिखाया॥टेक॥

चाह दाह में भटका अब तक, सुख का लेश न पाया।
मंद कषायों द्वारा अंतिम, ग्रैवियक तक हो आया॥
काललब्धि जागी प्रभुवर, मैं पास आपके आया॥धन्य.॥

आत्मा तो स्वभाव से सुखमय, दिव्य रहस्य बताया।
दीन दुखी पामर मैं हूँ, ये भ्रम का रोग मिटाया॥
अन्तर में प्रत्यक्ष देख सुख, अब विश्वास जगाया॥धन्य.॥

निज चैतन्य विभूती देखी, शक्ति अनन्त निहारी।
प्रभु सम प्रभुता लखकर, खुद ही भाव हुए अविकारी॥
होना नहीं सदा हूँ सुखमय, सम्यक् ज्ञान उपाया॥धन्य.॥

अब तो यही भावना प्रभुवर, निज में ही रम जाऊँ।
स्वानुभूतिमय परणति में ही, काल अनन्त बिताऊँ॥
निज में ही सन्तुष्ट, कामनाओं का हुआ सफाया॥धन्य.॥

कुन्थुनाथ स्तुति करते, गणधर इन्द्रादिक हारे।
तुम महिमा वर्णन करने में, हम को मंद विचारे॥
निजस्वभाव साधन द्वारा ही, प्रभु मुक्ति पद पाया॥धन्य.॥

कुन्थु आदि सूक्ष्म जीवों के, प्रति भी दया सिखाई।
परम अहिंसामयी धर्म की, ध्वजा प्रभो ! फहराई॥
चलूँ आपके पद चिन्हों पर, आज यही मन भाया॥धन्य.॥

धर्म चक्र के अर स्वरूप, सार्थक प्रभु नाम तुम्हारा।
प्रभो आपका दर्शन पाकर, जागा भाग्य हमारा॥

भव का फेरा मिटा सहज ही, शिवपथ मैंने पाया॥धन्य.॥

चक्री का साम्राज्य आपने, तृणवत् क्षण में छोड़ा।
हो निर्ग्रन्थ प्रभो उपयोग सु, निज ज्ञायक में जोड़ा॥
सकलकर्म का नाश किया प्रभु, अविचल शिवपद पाया॥
धन्य परम उपकारी निज सुख, निज में मुझे दिखाया॥

कहूँ कहाँ तक भाव बहुत हैं, अल्प शक्ति पर मेरी।
तुम सम ही प्रभुतामय निस्पृह, परिणति होवे मेरी॥
चाहूँ कुछ नहिं सहजभाव से, सविनय शीश नवाया॥धन्य.॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ-कुन्थनाथ-अरनाथ जिनेन्द्रेभ्यो जयमालाऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

मंगलमय मंगलकरण, आत्मस्वरूप महान।
शुद्धातम में मग्न हो, प्रगटे पद निर्वाण॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री पंचबालयति जिनपूजन

(मत्त सवैया)

हे ब्रह्मचर्य के धनी ब्रह्ममय, परमपूज्य त्रिभुवन स्वामी।
हे पंचबालयति तीर्थंकर, तुम-सम परिणति हो जगनामी॥
आनन्दमयी निज परमब्रह्म, मैंने प्रत्यक्ष निहारा है।
उल्लास हृदय में छाया प्रभु, जब मैंने तुम्हें चितारा है॥
ज्यों दर्पण सन्मुख हो जग में, मोही तन-रूप सजाते हैं।
त्यों तुम पूजन कर हे विभुवर, हम अपना भाव बढ़ाते हैं॥

(सोरठा)

वासुपूज्य, मल्लि, नेमि, पार्श्व प्रभु, महावीर जिन।
नमत होय सुख चैन, द्रव्य-दृष्टि धर पूज हूँ॥

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर-पंचबालयति-तीर्थंकराः अत्र अवतरन्तु अवतरन्तु संवौषट् इत्यह्वाननम्। अत्र तिष्ठन्तु तिष्ठन्तु ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहिता भवन्तु भवन्तु वषट् सन्निधिकरणम्।

निज में जुड़ती है दृष्टि जभी, समता का सहज प्रवाह बहे।
आनन्द अपूर्व प्रकट होवे, तब जन्म-जरा-मृत नहीं रहे॥
है जन्म-जरा-मृत रहित प्रभू ! मम आज दृष्टि में आया है।
समरस से तृप्त रहूँ विभुवर, मैंने जल यहाँ चढ़ाया है॥
अतिशय है ब्रह्म-भाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है।
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति।

निज परमशांति शीतलता से, आपूर्ण सरोवर मम प्रभु है।
भवरहित जहाँ भवताप नहीं, सर्वोत्कृष्ट सुखमय विभु है॥
जब ताप नहीं तब चन्दन का भी, काम नहीं कुछ शेष रहा।
चन्दन प्रभु यहीं चढ़ाया है, निष्पाप-ताप निजरूप गहा॥अतिशय..॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

छिलके से ढका हुआ अक्षत, छिलका हटते ही प्रकट हुआ।
पर्याय दृष्टि हटते ही त्यों, मम अक्षय प्रभु प्रत्यक्ष हुआ॥
निज अक्षय प्रभु के आश्रय से ही, राग-द्वेष का होवे क्षय।
ये अक्षत यहाँ चढ़ाये हैं, मैंने पाया है पद अक्षय॥अतिशय..॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्योऽक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम पूर्ण निज वैभव का, मैं तृप्त हो गया दर्शन कर।
संकल्प-विकल्प प्रवेश न हों, रहते सीमा से ही बाहर॥
अद्भुत रहस्य यह पाया है, इच्छाओं की उत्पत्ति नहीं।
बस निजस्वभाव में मग्न रहूँ, ये पुष्प चढ़ाता आज यहीं॥अतिशय..॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यः कामबाण-विध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समरस अमृत का सागर है, क्षुत् पीड़ा का अस्तित्व नहीं।
त्यागोपादान शून्य पर से, कुछ ग्रहण-त्याग कर्तृत्व नहीं॥
जो निजस्वभाव से च्युत होकर, तन के आश्रय से भूख लगी।
ये नैवेद्य समर्पित यहीं प्रभो ! स्वाश्रय से भव की भूख भगी॥ अतिशय..॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।.

प्रकाशत्व शक्ति शाश्वत है, सहज प्रकाशित मम स्वभाव।
सब बाह्य प्रकाश अनावश्यक, उसमें नहिं दिखता निजस्वभाव॥
बाहर की दृष्टि छोड़ अहो ! स्वसन्मुख चिन्मय ज्योति जगे।
ये दीपक यहीं विसर्जित है, अन्तर लौ से तम-मोह भगे॥
अतिशय है ब्रह्म-भाव मेरा, कामादिक दुर्मति भागी है।
प्रभु ब्रह्मचर्य परमानन्द पा, अतिशय प्रतीति उर जागी है॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो मोहांधकार-विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दश-धर्ममयी शाश्वत सुगन्ध चेतन नन्दन में महक रही।
दुर्गन्धित भाव विकारों का, किंचित् भी जहाँ अस्तित्व नहीं॥
यह धूप यहीं प्रभु छोड़ रहा, अब पर से दृष्टि हटाई है।
स्वसन्मुख होकर अब प्रभुसम, स्वधर्म सुरभि शुभ पायी है॥अतिशय..॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्योऽष्टकर्म-विध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु मुक्त स्वरूप सहज पाया, आनन्द अपूरव छाया है।
शिवफल की भी वाँछा न रही, अन्तर पुरुषार्थ जगाया है॥
ज्ञानी तो फल वाँछा त्यागे, पर मूढ त्याग का फल चाहे।
फल चढ़ा रहा हूँ हे जिनवर, बस ये विकल्प भी नहिं आये॥अतिशय..॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्यो मोक्षफल-प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु सर्वविशुद्ध स्वतत्त्व लखा, अब दृष्टि न पल भी हटती है।
होता उपयोग जभी बाहर, एकाग्र भावना जगती है॥
एकाग्र रहे उपयोग सदा, यह ही निश्चय से अर्घ्य कहा।
जिससे अविचल अनर्घ्यपद हो, प्रभु बाह्य अर्घ्य इसलिए तजा॥ अतिशय.॥

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

वासुपूज्य श्री मल्लिजिन, नेमि पार्श्व महावीर।
बाल ब्रह्मचारी सुजिन, नमत मिटै भवपीर॥

(पद्धरि)

जय वासुपूज्य देवाधिदेव, मंगलमय मंगलकरन एव।
जय चिदानन्द चिद्रूप सार, धारी निज महिमा निर्विकार।
पूरवभव में तुमने स्वामी, सुन युगमंधर प्रभु की वाणी।
नित आत्मभावना भाई थी, तीर्थंकर प्रकृति बंधाई थी।
तप कर महाशुक्र विमान गये, चय नृप वसुपूज्य के पुत्र भये।
कल्याणक देव मनाये थे, पर निज में आप समाये थे।
भोगों को नहिं स्वीकार किया, दूरहि से प्रभुवर छोड़ दिया।
हो बालयति दीक्षा धारी, प्रकटाया निजपद सुखकारी।

कर रहा अर्चना मल्लिनाथ, भवि दर्शन कर होते सनाथ।
वट वृक्ष विशाल गिरा लख कर, पूरब भव में दीक्षा धरकर।
तीर्थंकर पद का बन्ध किया, अपराजित स्वर्ग प्रयाण किया।
तँहतैं चयकर अवतार लिया, शादी के समय वैराग लिया ।
छह दिन छद्मस्थ रहे स्वामी, नव-केवललब्धि रमा पायी।
भव्यों को शिवपथ दर्शाया, सम्मेदशिखर से शिव पाया।

जय नेमीश्वर महिमा महान, सुन पशु क्रन्दन वैराग्य ठान।
छोड़े पशु अरु राजुल छोड़ी, भवबन्धन की कड़ियाँ तोड़ी।
जग को अनुपम आदर्श दिया, प्रभु धर्म अहिंसा प्रकट किया।
गिरनार शिखर से शिव पाया, प्रभु चरणों में हम सिर नाया।

जय पार्श्वनाथ तव गुण अपार, गणधर भी पावें नहीं पार।
इक दिवस सभा में विराज रहे, साकेत नरेश की भेंट लिए।
इक दूत वहाँ पर आया था, साकेत विभव दरशाया था।
ऋषभादि प्रभु स्मरण हुआ, वैराग्य हृदय में जाग उठा।
दीक्षा ले निज में मग्न हुए, तब कमठ घोर उपसर्ग किए।
अप्रभावित अचल रहे जिनवर, परमात्मदशा प्रगटी सत्वर।
ऐसी स्थिरता प्रभु पाऊँ, बस परमब्रह्म में रम जाऊँ।

हे महावीर विभु परम धीर, महिमा सागर से भी गम्भीर।

शादी प्रसंग जब आया था, प्रभुवर तुमने ठुकराया था।
दीक्षा ले द्वादश वर्ष प्रभो, दुर्द्धर तप धारा आप विभो।
निजध्यान अग्नि द्वारा जिनेश, कर्मों को ध्वस्त किया अशेष।
अन्तिम तीर्थंकर अभिरामी, मैं करूँ वन्दना जगनामी।
तव दर्शन करके हे स्वामी, मैंने निज महिमा पहिचानी।
प्रभु प्रबल पराक्रम प्रगटाऊँ, रागादिभाव पर जय पाऊँ।
जो तीर्थ आपने प्रगटाया, वह भी स्वामी मुझको भाया।
कीचड़ लपेट तन धोना क्या, अरु कूद अग्नि में रोना क्या ?।
श्रद्धान परम जागा मन में, सुख शांति सदा है अन्तर में।
परमाणु मात्र भी नहीं पर में, मेरा सर्वस्व सदा मुझ में।
उपयोग नहीं पर में भागे, अतिचार नहीं किञ्चित् लागे।
प्रभुवर ! निज में ही रम जाऊँ, निज परम ब्रह्मचर्य प्रगटाऊँ।

ॐ ह्रीं श्रीपंचबालयति-तीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम ब्रह्म आनन्दमय, चित् स्वभाव अविकार।
समयसार में लीन हो, होऊँ भव से पार॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री बाहुबली जिनपूजन

(हरिगीतिका)

हे बाहुबलि ! अद्भुत अलौकिक, ध्यानमुद्रा राजती।
प्रत्यक्ष दिखती आत्मप्रभुता, शीलमहिमा जागती।
तुम भक्तिवश वाचाल हो गुणगान प्रभुवर मैं करूँ।
निरपेक्ष हो पर से सहज पूजूँ स्वपद दृष्टि धरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(चामर छन्द, तर्ज-पार्श्वनाथ देव सेव...)

स्वयंसिद्ध सुख निधान आत्मदृष्टि लायके,
जन्म-मरण नाशि हों मोह को नशायिके।

बाहुबलि जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कल्पना, अनिष्ट-इष्ट की तजूँ अज्ञानमय,
परिणति प्रवाहरूप होय शान्त ज्ञानमय॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

पराभिमान त्याग के, सु भेदज्ञान भायके,
लहूँ विभव सु अक्षयं, निजात्म में रमाय के॥बाहुबलि...॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

छोड़ भोग रोग सम सु ब्रह्मरूप ध्याऊँगा,
काम हो समूल नष्ट सुख-अनंत पाऊँगा॥बाहुबलि...॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तोषसुधा पान करूँ आशा तृष्णा त्याग के,
मग्न स्वयं में ही रहूँ चित्स्वरूप भाय के॥बाहुबलि...॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चेतना प्रकाश में चित् स्वरूप अनुभवूँ,
पाऊँगा कैवल्यज्योति कर्म घातिया दलूँ॥बाहुबलि...॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्म ध्यान अग्नि में विभाव सर्व जारिहों,
देव आपके समान सिद्ध रूप धारि हों॥बाहुबलि...॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्र चक्रवर्ति के भी पद अपद नहीं चहूँ,
त्रिकाल मुक्त पद अराध मुक्तपद लहूँ लहूँ॥बाहुबलि...॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अनर्घ्य प्रभुता आपकी सु आप में निहारिके,
नाथ भाव माँहिं मैं, अनर्घ्य अर्घ्य धारिके॥

बाहुबलि जिनेन्द्र भक्ति से करूँ सु अर्चना,
तृप्त स्वयं में ही रहूँ अन्य हो विकल्प ना॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा- मोहजयी इन्द्रियजयी, कर्मजयी जिनराज।
भावसहित गुण गावहुँ, भाव विशुद्धि काज॥

(जोगीरासा)

अहो बाहुबलि स्वामी पाऊँ, सहज आत्मबल ऐसा।
निर्मम होकर साधूँ निजपद, नाथ आप ही जैसा॥

धन्य सुनन्दा के नन्दन प्रभु, स्वाभिमान उर धारा।
चक्री को नहिं शीस झुकाया, यद्यपि अग्रज प्यारा॥

कर्मोदय की अद्‌भुत लीला, युद्ध प्रसंग पसारा।
युद्ध क्षेत्र में ही विरक्त हो, तुम वैराग्य विचारा॥

कामदेव होकर भी प्रभु , निष्काम तत्त्व आराधा।
प्रचुर विभव, रमणीय भोग भी, कर न सके कुछ बाधा॥

विस्मय से सब रहे देखते, क्षमा भाव उर धारे।
जिनदीक्षा ले शिवपद पाने, वन में आप पधारे॥

वस्त्राभूषण त्यागे लख निस्सार, हुए अविकारी।
केशलौंच कर आत्म-मग्न हो, सहज साधुव्रत धारी॥

हुए आत्म-योगीश्वर अद्‌भुत, आसन अचल लगाया।
नहिं आहार-विहार सम्बन्धी, कुछ विकल्प उपजाया॥

चरणों में बन गई वाँमि, चढ़ गई सु तन पर बेलें।
तदपि मुनीश्वर आनन्दित हो, मुक्तिमार्ग में खेलें॥

नित्यमुक्त निर्ग्रन्थ ज्ञान-आनन्दमयी शुद्धातम।
अखिल विश्व में ध्येय एक ही, निज शाश्वत परमातम॥

निजानन्द ही भोग नित्य, अविनाशी वैभव अपना।
सारभूत है, व्यर्थ ही मोही, देखे झूठा सपना॥

यों ही चिन्तन चले हृदय में, आप वर्तते ज्ञाता।
क्षण-क्षण बढ़ती भाव-विशुद्धि, उपशमरस छलकाता॥

एक वर्ष छद्मस्थ रहे प्रभु, हुआ न श्रेणी रोहण।
चक्री शीश नवाया तत्क्षण, हुआ सहज आरोहण॥

नष्ट हुआ अवशेष राग भी, केवल-लक्ष्मी पाई।
अहो अलौकिक प्रभुता निज की, सब जग को दरशाई॥

हुए अयोगी अल्प समय में, शेष कर्म विनशाए।
ऋषभदेव से पहले ही प्रभु, सिद्ध शिला तिष्ठाए॥

आप समान आत्मदृष्टि धर, हम अपना पद पावें।
भाव नमन कर प्रभु चरणों में, आवागमन मिटावें॥

ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

बाहुबली भगवान, दर्शाया जग स्वार्थमय।
जागे आतमज्ञान, शिवानन्द मैं भी लहूँ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री वीतराग पूजन

(दोहा)

शुद्धातम में मगन हो, परमातम पद पाय।
भविजन को शुद्धात्मा, उपादेय दरशाय॥
जाय बसे शिवलोक में, अहो अहो जिनराज।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, आयो पूजन काज॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री वीतराग देव ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

ज्ञानानुभूति ही परमामृत है, ज्ञानमयी मेरी काया।
है परम पारिणामिक निष्क्रिय, जिसमें कुछ स्वाँग न दिखलाया॥
मैं देख स्वयं के वैभव को, प्रभुवर अति ही हर्षाया हूँ।
अपनी स्वाभाविक निर्मलता, अपने अन्तर में पाया हूँ॥
थिर रह न सका उपयोग प्रभो, बहुमान आपका आया है।
समतामय निर्मल जल ही प्रभु, पूजन के योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय जन्मजरामृत्यु-रोगविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

है सहज अकर्त्ता ज्ञायक प्रभु, ध्रुव रूप सदा ही रहता है।
सागर की लहरों सम जिसमें, परिणमन निरन्तर होता है॥
हे शान्ति सिन्धु ! अवबोधमयी, अद्भुत तृप्ति उपजाई है।
अब चाह दाह प्रभु शमित हुई, शीतलता निज में पाई है॥
विभु अशरण जग में शरण मिले, बहुमान आपका आया है।
चैतन्य सुरभिमय चन्दन ही, पूजन के योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अब भान हुआ अक्षय पद का, क्षत् का अभिमान पलाया है।
प्रभु निष्कलंक निर्मल ज्ञायक अविचल अखण्ड दिखलाया है।
जहाँ क्षायिकभाव भी भिन्न दिखे, फिर अन्यभाव की कौन कथा।
अक्षुण्ण आनन्द निज में विलसे, नि:शेष हुई अब सर्व व्यथा॥
अक्षय स्वरूप दातार नाथ, बहुमान आपका आया है।
निरपेक्ष भावमय अक्षत ही, पूजन के योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

चैतन्य ब्रह्म की अनुभूतिमय, ब्रह्मचर्य रस प्रगटाया।
भोगों की अब मिटी वासना, दुर्विकल्प भी नहीं आया॥
भोगों के तो नाम मात्र से भी, कम्पित मन हो जाता।
मानों आयुध से लगते हैं, तब त्राण स्वयं में ही पाता॥
हे कामजयी निज में रम जाऊँ, यही भावना मन आनी।
श्रद्धा सुमन समर्पित जिनवर, कामबुद्धि सब विसरानी॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

निज आत्म अतीन्द्रिय रस पीकर, तुम तृप्त हुए त्रिभुवनस्वामी।
निज में ही सम्यक् तृप्ति की, विधि तुम से सीखी जगनामी॥
अब कर्त्ता भोक्ता बुद्धि छोड़, ज्ञाता रह निज रस पान करूँ।
इन्द्रिय विषयों की चाह मिटी, सर्वांग सहज आनन्दित हूँ॥
निज में ही ज्ञानानन्द मिला, बहुमान आपका आया है।
परम तृप्तिमय अकृतबोध ही, पूजन योग्य सुहाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

मोहान्धकार में भटका था, सम्यक् प्रकाश निज में पाया।
प्रतिभासित होता हुआ स्वज्ञायक, सहज स्वानुभव में आया॥
इन्द्रिय बिन सहज निरालम्बी प्रभु, सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगटी।
चिरमोह अंधेरी हे जिनवर, अब तुम समीप क्षण में विघटी॥
अस्थिर परिणति में हे भगवन् ! बहुमान आपका आया है।
अविनाशी केवलज्ञान जगे, प्रभु ज्ञानप्रदीप जलाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

निष्क्रिय निष्कर्म परम ज्ञायक, ध्रुव ध्येय स्वरूप अहो पाया।
तब ध्यान अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, विघटी परपरिणति की माया॥
जागी प्रतीति अब स्वयं सिद्ध, भव भ्रमण भ्राँति सब दूर हुई।
असंयुक्त निर्बन्ध सुनिर्मल, धर्म परिणति प्रकट हुई॥
अस्थिरताजन्य विकार मिटें, मैं शरण आपकी हूँ आया।
बहुमानभावमय धूप धरूँ, निष्कर्म तत्त्व मैंने पाया॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

है परिपूर्ण सहज ही आतम, कमी नहीं कुछ दिखलावे।
गुण अनन्त सम्पन्न प्रभु, जिसकी दृष्टि में आ जावे॥
होय अयाची लक्ष्मीपति, फिर वाँछा ही नहीं उपजावे।
स्वात्मोपलब्धिमय मुक्तिदशा का सत्पुरुषार्थ सु प्रगटावे॥
अफलदृष्टि प्रगटी प्रभुवर, बहुमान आपका आया है।
निष्काम भावमय पूजन का, विभु परमभाव फल पाया है॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अविचल अनर्घ्य पद पाया, सहज प्रमोद हुआ भारी।
ले भावार्घ्य अर्चना करता, निज अनर्घ्य वैभव धारी॥
चक्री इन्द्रादिक के पद भी, नहिं आकर्षित कर सकते।
अखिल विश्व के रम्य भोग भी, मोह नहीं उपजा सकते॥
निजानन्द में तृप्तिमय ही, होवे काल अनन्त प्रभो!।
ध्रुव अनुपम शिव पदवी प्रगटे, निश्चय ही भगवन्त अहो !॥

ॐ ह्रीं श्री वीतराग देवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(छन्द-चामर तर्ज- मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक...)

प्रभो आपने एक ज्ञायक बताया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥टेक॥
यही रूप मेरा मुझे आज भाया।
महानन्द मैंने स्वयं में ही पाया॥
भव-भव भटकते बहुत काल बीता।
रहा आज तक मोह-मदिरा ही पीता॥
फिरा ढूँढ़ता सुख विषयों के माहीं।
मिली किन्तु उनमें असह्य वेदना ही॥
महाभाग्य से आपको देव पाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥१॥
कहाँ तक कहूँ नाथ महिमा तुम्हारी।
निधि आत्मा की सु दिखलाई भारी॥
निधि प्राप्ति की प्रभु सहज विधि बताई।
अनादि की पामरता बुद्धि पलाई॥
परमभाव मुझको सहज ही दिखाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥२॥
विस्मय से प्रभुवर था तुमको निरखता।
महामूढ़ दुखिया स्वयं को समझता॥

स्वयं ही प्रभु हूँ दिखे आज मुझको।
महा हर्ष मानों मिला मोक्ष ही हो॥
मैं चिन्मात्र ज्ञायक हूँ अनुभव में आया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥३॥
अस्थिरता जन्य प्रभो दोष भारी।
खटकती है रागादि परिणति विकारी॥
विश्वास है शीघ्र ये भी मिटेगी।
स्वभाव के सन्मुख यह कैसे टिकेगी?॥
नित्य-निरंजन का अवलम्ब पाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥४॥
दृष्टि हुई आप सम ही प्रभो जब।
परिणति भी होगी तुम्हारे ही सम तब॥
नहीं मुझको चिन्ता मैं निर्दोष ज्ञायक।
नहीं पर से सम्बन्ध मैं ही ज्ञेय ज्ञायक॥
हुआ दुर्विकल्पों का जिनवर सफाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥५॥
सर्वांग सुखमय स्वयं सिद्ध निर्मल।
शक्ति अनन्तमयी एक अविचल॥
बिन्मूर्ति चिन्मूर्ति भगवान आत्मा।
तिहूँ जग में नमनीय शाश्वत चिदात्मा॥
हो अद्वैत वन्दन प्रभो हर्ष छाया।
तिहूँ लोक में नाथ अनुपम जताया॥६॥

ॐ ह्रीं श्री वीतरागदेवाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

दोहा– आपहि ज्ञायक देव है, आप आपका ज्ञेय।
अखिल विश्व में आप ही, ध्येय ज्ञेय श्रद्धेय॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि॥

श्री जिनवाणी पूजन

(वीरछन्द)

अनेकान्तमय तत्त्व बताती, स्याद्वादमय जिनवाणी।
मंगलमय शुद्धात्म दिखाती, नय प्रमाण से जिनवाणी॥
भक्ति भाव से पूजा करते, मन में अति हर्षाता हूँ।
अन्तर्लीन परिणति होवे, यही भावना भाता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छन्द-रोला)

भेदज्ञानमय जल लेकर में पूजा करता।
शाश्वत ज्ञानानन्दमय आतम दृष्टि धरता॥
जन्म-जरा-मृत दोष सहज विनशावनहारी।
जिनवाणी भव्यों की माता सम उपकारी॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

क्षमाभावमय चन्दन लेकर जजूँ सदा ही।
क्रोधादिक मम चित्त माँहिं उपजें न कदा ही॥
असहनीय भव ताप सहज विनशावन हारी॥
जिनवाणी भव्यों की माता सम उपकारी॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल सरल भाव अक्षत से पूजा करता।
क्षत्-विक्षत् संयोगी भाव सहज ही तजता॥
अक्षय पद पाऊँ होकर चैतन्य विहारी॥जिनवाणी...॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि.स्वाहा।

परम शीलमय सुमनों से पूजूँ हर्षाऊँ।
महाक्लेशमय कामादिक दुर्भाव नशाऊँ॥
ब्रह्म भावना सदा सभी को मंगलकारी॥जिनवाणी...॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

ज्ञान शरीरी जड़ शरीर से भिन्न निजातम।
आराधन से अहो धन्य होते परमातम॥
चरू से पूजूँ भाऊँ आतम तृप्तिकारी।
जिनवाणी भव्यों की माता सम उपकारी॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि.स्वाहा।

ज्ञानमयी निज शुद्धातम सबको दर्शाती।
जो अनादि का मोह महातम सहज नशाती॥
पूजूँ ज्ञान प्रदीप जलाऊँ मंगलकारी॥जिनवाणी...॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

कर्मादिक का दोष ज्ञान में नहीं दिखावें।
ध्याते ज्ञान स्वरूप, सहज ही कर्म नशावें॥
पूजूँ जिनवाणी ध्याऊँ, आतम अविकारी॥जिनवाणी ...॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्म-विध्वंसनाय धूपं नि.स्वाहा।

अहो ज्ञानघन सहजमुक्त आतम दर्शाया।
जिनवाणी माँ के प्रसाद से शिवपथ पाया॥
फल से पूजूँ त्यागूँ फल वाँछा दुखकारी॥
जिनवाणी भव्यों की माता सम उपकारी॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.स्वाहा।

द्रव्य-भावमय अर्घ्य सजा पूजूँ जिनवाणी।
नित्य-बोधनी तरण-तारिणी शिव सुखदानी॥
हो अनर्घ्य निज आतम प्रभुता मंगलकारी॥जिनवाणी...॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दिव्यज्ञानप्राप्तये अर्घ्यं नि.स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

गाऊँ जयमाला अहो, तत्त्व प्रकाशनहार।
जिनवाणी अभ्यास से, जानूँ जाननहार॥

(चौपाई)

जिनवाणी शिवमार्ग बतावे, जिनवाणी निज तत्त्व दिखावे।
जिनवाणी दुर्मोह नशावे, जिनवाणी भवफन्द छुड़ावे॥

क्रोध अग्नि को सहज बुझावे, मान महाविष तुरत नशावे।
मृदुता ऋजुता माँ सिखलावे, तोष सुधारस पान करावे॥

जिनवाणी अभ्यास करें जे, निर्भय और निशंक रहें वे।
दोष नशावें गुण प्रगटावें, सहज परम वात्सल्य बढ़ावें॥

निज से अस्ति पर से नास्ति, समझे सो ही पावे स्वस्ति।
हो निष्काम निजातम भावे, हो निर्ग्रंथ परमपद ध्यावे॥

असत् विभावों की नहिं चिन्ता, निजस्वभाव में सतत रमन्ता।
कर्म कलंक समूल नशावें, ध्रुव अविचल शिवपदवी पावें॥

आदर्शों का ज्ञान कराती, नैमित्तिक व्यवहार सिखाती।
बन्ध-मुक्ति प्रक्रिया बताती, स्वानुभूति की कला सुझाती॥

चार अनुयोगमयी जिनवाणी, माता सम सबको सुखदानी।
भक्ति भाव से करूँ अर्चना, आतमहित की जगी भावना॥

दिव्यतत्त्व दर्शावनहारी, दिव्यज्ञान प्रगटावन हारी।
जयवन्ते जग में जिनवाणी, तत्त्वज्ञान पावें सब प्राणी॥

(दोहा)

जिनवाणी है द्रव्यश्रुत, ज्ञानभाव श्रुतज्ञान।
अभ्यासो नित द्रव्यश्रुत, प्रगटे ज्ञान महान॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपद-प्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्व. स्वाहा।

(सोरठा)

परम प्रीति उरधार, जिनवाणी पूजा रची।
आतम रूप निहार, मोह मिटा आनन्द हुआ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री मुनिराज पूजन

(वीरछन्द)

विषयाशा आरम्भ रहित जो, ज्ञान ध्यान तप लीन रहें।
सकल परिग्रह शून्य मुनीश्वर, सहज सदा स्वाधीन रहें॥
प्रचुर स्व-संवेदनमय परिणति, रत्नत्रय अविकारी है।
महा हर्ष से उनको पूजें, नित प्रति धोक हमारी है॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिश्वराः ! अत्र अवतर अवतर। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः । अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्

(अवतार)

मुनिमन सम समता नीर, निज में ही पाया।
नाशें जन्मादिक दोष, शाश्वत पद भाया॥
गुण मूल अठाइस युक्त, मुनिवर को ध्यावें।
अपना निर्ग्रंथ स्वरूप, हम भी प्रगटावें॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो जन्ममरामृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन सम धर्म सुगन्ध, जग में फैलावें।
बैरी भी बैर विसारि, चरणन सिर नावें॥गुण मूल.॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्व मुनिवरेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

लख तुष समान तन भिन्न, अक्षय शुद्धातम।
आराधें निर्मम होय, कारण परमातम॥गुण मूल.॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

निष्कम्प मेरु सम चित्त, काम विकार न हो।
लहुँ परम शील निर्दोष, गुरु आदर्श रहो॥गुण मूल.॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

निर्दोष सरस आहार, माँहिं उदास रहें।
हैं निजानन्द में तृप्त, हम यह वृत्ति लहें॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

निर्मल निज ज्ञायक भाव, दृष्टि माँहिं रहे।
कैसे उपजावे मोह, ज्ञान प्रकाश जगे॥गुण मूल.॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

तज आर्त रौद्र दुर्ध्यान, आतम ध्यान धरें।
उनको पूजें हर्षाय, कर्म-कलंक हरें॥गुण मूल.॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

निश्चल निजपद में लीन, मुनि नहिं भरमावें।
निस्पृह निर्वांछक होय, मुक्ति फल पावें॥गुण मूल.॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

चक्री चरणन शिर नाय, महिमा प्रगट करें।
लेकर बहुमूल्य सु अर्घ्य, हम भी भक्ति करें ॥गुण मूल.॥

ॐ ह्रीं श्री त्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

कामादिक रिपु जीतकर, रहें सदा निर्द्वन्द।
तिनके गुण चिन्तत कटें, सहज कर्म के फन्द॥

(चौपाई)

मुनिगुण गावत चित हुलसाय, जनम-जनम के क्लेश नशाय।
शुद्ध उपयोग धर्म अवधार, होय विरागी परिग्रह डार॥

तीन कषाय चौकड़ी नाश, निर्ग्रंथ रूप सु कियो प्रकाश।
अन्तर आतम अनुभव लीन, पाप परिणति हुई प्रक्षीण॥

पंच महाव्रत सोहें सार, पंच समिति निज-पर हितकार।
त्रय गुप्ति हैं मंगलकार, संयम पालें बिन अतिचार॥

पंचेन्द्रिय अरु मन वश करे, षट् आवश्यक पालें खरे।
नग्नरूप स्नान सु त्याग, केशलौंच करते तज राग॥

एकबार लें खड़े अहार, तजें दन्त धोवन अघकार।
भूमि माँहिं कछु शयन सु करें, निद्रा में भी जाग्रत रहें॥

द्वादश तप दश धर्म सम्हार, निज स्वरूप साधें अविकार।
नहीं भ्रमावें निज उपयोग, धारें निश्चल आतम योग॥

क्रोध नहीं उपसर्गों माँहिं, मान न चक्री शीश नवाहिं ।
माया शून्य सरल परिणाम, निर्लोभी वृत्ति निष्काम॥

सबके उपकारी वर वीर, आपद माँहिं बंधावें धीर।
आत्मधर्म का दें उपदेश, नाशें सर्व जगत के क्लेश॥

जग की नश्वरता दर्शाय, भेदज्ञान की कला बताय।
ज्ञायक की महिमा दिखलाय, भव बन्धन से लेंय छुड़ाय॥

परम जितेन्द्रिय मंगल रूप, लोकोत्तम है साधु स्वरूप।
अनन्य शरण भव्यों को आप, मेटें चाह दाह भव ताप॥

धन्य-धन्य वनवासी सन्त, सहज दिखावें भव का अन्त।
अनियतवासी सहज विहार, चन्द्र चाँदनी सम अविकार॥

रखें नहीं जग से सम्बन्ध, करें नहीं कोई अनुबन्ध॥
आतम रूप लखें निर्बन्ध, नशें सहज कर्मों के बन्ध।

मुनिवर सम मुनिवर ही जान, वचनातीत स्वरूप महान।
ज्ञान माँहिं मुनिरूप निहार, करें वन्दना मंगलकार॥

पाऊँ उनका ही सत्संग, ध्याऊँ अपना रूप असंग।
यही भावना उर में धार, निश्चय ही होवें भवपार॥

ॐ ह्रीं श्रीत्रिकालवर्ती आचार्य, उपाध्याय, साधु, सर्वमुनिवरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

अहो! सदा हृदय बसें, परम गुरू निर्ग्रंथ।
जिनके चरण प्रसाद से, भव्य लहें शिवपंथ॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री निर्वाणक्षेत्र पूजन

(गीतिका)

है तीर्थ शाश्वत आत्मा उसका आराधन जो करें।
वे आत्म आराधक जगत में चरण पावन जहँ धरें॥
वे तीर्थक्षेत्र कहाय सुखकर भाव से पूजन करूँ।
हो आत्म साधक रत्नत्रय, परिपूर्ण कर भव से तिरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(अवतार)

मलहारी जल कहलाय, अन्तर्मल न हरे।
अन्तर्मल सहज नशाय, सो सम्यक् जल ले॥
सम्मेद शिखर गिरनार, चम्पा पावापुर।
कैलाश आदि सुखकार, पूजत हर्षे उर॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. ।

क्रोधादिक अनल समान, दाह करें दुखकर।
करने उनका अवसान, अनुपम चन्दन धर॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि.स्वाहा।

क्षत् रूप विभव जगमाँहिं, प्रभु सम ठुकराऊँ।
अक्षय आतम पद ध्याय, अक्षय पद पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि.स्वाहा।

इन्द्रिय सुख दुख के मूल, विष सम जान तजूँ।
अमृतमय ब्रह्म स्वरूप, हो निष्काम भजूँ॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि.स्वाहा।

नहिं मिटे भोग की भूख, सचमुच भोगों से।
होऊँ निजरस में तृप्त, बस हो भोगों से॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि.स्वाहा।

मोहान्धकार में व्यर्थ, भटका दुःख पाया।
महिमामय जिनवृष पाय, अनुभव प्रगटाया॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि.स्वाहा।

चिनगारी सम्यक्ज्ञान अन्तर में डारी।
प्रजलित हो आतमध्यान, शोधक सुखकारी॥
सम्मेद शिखर गिरनार, चम्पा पावापुर।
कैलाश आदि सुखकार, पूजत हर्षे उर॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं नि.स्वाहा।

फल पुण्य पाप के माँहिं, भव-भव भटकाया।
शिवफल की प्राप्ति हेतु, अब मन हुलसाया॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं नि.स्वाहा।

ले भाव अर्घ्य सुखकार निज में पागत हों।
प्रभु सर्व विभाव असार, दुःखमय त्यागत हों॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि.स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

तीर्थ वास की भावना, सहज होय दिन-रात।
गाऊँ जयमाला सुखद, ज्ञानमयी विख्यात॥

(पद्धरि)

जयवन्तो जग में धर्म तीर्थ, मंगलमय मंगलकरण तीर्थ।
सब पाप नशावें धर्म तीर्थ, शिवपथ दर्शावें धर्म तीर्थ॥

निज शुद्धातम परमार्थ तीर्थ, रत्नत्रय है व्यवहार तीर्थ।
अध्यात्म कथन यह सारभूत, भविजन हित हेतु निमित्त भूत॥

धर्मी से सम्बन्धित जु होय, हो धर्म क्षेत्र जगपूज्य सोय।
निर्वाण भूमि तिनमें महान, पूजों विशेष धरि भेदज्ञान॥

कैलाशशिखर प्रभु आदिनाथ, गिरनारशिखर प्रभु नेमिनाथ।
चम्पापुर वासुपूज्य प्रभुवर, पावापुर महावीर जिनवर॥

तीर्थंकर बीस सम्मेद शिखर, पायो निर्वाण अचल सुखकर।
है सर्वक्षेत्र मंगल स्वरूप, जहँ तें भये प्रभुवर सिद्ध रूप॥

पूजत उपजे आनन्द महान, निज सिद्धरूप का होय ध्यान।
तब देहादिक अतिभिन्न लगे, शिवसाधन में पुरुषार्थ जगे॥

कर्मादि शून्य ज्ञायक स्वरूप, निर्मम अखण्ड आनंद रूप।
मैं सहज मुक्त मैं नित्यमुक्त, निर्दोष निजातम सुगुण युक्त॥

यों हुई प्रतीती सुक्खरूप, भावें न स्वाँग जड़ के विरूप।
निर्ग्रंथ भावना मंगलमय, वर्ते शिवदाता आनन्दमय॥

साधक हो साधूँ पूर्ण भाव, नाशूँ भव कारण सब विभाव।
यों भाव धार करता प्रणाम, उर बसे परम तीरथ ललाम॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर निर्वाणक्षेत्रेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं नि.स्वाहा।

(दोहा)

सिद्धक्षेत्र पूजन करें, सिद्ध रूप को ध्यान।
धरें परम आनन्दमय, होवें सिद्ध समान॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री पंचमेरु पूजन

(सोरठा)

पंचमेरु अभिराम, शोभे ढाई द्वीप में।
अस्सी श्री जिनधाम, अकृत्रिम अविकार हैं॥
जिनप्रतिमा सुखकार, इक इक में शत आठ हैं।
होवे जय जयकार, भाव सहित पूजा करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्रावतरावतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(छन्द १२ मात्रा)

लेऊँ प्रभु समकित जल, धुल जावे मिथ्यामल।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यः जन्मजरामृत्यु - विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले क्षमा भाव चन्दन, कर जिनवर का सुमिरन।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत् का अभिमान तजूँ, अक्षत निज भाव भजूँ।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्य: अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

ले पुष्प शील के शुभ, नाशूँ प्रभु काम अशुभ।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

समता रस स्वादी बनूँ, दुर्दोष क्षुधादि हनूँ।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ज्ञान सु परकाशे, अज्ञान तिमिर नाशे।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ध्येय रूप ध्याऊँ, दश धर्म सु महकाऊँ।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

विषमय विधि फल त्यागा, शिवफल में चित पागा।
पंचमेरु असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले भाव अर्घ्य सुन्दर, निज विभव लहूँ जिनवर।
पंचमेरू असी मंदिर, जिनबिम्ब जजूँ सुखकर॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

पंचमेरु के जिन भवन, पूजत हो आनन्द।
गाऊँ जयमाला सुखद, नशें कर्म के फन्द॥

(पद्धरि)

जय पंचमेरु जग में महान, शाश्वत अकृत्रिम तीर्थ जान।
तीर्थंकर का जन्माभिषेक, इन्द्रादि करें उत्सव विशेष॥

जय प्रथम सुदर्शन मेरु सार, स्थित सु द्वीप जम्बू मंझार।
लख योजन उन्नत अति विशाल, शोभे भूपर वन भद्रशाल॥

ऊपर चढ़ पाँच शतक योजन, नंदन वन दीखे मनमोहन।
ऊँचा साढ़े बासठ सहस्र, योजन सोहे वन सोमनस॥

तहँ तैं छत्तीस सहस योजन, गिरशीस लसे शुभ पांडुक वन।
चारों दिशि के वन में सुन्दर, शोभें चैत्यालय श्री जिनवर॥

इक-इक में इकशत आठ लसे, जिनबिम्ब लखत दुर्मोह नशे।
ज्यों दर्पण में तनरूप लखे, त्यों आत्मस्वरूप प्रत्यक्ष दिखे॥

फिर विजय-अचल धातकीखण्ड, पूरव-पश्चिम दिशि अतिउतंग।
मंदर विद्युन्माली सु-नाम, पुष्कर में राजे अति ललाम॥

योजन चौरासी सहस उतंग, चारों मेरु सोहे अभंग।
तहँ सोलह-सोलह चैत्यालय, मनहर सुखकर श्रीजिन आलय॥

इन्द्रादिक सुर अरु विद्याधर, चारण ऋद्धिधारी मुनिवर।
प्रभु भाव वंदना करूँ सार, निज भाव माँहिं मैं भी निहार॥

पूजूँ वंदूँ आनन्दित हो, तासों विधि बंधन खंडित हो।
भोगों की चित में दाह नहीं, इन्द्रादिक पद की चाह नहीं॥

अकृत्रिम शुद्धातम साधूँ, अविनाशी शिवपद आराधूँ।
अपना पद अपने में पाऊँ, चरणों में बलिहारी जाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्य: जयमालाअर्घ्यं ।

(दोहा)

मंगलकर होवे सदा, जिनपूजा जग माँहिं।
अपनो भाव सुधारि के भवि निश्चय शिव पाँहिं।

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

नन्दीश्वर द्वीप (अष्टाह्निका) पूजन

(वीरछन्द)

नंदीश्वर के अकृत्रिम जिनमंदिर अरु जिनबिम्ब अहा।
ज्ञान माँहिं स्थापन करते उछले ज्ञानानन्द महा॥
ज्ञानमयी ही हो आराधन, सहजपने निष्काम प्रभो।
तृप्त सदैव रहूँ निज में ही, और चाह नहिं शेष विभो॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्रावतरावतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ:। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(अडिल्ल)

स्वाभाविक निर्मल जल से अविकार हैं।
दुखमय जन्म जरा मृत नाशनहार हैं॥
नंदीश्वर के बावन मंदिर अकृत्रिम।
पूजूँ श्री जिनबिम्ब अनूपम जिन समं॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ चन्दन नहीं अन्तर्ताप विनाशकं।
सहज भाव चन्दन भवताप विनाशकं॥नंदीश्वर...॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल भाव अक्षत ले मंगलकार हैं।
स्वाभाविक अक्षय पद के दातार हैं॥नंदीश्वर..॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य: अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं..।

आत्मीक गुण पुष्प जगत में सार हैं।
विषय चाह दव दाह शमन कर्तार हैं॥नंदीश्वर..॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य: कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

भोजन व्यंजन नहीं क्षुधा को नाशते।
तातें पूजूँ अकृत बोध नैवेद्य ले॥नंदीश्वर..॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य: क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीपक नहिं मोह विनाशनहार है।
मोह नशे जब जाने जाननहार है॥नंदीश्वर..॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य: मोहांधकारविनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

प्रगटे अग्नी निर्मल आतम धर्म की।
जिससे होवे हानि सर्व ही कर्म की॥नंदीश्वर..॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य: अष्टकर्मदहनाय धूपं..।

पाऊँ परम भावफल प्रभु मंगलमयी।
और कामना शेष नहीं मन में रही॥नंदीश्वर..॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य: मोक्षफलप्राप्तये फलं ..।

शुद्धभावमय अर्घ्य करूँ आनन्द सों।
पद अनर्घ्य पाऊँ छूटूँ भवफन्द सों॥नंदीश्वर..॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य: अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं..।

जयमाला

सोरठा- धर्म पर्व सुखकार, हे जिन ! पाया भाग्य से।
ध्याऊँ प्रभुपद सार, विषय कषायारम्भ तजि॥

(चौपाई)

अष्टम द्वीप नंदीश्वर सार, पूजूँ वन्दूँ भाव संभार।
इक-इक अंजनगिरि अविकार, चार-चार दधिमुख सुखकार॥
आठ-आठ रतिकर मनुहार, दिशि-दिशि तेरह मंदिर सार।
बावन मंदिर यों पहिचान, निरखत होवे हर्ष महान॥

रत्नमयी मनहर जिनबिम्ब, सन्मुख भासे निज चिद्बिम्ब।
वर्णन है जिन-आगम माँहिं, भाव सहित पूजत मन लाहिं॥

कार्तिक फाल्गुनऽषाढ़ मंझार, अन्त आठ दिन आनन्दधार।
जहँ सुरगण वन्दन को जाँहि, पुरुषार्थी सम्यक्त्व लहाहिं॥

यद्यपि शक्ति गमन की नाँहिं, तदपि ज्ञान में सहज लखाहिं।
भाव वन्दना कर सुखकार, निज अकृत्रिम भाव निहार॥

हुआ सहज संतुष्ट जिनेश, अब वांछा प्रभु रही न लेश।
निज प्रभुता निज में विलसाय, काल अनन्त सु मग्न रहाय॥

धर्म पर्व मंगलमय सार, जिस निमित्त हो तत्त्व विचार।
कर उद्यम पाऊँ पद सार, जय जय समयसार अविकार॥

पर्व अठाई मंगलरूप, ध्याऊँ निज अनुपम चिद्रूप।
नित्य पवित्र परम अभिराम, शाश्वत परमातम सुखधाम॥

स्वयं सिद्ध अकृत्रिम जान, अजर अमर अव्यय पहिचान।
देखन योग्य स्वयं में देख, विलसे उर आनन्द विशेष॥

ॐ ह्रीं श्री नंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनबिम्बेभ्य:अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

धन्य हुआ कृतकृत्य हुआ, पाया श्री जिनधर्म।
मर्म तत्त्व का प्राप्त कर, लहूँ सहज शिवशर्म॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

ज्ञान राग से तन्मय नहीं होता, ज्ञान तो राग से बहुत दूर है।
संयोग के सहारे प्राप्त सुख क्षणिक होता है।
पाप छोड़ने में सबसे पहले मोह (पर में अपनापन) को छोड़ना।
अंसभव कल्पना ही अंसतोष की जड़ है।
चित्ति की कलुषता पाप बन्ध का कारण है।

सोलहकारण पूजन

(वीरछन्द)

भवदु:ख निवारण सोलहकारण, सहजभाव से नित भाऊँ।
आनन्दित हो उत्साहित हो, रत्नत्रय पथ पर मैं धाऊँ॥
जिन भायीं भावना मंगलमय, उनने तीर्थंकर पद पाया।
मैं पूजूँ धरि बहुमान हृदय में, धर्म तीर्थ शुभ प्रगटाया॥

(दोहा)

मैं भी भाऊँ चाव सों, निज अन्तर लौ लाय।
होवे धर्म प्रभावना, तिहुँ जग में सुखदाय॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट्।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ: ठ:।
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणानि ! अत्र मम सन्निहितानि भव भव वषट्।

(मानव)

धरि दर्शविशुद्धि सुखमय, निर्मल जल ले समतामय।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दु:खहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि-विनयसंपन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचाराभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग-संवेग-शक्तितस्त्याग-तप: साधुसमाधि-वैयावृत्त्यकरण-अर्हद्भक्ति-आचार्यभक्ति-बहुश्रुत भक्ति-प्रवचनभक्ति-आवश्यकापरिहाणि मार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येतितीर्थंकरत्व कारणेभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ धैर्यमयी ले चन्दन, जिन चरणों में कर वन्दन।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दु:खहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

निस्तुष ज्ञानाक्षत धारूँ, क्षत् विभव चाह परिहारूँ।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दु:खहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम शील प्रगटाकर, भावों के पुष्प चढ़ाकर।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दु:खहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्य: कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

निज रसमय चरु ले आऊँ, दुर्दोष क्षुधादि नशाऊँ।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

अज्ञान तिमिर क्षयकारी, ले ज्ञानदीप अविकारी।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशाय दीपं निर्व. स्वाहा।

ध्याऊँ पद पाप निकन्दन, नाशें सब ही विधि बन्धन।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल भक्तिमयी सु चढ़ाऊँ, निर्वाण महाफल पाऊँ।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

ले अर्घ्य अनूपम सुखमय, लहूँ भावलीनता अक्षय।
पूजूँ भाऊँ सुखकारी, सोलहकारण दुःखहारी॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

इह विधि मंगलकार, पूजा करि आनन्द सौं।
सहज स्वरूप विचार, गाऊँ जयमाला सुखद॥

(त्रोटक)

सम्यक् दर्शन निर्दोष होय, शंकादि दोष लागे न कोय।
रत्नत्रय प्रति नित विनय रहे, कब पूर्ण होय यह भाव रहे॥

निर्दोष शील वर्ते अखण्ड, परमार्थ लहूँ हो मोह खण्ड।
भाऊँ सु निरन्तर भेदज्ञान, जासों पाऊँ निजपद महान॥

हो धर्म धर्मफल में उछाह, उपजे न कदाचित् विषय दाह।
निजशक्ति संभारि करूँ सुदान, त्यागूँ विभाव दुखकारि जान॥

शक्ति अनुसार धरूँ विचित्र, इच्छा निरोध जिनतप पवित्र।
साधु-समाधि में करि सहाय, मैं भी समाधि लहुँ सुक्खदाय॥

हो तत्पर वैयावृत्ति माँहिं, विचरूँ मैं भी शिवमार्ग माँहिं।
अरहंत भक्ति धरि विषय टार, आराधूँ साधूँ स्वपद सार॥

आचार्य भक्ति होवे पवित्र, धारूँ निर्मल सम्यक् चरित्र।
वंदूँ बहु श्रुतधर उपाध्याय, लहूँ ज्ञान महान सु मुक्तिदाय॥

जिनप्रवचन की भक्ति अनूप, धरि ध्याऊँ अविकल चित्स्वरूप।
आवश्यक निश्चय अरु व्यवहार, हो सहजभाव से सुखकार॥

होवे प्रभावना मंगलमय, जिनधर्म धरें सब हों निर्भय।
धर्मी प्रति अति ही वात्सल्य, होवे सुखकारी अरु निःशल्य॥

सोलहकारण आनन्दकार, तीर्थंकर पद की देनहार।
निर्वांछक हो भाऊँ सु सार, ध्रुव तीर्थरूप निजपद निहार॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

सोलह कारण भावना, सब ही को सुखदाय।
पूजूँ भाऊँ भक्ति धरि, श्री जिनधर्म सहाय॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री दशलक्षणधर्म पूजन

(हरिगीतिका)

उत्तम क्षमादिक धर्म आतम का सहज निजभाव है।
सुख शान्ति का है हेतु जग में, मुक्ति का सु उपाव है॥
है मूल सम्यग्दर्श, निज में लीनतामय ये धरम।
पूजूँ सु भाऊँ भावना हो पूर्ण दशलक्षण धरम॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(रेखता)

सहज प्रासुक सु निर्मल जल, करो प्रक्षाल मिथ्यामल।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमामार्दवार्जवसत्यशौचसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्येति दशलक्षणधर्माय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

शान्त भावों का ले चन्दन, सहज भवताप निकंदन।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

अखय पद कारणे अक्षय, आत्म पद का करो आश्रय।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमन श्रद्धा सजाओ सब काम दुःखमय नशाओ अब।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय कामबाणविध्वंशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परम सन्तोषमय नैवेद्य, क्षुधादिक का न हो कुछ खेद।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उजारो ज्ञान का दीपक, महातम मोह का नाशक।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोहान्धकारविनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्नि शोधक जले तप की, भस्म हो कर्म की प्रकृति।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

नहीं फल पुण्य के चाहो, मोक्षफल भी सहज पाओ।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

समर्पित अर्घ्य अविकारी, होओ साक्षात् शिवचारी।
धर्म दशलक्षणी सुखकर, जजों निज माँहिं दृष्टि धर॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दश अंगों के अर्घ्य

(चौपाई)

निज अन्तर्मुख दृष्टि होवे, परमानन्दमय वृत्ति होवे।
तहँ अनिष्ट भासे नहीं कोई, क्रोध बैर उत्पन्न न होई॥
उत्तम क्षमा सहज अविकारी, वर्ते निज पर को हितकारी।
तत्त्वाभ्यास करो मनमाँहीं, पर का दोष लखो कछु नाहीं॥
जैसा कर्म उदय में आवे, वैसे ही संयोग सु पावे।
तातैं कर्म बंध के कारण, क्रोधादिक का करो निवारण॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमाधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेदज्ञान करि देखो भाई ! मिथ्यामान महादुखदाई।
मानी के सब बैरी होवें, मानी को सब नीचा जोवें॥
जल ज्यों पत्थर में न समावे, त्यों मानी निजबोध न पावे।
स्वाभाविक निज प्रभुता देखो, ज्ञानी के जीवन को देखो॥
अध्रुव वस्तु का मान सुत्यागो, विनयवंत हो निज में पागो।
उत्तम मार्दव आनन्द दाता, पूजो धरो सहज हो ज्ञाता॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज सरल निज भाव पिछानो, गुप्त पाप को माया जानो।
नहीं छिपावो ताहि मिटावो, उत्तम आर्जव चित में लावो॥
क्यों समझे ठगता औरों को, पापबंध कर ठगता निज को।
उत्तम जिनशासन को भजकर, दुखमय छल-प्रपंच को तजकर॥
कोई बहाना नहीं बनाओ, रत्नत्रय पथ पर बढ़ जाओ।
सरल स्वभावी होकर भ्राता, उत्तम आर्जव पूजो ज्ञाता॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोभ लाभ का कारण नाहीं, व्यर्थ क्लेश करता मन माहीं।
लोभी विषयी महामलीना, दर-दर ठोकर खावे दीना॥
ज्ञेय लुब्ध अज्ञानी प्राणी, स्वानुभूति बिन दुःखी अज्ञानी।
जिन उपदेश भाग्य तें पाय, अनुभव रस में तृप्त रहाय॥

ध्यावो आतम परम पवित्रा, नाशे आस्रव अति अपवित्रा।
निर्लोभी हो पाप नशाय, उत्तम शौच जजों सुखदाय॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम सत्यधर्म परधाना, सत्य समझ बिन नहिं कल्याणा।
तीर्थ प्रवर्ते सत्य वचन से, होय प्रतिष्ठा सत्य धर्म से॥
सत्य धर्म सबको सुखदाई, झूठ दुःखमय दुर्गति दाई।
बोलो हित-मित-प्रिय-सत्वयना,अथवा शान्त-मौन ही रहना॥
वस्तु स्वरूप यथार्थ पिछानो, करके स्वानुभूति श्रद्धानो।
तज परभाव रमो निज ही में, प्रगटे सत्यधर्म जीवन में॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो अतीन्द्रिय आनन्द आवे, विषयों में नहिं चित्त भ्रमावे।
तज प्रमाद सब हिंसा टारी, होओ उत्तमसंयम धारी॥
करि विचार देखो मन माँहीं, भोगों में सुख किंचित् नाहीं।
हस्ति मीन अलि पतंग हिरन सम, विषयों में दुख लहें मूढ़जन॥
हो विरक्त सब पाप नशावें, धरि संयम ज्ञानी सुख पावें।
उत्तम संयम शिवपद दाता, पूजो भाओ धारो ज्ञाता॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तप निज में ही हो विश्रान्त, इच्छाएँ हो जावें शान्त।
सब ही सुख की इच्छा करें, आत्मबोध बिन सुख नहिं लहें॥
ज्यों-ज्यों भोग संयोग लहाय, आशा-तृष्णा बढ़ती जाय।
इच्छा पूरी कबहुँ न होय, करो निरोध सहज तप होय॥
बारह भेद व्यवहार कहाय, निश्चय तप सब कर्म नशाय।
अपनी-अपनी शक्ति प्रमान, उत्तम तप धारो बुधिवान॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दुखदायक विभाव सब त्याग, आत्मधर्म में धरि अनुराग।
चार प्रकार दान शुभ देय, त्रिविधि पात्र को दे यश लेय॥

औषधि अभय अहार सु जान, ज्ञानदान सब में परधान।
ज्ञान बिना भ्रमता तिहुँ लोक, आत्मज्ञान से पावे मोक्ष॥
निज को निज पर को पर जान, ज्ञानमयी कर प्रत्याख्यान।
सर्वदान दे हो निर्ग्रंथ, उत्तम त्याग धरे सो सन्त॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हूँ मैं एक शुद्ध चिन्मात्र, अन्य न मम परमाणु मात्र।
मोहादिक औपाधिक भाव, मेरे नहिं मैं ज्ञानस्वभाव॥
मैं स्वभाव से आनन्द रूप, द्विविध परिग्रह दुःख स्वरूप।
परिग्रह त्याग आकिंचन्य धर्म, धारि मुनीश्वर नाशें कर्म॥
श्रावक भी परिमाण कराहिं, परिग्रह में किंचित् रुचि नाहिं।
यों उत्तम आकिंचन सार, पूजो धारो भव्य संभार॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमआकिंचन्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम ब्रह्मचर्य अविकार, पूजों धर्म शिरोमणि सार।
कामभाव दुर्गति को मूल, भव-भव में उपजावे शूल॥
लहे न चैन करे कृत निंद्य, कामासक्त बढ़ावे बंध।
तातैं शील बाढ़ नौ धार, अपनो ब्रह्म स्वरूप निहार।
त्यागो दुखमय इन्द्रिय भोग, पावो ज्ञानानन्द मनोग।
जयवन्तो ब्रह्मचर्य अनूप, धारे सो होवे शिवभूप॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

मोह क्षोभ बिन परिणति, ही दशलक्षण धर्म।
भेदज्ञान करि धारिये, तजि क्रोधादि अधर्म॥

(तर्ज-हे दीन बन्धु श्रीपति...)

दशलाक्षणीक धर्म सहज सुःखकार है।
आनन्दमयी यह धर्म अहो मुक्तिद्वार है॥
दशलाक्षणीक धर्म ही नाशे विकार है।
जिनवर प्रणीत धर्म करे भव से पार है॥

दशलाक्षणीक धर्म कल्पवृक्ष से अधिक।
समतामयी यह धर्म चिन्तामणि से अधिक॥
दशलाक्षणीक धर्म धरे सहज ही ज्ञाता।
बिन याचना बिन कामना सब सु:ख प्रदाता ॥
दशलाक्षणीक धर्म क्रोध मान से रहित।
मंगलमयी यह धर्म माया लोभ से रहित॥
ये ही सनातन धर्म सत्य रूप है पवित्र।
संयम स्वरूप अभय रूप भोगों से विरक्त॥
तप त्याग रूप धर्म ये आनन्द स्वरूप है।
परिग्रह प्रपंच शून्य, ब्रह्मचर्य रूप है॥
दशलाक्षणीक धर्म ज्ञानमय स्वभाव है।
वर्ते निजाश्रय से सहज मेंटे विभाव है॥
दशलाक्षणीक धर्म मैत्री भाव का सेतु।
अहिंसामयी यह धर्म विश्व शान्ति का हेतु॥
आओ भजो यह धर्म तत्त्वज्ञान पूर्वक।
सब द्वन्द फन्द छोड़कर स्वलक्ष्य पूर्वक॥
यह धर्म है वस्तु स्वभाव सम्प्रदाय ना।
यह धर्म है अनादि-निधन भेदभाव ना॥
निष्काम भाव से सहज यह भावना वर्ते।
दशलाक्षणीक धर्म नित जयवन्त प्रवर्ते॥

(घत्ता)

दश लक्षण रूपं धर्म अनूपं, धरे परम आनन्द से।
दुर्भाव नशावे सब सुख पावे, छूटे भव दुख द्वन्द से॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशलक्षणधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण हैं धर्म के, धर्म नहीं दशरूप।
मोह क्षोभ बिन धर्म है, सहजहिं साम्य स्वरूप॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री रत्नत्रय पूजन

(गीतिका)

दुखहरण मंगलकरण जग में, रत्नत्रय पहिचानिये।
परमार्थ अरु व्यवहार से, दो विधि निरूपण जानिये॥
शुद्धात्म रुचि अनुभूति अरु, आचरण निश्चय रत्नत्रय।
व्यवहार है बस निमित्त सहचर, नियत से हो कर्म क्षय॥
पूजूँ परम उल्लास से मैं, दृष्टि अन्तर धारिके।
भाऊँ स्वपद की भावना, जग द्वन्द-फंद निवारिके॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ:।
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(दोहा)

निर्मल सम्यक् नीर ले, मिथ्यामैल विडार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

चन्दन ले अनुभूति मय, भव आताप निवार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय भवातापविनाशनाय चंदनं नि. स्वाहा।

अक्षय पद के कारणे, अक्षय प्रभु उर धार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

परम ब्रह्म की भावना, निर्विकल्प उर धार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय कामबाणविनाशनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

निज रस से ही तृप्त हो, दोष क्षुधादि विडार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय क्षुधारोगविनाशनाय नैवद्यं नि. स्वाहा।

परम ज्योति चैतन्यमय, हो जगमग सुखकार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

शुद्धातम का ध्यान धरि, नाशूँ सर्व विकार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।
सिंचन कर चारित्र तरू, पाऊँ शिवफल सार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।
अर्घ्य अभेद सुभक्तिमय, परमानन्द दातार।
पूजूँ धारूँ भक्ति से, रत्नत्रय अविकार॥
ॐ ह्रीं श्री सम्यक्रत्नत्रयधर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री सम्यग्दर्शन

(वीरछन्द)

आतम दर्शन सम्यग्दर्शन, अहो धर्म का मूल है।
हो नि:शंक धारूँ निज में ही, नाशे भव का शूल है॥
निर्वांछक हो ग्लानि त्यागूँ, रहूँ अमूढ़ सु सत्पथ में।
उपगूहन कर करूँ स्थितिकरण, स्व-पर का शिवपथ में॥
करूँ सहज वात्सल्य धर्म की, मंगलमयी प्रभावना।
ये ही अष्ट अंग युत समकित, हो न कदापि विराधना॥
ॐ ह्रीं श्री अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री सम्यग्ज्ञान

निज में निज का अनुभव होवे, निश्चय सम्यग्ज्ञान हो।
है निमित्त व्यवहार जिनागम, से हो तत्त्वज्ञान जो॥
शुद्ध उच्चारण सदा करूँ अरु, शुद्ध अर्थ अवधारूँ मैं।
उभय शुद्धि धरि योग्य काल में, ही स्वाध्याय सम्हारूँ मैं॥
सदा बढ़ाऊँ गुरु का गौरव, यथा योग्य बहुमान करूँ।
विनय पूर्वक संशयादि तजि, विकसित सम्यग्ज्ञान वरूँ॥
ॐ ह्रीं श्री अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्री सम्यक्चारित्र

विषयचाह की दाह शमित हो, सम्यक्चारित्र धारूँ मैं।
रत्न अमोलक दुर्लभ पाया, करि पुरुषार्थ सम्हारूँ मैं॥
स्व-पर दयामय तेरह भेद सु, निश्चय निज में लीनता।
त्यागूँ भोग परिग्रह दुखमय, जिनमें प्रतिक्षण दीनता॥
हो स्वाधीन करूँ शिव साधन, जासों निज पद पावना।
लोक शिखर पर सहज विराजूँ, फेरि न भव में आवना॥
ॐ ह्रीं श्री त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

(सोरठा)

सम्यग्दर्शन ज्ञान, अरु चारित्र की एकता।
ये ही पथ निर्वान, निश्चय आत्मस्वरूप है॥
महिमा अपरम्पार, वचन अगोचर ज्ञानमय।
वन्दूँ बारम्बार, गाऊँ जयमाला सुखद॥

(छन्द-पद्धरि)

सम्यक् रत्नत्रय आतमरूप, सम्यक् रत्नत्रय शिव स्वरूप।
सम्यक् रत्नत्रय त्रिजगसार, इस ही से हो भव सिन्धु पार॥

सम्यक् रत्नत्रय ज्योति रूप, नहिं रहे लेश तम मोह रूप।
निज रत्नत्रयमय शुद्ध भाव, प्रगटे विघटे दुखमय विभाव॥

सम्यक्रत्नत्रय हित उपाय, चिर विधि बन्धन सहजहिं नशाय।
ये ही भविजन को परम श्रेय, प्रगटाने योग्य सु उपादेय॥

धनि धनि रत्नत्रय धरूँ सार, त्रैलोक्य पूज्य निजपद निहार।
अशरण जग में है शरण भूत, जिनवचन कहा सत्यार्थ रूप॥

ताको सुयत्न है भेदज्ञान, श्री देव-शास्त्र-गुरु निमित्त जान।
जिनकथित तत्त्व का हो अभ्यास, हो स्वानुभूति लीला विलास॥

हो उदित सहज सम्यक्त्व सूर्य, रागादि विजय को बजे तूर्य।
वर्ते निर्मल उत्तम विचार, वैराग्य भावना बढ़े सार॥

आरम्भ परिग्रह पाप मूल, निर्ग्रंथ होय छोड़े समूल।
आनन्द वीर रस रह्यो छाय, तड़ तड़ तड़ विधि बंधन नशाय॥
ध्याऊँ स्वरूप श्रेणी चढ़ाय, निर्मुक्त परम पद सहज पाय।
ऐसी महिमा मन में सुभाय, पूजूँ रत्नत्रय मुक्तिदाय॥

(घत्ता)

रत्नत्रय रूपं आत्मस्वरूपं मंगलमय मंगलकारी।
साक्षात् सु पाऊँ थिर हो जाऊँ, निजपद पाऊँ अविकारी॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान-सम्यक्चारित्र धर्माय अनर्घ्यपदप्राप्तये समुच्चय जयमाला महाअर्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

पढ़ें सुनें चिन्तें अहो, पूजें धरि उर चाव।
निश्चय शिवपद वे लहें, नाशें सर्व विभाव॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री अक्षयतृतीया पर्व पूजन

(दोहा)

कर्मभूमि की आदि में ऋषभ मुनि अविकार।
नृप श्रेयांस दिया प्रथम इक्षु रस आहार॥
दानतीर्थ का प्रवर्तन, हुआ सु मंगलकार।
अक्षय तृतीया का दिवस, पूजें प्रभु सुखकार॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छन्द-अवतार)

मिथ्यामल नाशक नीर, सम्यक् सुखकारी।
ले तुम समीप हे देव, नित मंगलकारी॥
पूजें हम ऋषभ मुनीश, हो युक्ताहारी।
साक्षात् अनाहारी हो, शिवमगचारी॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामिति स्वाहा।

क्रोधानल नाशक नाथ, चन्दन क्षमामयी।
पाया तुम सम सुखकार, ज्ञायक ज्ञानमयी॥पूजें.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामिति स्वाहा।

अक्षत वैभव सुखकार, अन्तर माँहिं लखा।
क्षत् विक्षत् विभव असार, भासा मोह नसा॥पूजें.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामिति स्वाहा।

निष्काम भावना देव, जागी हितकारी।
परमार्थ भक्ति से काम, नाशे दुखकारी॥पूजें.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामिति स्वाहा।

हो निज से निज में तृप्त, वह विधि सिखलाई।
कैसे गावें उपकार, शाश्वत निधि पाई॥पूजें.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामिति स्वाहा।

सम्यक् प्रकाश में नाथ, शिवपथ दिखलाया।
हम रहें आपके साथ, ये ही मन भाया॥पूजें.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामिति स्वाहा।

निष्कर्म निरामय देव, अन्तर में पाया।
ध्यावें नाशें सब कर्म, ये ही मन भाया॥पूजें.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामिति स्वाहा।

फल पुण्य-पाप के नाथ, भोगे दुःखकारी।
अब मुक्ति महाफल देव, पावें अविकारी॥पूजें.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामिति स्वाहा।

ले उत्तम अर्घ्य मुनीश, अति ही हर्षावें।
चरणों में नावें शीश, ध्रुव प्रभुता पावें॥पूजें.॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

जयमाला गावें सुखद, मन में धरि उल्लास।
यही भावना है प्रभो ! रहें आपके पास॥

(वीरछन्द)

दीक्षा लेकर ऋषभ मुनीश्वर, छह महीने उपवास किया।
फिर आहार निमित्त ऋषीश्वर, जगह-जगह परिभ्रमण किया॥

कोई हाथी-घोड़े-वस्त्राभूषण, रत्नों के भर थाल।
ले सन्मुख आदर से आवें, देख साधु लौटें तत्काल॥

नहिं जानें आहार-विधि, इससे सब ही लाचार हुए।
अन्तराय का उदय रहा, तेरह महीने नौ दिवस हुए॥

धन्य मुनीश्वर, धन्य आत्मबल, आकुलता का लेश नहीं।
तृप्त स्वयं में मग्न स्वयं में, किंचित् भी संक्लेश नहीं॥

उदय नहीं हो दुःख का कारण, यदि स्वभाव का आश्रय हो।
निज से च्युत हो दुखी रहे, तो फिर उपचार उदय पर हो॥

दोष देखना किन्तु उदय का, कही अनीति जिनागम में।
उदय उदय में ही रहता है, नहीं प्रविष्ट हो आतम में॥

भेदज्ञान कर द्रव्यदृष्टि धर, स्वयं स्वयं में मग्न रहो।
स्वाश्रय से ही शान्ति मिलेगी, आकुलता नहिं व्यर्थ करो॥

अशरण जग में अरे आत्मन् ! नहीं कोई हो अवलम्बन।
तजकर झूठी आस पराई, अपने प्रभु का करो भजन॥

इन्द्रादिक से सेवक चक्री, कामदेव से सुत जिनके।
देखो एक समय पहले भी, नहीं आहार मिले उनके॥

हुई योग्यता सहजपने ही, सर्व निमित्त मिले तत्क्षण।
मंगल सपनों का फल सुनकर, नृप श्रेयांस थे हर्ष मगन॥

देखा आते ऋषभ मुनि को, जातिस्मरण हुआ सुखकार।
नवधा भक्ति पूर्वक नृप ने, दिया इक्षुरस का आहार॥

पंचाश्चर्य किये देवों ने, रत्न पुष्प थे बरसाए।

पवन सुगन्धित शीतल चलती, जय जय से नभ गुंजाए॥

धन्य पात्र है धन्य है दाता, धन्य दिवस धनि है आहार।
दानतीर्थ का हुआ प्रवर्तन, घर-घर होवें मंगलाचार॥

तिथि वैशाख सुदी तृतीया थी, अक्षय तृतीया पर्व चला।
आदीश्वर की स्तुति करते, सहजहिं मुक्तिमार्ग मिला॥

ऋषभदेव सम रहे धीरता, आराधन निर्विघ्न खिले।
नहीं मिले भोजन तक फिर भी, आराधन से नहीं चले॥

थकित हुआ हूँ भव भोगों से, लेश मात्र नहिं सुख पाया।
हो निराश सब जग से स्वामिन्, चरण शरण में हूँ आया॥

यही भावना स्वयं स्वयं में, तृप्त रहूँ प्रभु तुष्ट रहूँ।
ध्येय रूप निज पद को ध्याते, ध्याते शिवपद प्रगट करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जयमाला महाऽर्घ्यं निर्वपामिति स्वाहा।

(दोहा)

ज्ञाता हो दाता बनें, रंच न हो अभिमान।
धर्म तीर्थ जयवन्त हो, उत्तम त्याग महान॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री श्रुतपंचमी पूजन

(दोहा)

जिनश्रुत की पूजा करूँ, भक्तिभाव उर धार।
धन्य-धन्य श्रुतपंचमी, हुआ सुश्रुत अवतार॥
पुष्पदंत अरु भूतबलि, किया परम उपकार।
श्री षट्खण्डागम रचा, लिखा तत्त्व अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागम ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागम ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागम ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(रोला)

जिनवाणी गुण गाऊँ, प्रासुक जल ले आऊँ।
जन्म जरा मृत दोष नशाने, ध्रुवपद ध्याऊँ॥
षट्खण्डागम आदि श्रुतों की पूजा करता।
निज-पर भेद विज्ञान धार निज दृष्टि धरता॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

चन्दन से पूजूँ अरु जिनश्रुत पढूँ पढ़ाऊँ।
चन्दन सम शीतल परिणति निज में प्रगटाऊँ॥षट्... ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी के सन्मुख अक्षत शुद्ध चढ़ाऊँ।
अक्षय आत्मस्वभाव सहज समझूँ समझाऊँ॥षट ... ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रासुक पुष्पों से जिनश्रुत की पूज रचाऊँ।
कामवासना मेटूँ, निर्मल शील सु पाऊँ॥षट ... ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनश्रुत पाकर अनुभव रस में तृप्त रहूँ मैं।
कर अर्पण नैवेद्य, क्षुधादिक दोष नशूँ मैं॥षट्... ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनवाणी उपकार हृदय से नहीं भुलाऊँ।
दीपक सम्यग्ज्ञान जलाकर मोह नशाऊँ॥षट्... ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मबन्ध से भिन्न आत्मा, नित ही ध्याऊँ।
तप की शोधक अग्नि जलाकर कर्म नशाऊँ॥षट ... ॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

जिनवाणी से सहज मुक्त आतम पहचानूँ।
निज में हो संतुष्ट कर्म फल वांछा त्यागूँ॥षट्...॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि.स्वाहा।

द्रव्य-भावमय अर्घ्य चढ़ाकर श्रुतगुण गाऊँ।
जिनवाणी की कर प्रभावना अति हर्षाऊँ॥
षट्खण्डागम आदि श्रुतों की पूजा करता।
निज-पर भेद विज्ञान धार निज दृष्टि धरता॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

भ्रमतम नाशनहार, स्याद्वादमय जैनश्रुत।
अभ्यासो अविकार, गुण गाऊँ आनन्द से॥

(मत्त सवैया)

श्रुत परम्परा का ह्रास देख गुरुवर को सहज विकल्प हुआ।
जिनवाणी को लिपिबद्ध कराने का उनको शुभ भाव हुआ॥

तब श्री धरसेनाचार्य ऋषीश्वर दो मुनिवर बुलवाये थे।
अरु उनकी बुद्धि परखने को दो मंत्र सिद्ध करवाये थे॥

मंत्रों को देख अशुद्ध सहज ही संशोधन कर लीना था।
निष्कामभाव से सिद्ध किये फिर भी अभिमान न कीना था॥

प्रतिभा सम्पन्न विनय संयुत मुनि देख ऋषीश्वर मुदित हुए।
शिक्षा देकर परिपक्व किया, आचार्य बना निश्चिंत हुए॥

वे तो समाधिकर स्वर्ग गये, श्री पुष्पदन्त प्रारम्भ किया।
रच एक खण्ड श्री भूतबली स्वामी समीप था भेज दिया॥

श्री भूतबली ने शेष लिखा, यों षट्खण्डागम पूर्ण हुआ।
जेठ शुक्ल पंचमी दिवस जिनश्रुत का जय जयकार हुआ॥

आचार्य श्री ने संघ सहित जिनश्रुत की पूजा करवाई।
जिन के समान ही जिनवाणी भी पूज्य तिहूँ जग में गाई॥

धवल जयधवल महाधवल टीकाएँ फिर तो लिखी गईं।
गोम्मटसार आदिक ग्रन्थों की फिर रचनाएँ सरल हुईं॥

यों परम्परा आगम की चलती रही आज भी हमें मिली।
श्री गुणधर कुन्दकुन्द आदिक से परम्परा अध्यात्म चली॥

दोनों धारायें अविकारी सुखमय, शिवमारग दरशातीं।
चारों अनुयोगमयी जिनवाणी, वीतरागता सिखलाती॥

है अनेकान्तमय वस्तु प्ररूपित, स्याद्वाद से सुखकारी।
निर्मल दृष्टि से देखो तो अनुयोग सभी हैं हितकारी॥

आदर्श बताता है हमको, प्रथमानुयोग आनन्दकारी।
उज्ज्वल आचरण सिखाता है, चरणानुयोग मंगलकारी॥

करणानुयोग परिणामों को, अरु लोक स्वरूप बताता है।
द्रव्यानुयोग सम्यक्त्व मूल, निज पर का भेद सिखाता है॥

अतएव करो अभ्यास भव्य, नित आगम अरु अध्यातम का।
हो हेयादेय विवेक सहज, श्रद्धान जगे शुद्धातम का॥

शुद्धातम का आराधन ही, अविनाशी शिवपद दाता है।
जिनवाणी तो है निमित्त भूत, फल परिणामों का आता है॥

ॐ ह्रीं श्री परमश्रुत षट्खण्डागमाय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्व. स्वाहा।

(अडिल्ल)

माता सम उपकारी श्री जिनवाणी है।
तरण तारिणी नौका सम जिनवाणी है॥
जो पूजें अभ्यासें, अन्तर प्रीति से।
अल्पकाल में छूटें, भव की रीति से॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री वीरशासन जयन्ती पूजन

(छन्द-रोला)

वीरनाथ का दर्शन, सबको मंगलकारी।
वीरनाथ का शासन, सबको आनन्दकारी॥
सहज वस्तु स्वातन्त्र्य, वीर ने हमें बताया।
स्वयं मुक्त हो, हमें मुक्ति का मार्ग दिखाया॥

दोहा - श्रावण वदी सुप्रतिपदा, खिरी दिव्यध्वनि वीर।
भाव सहित पूजा करें, पहुँचें भव के तीर॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मति-वीर जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् इति सन्निधिकरणम्।

(तर्ज-आज अद्भुत छवि निज निहारी...)

भाव सम्यक्त्वमय नीर लावें, जन्म मरणादि का दुःख नशावें।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

लेके चन्दन क्षमाभावमय प्रभु, ईर्ष्या द्वेष मिटावें अहो विभु।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

भाव अक्षत सहज अविकारी, भक्ति प्रभु की सदा सुक्खकारी।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

बालयति हो प्रभो योगधारा, देव ऐसा ही भाव हमारा।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृप्ति निज में प्रभो निज से पाई, ऐसी तृप्ति हमें भी सुहाई।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञानमय दीप प्रभु ने जलाया, ज्ञानमय भाव हमको दिखाया।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

ध्यानमुद्रा जिनेश्वर सुहावे, देख पुरुषार्थ अन्तर जगावे।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

देख आराधना का महाफल, लगते निस्सार सब ही करमफल।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

आत्म वैभव अनर्घ्य दिखाया, अर्घ्य हमने भी जिनवर चढ़ाया।
वीर शासन जयन्ती मनावें, वीर को पूज निजपद को ध्यावें॥

ॐ ह्रीं श्री सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

जयमाला

(दोहा)

विपुलाचल पर जब प्रथम, खिरी दिव्यध्वनि सार।
भविजन अति हर्षित हुए, गूँजा जय-जयकार॥

(छन्द-त्रोटक)

जय महावीर जय वर्धमान, अतिवीर वीर सन्मति महान।
प्रभुवर को केवलज्ञान हुए, छियासठ दिन अरे व्यतीत हुए॥

नित समवशरण भर जाता था, पर योग नहीं बन पाता था।
कुछ नहीं समझ में आता था, भव्यों का मन अकुलाता था॥

जब काल दिव्यध्वनि खिरने का, गौतम आदिक के तिरने का।
आया मंगलकारी जिनवर, तब इन्द्र अवधि जोड़ा सत्वर॥

सब समझ शिष्य का वेश लिया, गौतम समीप तब गमन किया।
बोले मेरे गुरु महावीर, हैं मौन 'काव्य' अति ही गंभीर॥

भावार्थ बताओ सुखकारी, 'त्रैकाल्यं' काव्य पढ़ा भारी।
कुछ अर्थ समझ में नहीं आया, गौतम का माथा चकराया॥

शिष्यों संग वीर समीप चला, कुछ होनहार था परम भला।
जब समवशरण दिखलाया था, विस्मित हो अति हर्षाया था॥

देखत मानस्तम्भ मान गला, प्रभु दर्शन कर सम्यक्त्व मिला।
कहकर नमोस्तु दीक्षा धारी, हुए चार ज्ञान अति सुखकारी॥

गणधर का सहज निमित्त मिला, भव्यों का भी शुभ भाग्य खिला।
प्रभु दिव्यध्वनि मंगलकारी, सब जग की अति ही हितकारी॥

सुनकर भविजन प्रतिबुद्ध हुए, दीक्षा ले बहुजन शिष्य हुए।
प्रभु शासन तब से वर्ताया, है महाभाग्य हम भी पाया॥

है स्वानुभूतिमय स्वयं सिद्ध, जिनशासन चिर से ही प्रसिद्ध।
जिसमें सब जीव समान कहे, स्वभाव से ही भगवान कहे॥

देहादिक पुद्गल बतलाये, रागादिक दुख हेतु गाये।
शिवकारण सम्यक् रत्नत्रय, परिणति निज में ही होय विलय॥

अपना सुख-ज्ञान सु अपने में, अपनी प्रभुता है अपने में।
पहिचाने बिन भव भ्रमते हैं, आराधन कर प्रभु बनते हैं॥

भोगों की नहीं कामना है, हे भगवन यही भावना है।
प्रगटावें पावन जिनशासन, फैलावें जग में प्रभु शासन॥

ॐ ह्रीं श्रीं सन्मतिवीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

(सोरठा)

शासन वीर महान, जयवन्तो जग में सदा।
पाकर आतम ज्ञान, आनंदित हों जीव सब॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों के अर्घ्य

(दोहा)

आदीश्वर भगवान का, लख स्वरूप अविकार।
अर्घ्य चढ़ाऊँ भक्ति से, नमहुँ त्रियोग संभार॥१॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह महारिपु जीतकर, पायो पद निर्वाण।
अर्घ्य चढ़ाऊँ नमनकर, अजितनाथ भगवान॥२॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अविनाशी सुख शान्ति पथ, दर्शायो सुखकार।
सम्भवनाथ जिनेश को, पूजों मंगलकार॥३॥

ॐ ह्रीं श्री सम्भवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अभिनन्दन जिनराज का, दर्शन शिवसुख देय।
भाव सहित पूजूँ अहो, अष्टद्रव्य शुभ लेय॥४॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुमति सुमतिदायक प्रभो, कुमति ध्वान्त हर-भानु।
भाव सहित पूजूँ तुम्हें, पाऊँ ध्रुव कल्याण॥५॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पद्म समान अलिप्त श्री, पद्मप्रभ जिनराय।
समवशरण में राजते, पूजत सुख उपजाय॥६॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो सुपार्श्व जिनेन्द्र के, चरणन शीश नवाय।
अर्घ्य चढ़ाऊँ हर्ष से, सर्व क्लेश विनशाय॥७॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अमृतचन्द्र चिदात्मा, चन्द्रप्रभ भगवान।
दर्शायो आनन्दमय, पूजूँ धर उर ध्यान॥८॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्पदंत या सुविधिप्रभु, शिवपद सुविधि बताय।
आप बसे शिवलोक में, पूजूँ अति हरषाय॥९॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शीतल जिन पूजूँ चरण, मोह ताप विनशाय।
शीतलता प्रभु आप सम, सहजरूप विलसाय॥१०॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रेयरूप श्रेयांस जिन, परम श्रेय शुद्धात्म।
दर्शायो पूजूँ चरण, पाऊँ पद परमात्म॥११॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रथम बालयति हो प्रभो, वासुपूज्य भगवान।
ब्रह्मचर्य का भाव धरि, पूजूँ पद अम्लान॥१२॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्यजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजत विमल जिनेश को, समलभाव नशि जाय।
यही भाव धरि पूजहूँ, तीन लोक के राय॥१३॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महिमा अनन्त जिनेश की, शब्दों में नहीं आय।
ज्ञान माहिं अवलोक कर, पूजूँ अर्घ्य चढ़ाय॥१४॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परम धरम दर्शाइया, धर्मनाथ जिनराज।
आनन्द सों पूजूँ प्रभो, सफल होंय सब काज॥१५॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मशान्ति का मूल है, निर्मल भेद-विज्ञान।
ज्ञान करायो शान्तिप्रभु, पूजूँ नित धर ध्यान॥१६॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्राणि मात्र के प्रति प्रभो, दया सिखाई आप।
पूजूँ कुन्थु जिनेश को, जीवन हो निष्पाप॥१७॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पूजत श्री अरनाथ को, भविजन चित हुलसाय।
जैसे ऊगत भानु के, सहज जलज खिल जाय॥१८॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोह मल्ल को जीतकर, आप हुए शिवनाथ।
मल्लिनाथ पद पूजते, देखूँ चेतन नाथ॥१९॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिव्रत धारूँ चाव सौं, अपने हित के काज।
यही भाव धरि पूजहूँ, मुनिसुव्रत जिनराज॥२०॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सविनय अर्घ्य चढ़ाय के, नमन करूँ नमिनाथ।
दर्शन पाकर आपका, भविजन होंय सनाथ॥२१॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

व्याह समय दीक्षा धरी, नेमीश्वर महाराज।
परम ब्रह्मपद दृष्टि धरि, पूजूँ शिवपद काज॥२२॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो-अहो श्री पार्श्वप्रभु, किया कमठ मद चूर।
भक्ति सहित प्रभु पूजते, विपद होय सब दूर॥२३॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज बल से जीता प्रभो, महासुभट दुष्काम।
पूजूँ वीर जिनेश को, होऊँ मैं निष्काम॥२४॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पवित्र तत्त्व को छुये बिना पवित्रता नहीं आती।

सबसे पहले तत्त्वज्ञान कर, स्व-पर भेद-विज्ञान करो।
निजानन्द का अनुभव करके, भोगों में सुखबुद्धि तजो॥

विविध-अर्घ्य

श्री तीर्थक्षेत्रों को अर्घ्य

तीर्थ तत्त्वमय है सदा, ज्ञायक शाश्वत तीर्थ।
अभेद ज्ञायक भावना, है व्यवहार सुतीर्थ॥
ज्ञायक भावना भावते, संत जहाँ तिष्ठाय।
ते ही क्षेत्र सु जगत में, तीर्थक्षेत्र कहलाय॥

ॐ ह्रीं श्री सर्वतीर्थक्षेत्रेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री समवशरणजी को अर्घ्य

अद्भुत रचना समवसरण की, प्रभु स्वरूप अविकार है।
दिव्यध्वनि में ध्वनित हो रहा, अहो समय का सार है॥
वीतराग प्रभु के दर्शन से, खुला मुक्ति का द्वार है।
भक्ति भाव से अर्घ्य, चढ़ाऊँ, आनन्द अपरम्पार है॥

ॐ ह्रीं श्री समवशरणाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री मानस्तम्भजी को अर्घ्य

देखत मान गले मानी का, मानस्तम्भ सार्थक नाम।
चतुर्मुखी जिनबिम्ब विराजे, भक्ति सहित मैं करूँ प्रणाम॥
द्रव्य-भावमय अर्घ्य चढ़ाकर, भाऊँ भावना मंगलकार।
ज्ञानमयी निर्मान अवस्था, हे जिनवर पाऊँ अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री मानस्तम्भाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय महाऽर्घ्य

पूजूँ मैं श्री पःा परम गुरु, उनमें प्रथम श्री अरहन्त।
अविनाशी अविकारी सुखमय, दूजे पूजूँ सिद्ध महन्त॥१॥

तीजे श्री आचार्य तपस्वी, सर्व साधु नायक सुखधाम।
उपाध्याय अरु सर्व साधु प्रति, करता हूँ मैं कोटि प्रणाम॥२॥

करूँ अर्चना जिनवाणी की, वीतराग-विज्ञान स्वरूप।
कृत्रिमाकृत्रिम सभी जिनालय, वन्दूँ अनुपम जिनका रूप॥३॥

पंचमेरु नन्दीश्वर वन्दूँ, जहाँ मनोहर हैं जिनबिम्ब।
जिसमें झलक रहा है प्रतिपल, निज ज्ञायक का ही प्रतिबिम्ब॥४॥

भूत भविष्यत् वर्तमान की, मैं पूजूँ चौबीसी तीस।
विदेह क्षेत्र के सर्व जिनेन्द्रों के, चरणों में धरता शीश॥५॥

तीर्थङ्कर कल्याणक वन्दूँ, कल्याणक अरु अतिशय क्षेत्र।
कल्याणक तिथियाँ मैं चाहूँ और धार्मिक पर्व विशेष॥६॥

सोलहकारण दशलक्षण अरु, रत्नत्रय वन्दूँ धर चाव।
दयामयी जिनधर्म अनूपम, अथवा वीतरागता भाव॥७॥

परमेष्ठी का वाचक है जो, ओंकार वन्दूँ मैं आज।
सहस्रनाम की करूँ अर्चना, जिनके वाच्य मात्र जिनराज॥८॥

जिसके आश्रय से ही प्रगटें, सभी पूज्यपद दिव्य ललाम।
ऐसे निज ज्ञायक स्वभाव की, करूँ अर्चना मैं अभिराम॥९॥

(दोहा)

भक्तिमयी परिणाम का, अद्भुत अर्घ्य बनाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, ज्ञायकदृष्टि लाय॥

ॐ ह्रीं भावपूजा भाववंदना त्रिकालपूजा त्रिकालवंदना करे-करावे भावना भावे श्री अरहन्तजी सिद्धजी आचार्यजी उपाध्यायजी सर्वसाधुजी पंचपरमेष्ठिभ्यो नमः, प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग द्रव्यानुयोगेभ्यो नमः, दर्शनविशुद्ध्यादि षोड़शकारणेभ्यो नमः, उत्तमक्षमादि दशलाक्षणिक धर्माय नमः, सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रेभ्यो नमः, जलविषैं थलविषैं आकाशविषैं गुफाविषैं पहाड़विषैं नगर-नगरीविषैं ऊर्ध्वलोक-मध्यलोक-पाताललोकविषैं विराजमान कृत्रिम-अकृत्रिम जिन-चैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो नमः, विदेहक्षेत्रे विद्यमान विंशति तीर्थङ्करेभ्यो नमः, पाँच भरत पाँच ऐरावत दशक्षेत्र सम्बन्धी तीस चौबीसी के सात सौ बीस तीर्थंकरेभ्यो नमः, नन्दीश्वरद्वीप सम्बन्धी बावन जिन-चैत्यालयेभ्यो नमः, पःामेरु सम्बन्धी अस्सी जिन-चैत्यालयेभ्यो नमः, सम्मेदशिखर कैलाशगिरि चम्पापुर पावापुर गिरनार शत्रुञ्जय आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो नमः, अयोध्या हस्तिनापुर राजगृही आदि तीर्थक्षेत्रेभ्यो नमः, जैनबद्री मूडबद्री आदि अतिशय क्षेत्रेभ्यो नमः, श्री चारणऋद्धिधारी सप्त परमर्षिभ्यो नमः अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

शान्ति पाठ

हूँ शान्तिमय ध्रुव ज्ञानमय, ऐसी प्रतीति जब जगे।
अनुभूति हो आनन्दमय, सारी विकलता तब भगे॥१॥

निजभाव ही है एक आश्रय, शान्ति दाता सुखमयी।
भूल स्व दर-दर भटकते, शान्ति कब किसने लही॥२॥
निज घर बिना विश्राम नाहीं, आज यह निश्चय हुआ।
मोह की चट्टान टूटी, शान्ति निर्झर बह रहा॥३॥

यह शान्तिधारा हो अखण्डित, चिरकाल तक बहती रहे।
होवें निमग्न सुभव्यजन, सुखशान्ति सब पाते रहें॥४॥

पूजोपरान्त प्रभो यही, इक भावना है हो रही।
लीन निज में ही रहूँ, प्रभु और कुछ वाँछा नहीं॥५॥

(दोहा)

सहज परम आनन्दमय निज ज्ञायक अविकार।
स्व में लीन परिणति विषैं, बहती समरस धार॥६॥

विसर्जन पाठ

थी धन्य घड़ी जब निज ज्ञायक की, महिमा मैंने पहिचानी।
हे वीतराग सर्वज्ञ महा-उपकारी, तव पूजन ठानी॥१॥

सुख हेतु जगत में भ्रमता था, अन्तर में सुख सागर पाया।
प्रभु निजानन्द में लीन देख, मोय यही भाव अब उमगाया॥२॥

पूजा का भाव विसर्जन कर, तुमसम ही निज में थिर होऊँ।
उपयोग नहीं बाहर जावे, भव क्लेश बीज अब नहिं बोऊँ॥३॥

पूजा का किया विसर्जन प्रभु, और पाप भाव में पहुँच गया।
अब तक की मूरखता भारी, तज नीम हलाहल हाय पिया॥४॥

॥ कार्योत्सर्गं करोम्यहम् ॥

ये तो भारी कमजोरी है, उपयोग नहीं टिक पाता है।
तत्त्वादिक चिन्तन भक्ति से भी दूर पाप में जाता है॥५॥

हे बल-अनन्त के धनी विभो ! भावों में तबतक बस जाना।
निज से बाहर भटकी परिणति, निज ज्ञायक में ही पहुँचाना॥६॥

पावन पुरुषार्थ प्रकट होवे, बस निजानन्द में मग्न रहूँ।
तुम आवागमन विमुक्त हुए, मैं पास आपके जा तिष्ठूँ॥७॥

(दोहा)

अक्षर पद अरु विधि में, हुई चूक जो कोय।
प्रभु प्रसाद से हो क्षमा, भक्ति सहाई होय॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

मोक्ष न आतमज्ञान बिन, क्रिया ज्ञान बिन नाहिं।
ज्ञान विवेक बिना नहीं, गुण विवेक के माहिं॥
नहिं विवेक जिनमत बिना, जिनमत जिनबिन नाहिं।
मोक्ष मूल निर्मल महा, जिनवर त्रिभुवन माहिं॥

तातें जिनको वन्दना, हमरी बारम्बार।
जिनतें आपा पाईये, तीन भुवन में सार॥
चौबीसी तीनों नमूँ, नमो तीस चौबीस।
सीमन्धर आदिक प्रभो, नमन करो जिन बीस॥
तीनकाल के जिनवरा, तीन काल के सिद्ध।
तीन काल के मुनिवरा, वन्दूँ लोक प्रसिद्ध॥
जिनवाणी रस अमृता, जा सम सुधा न और।
जाकर भव भ्रमण मिटै, पावे निश्चल ठौर॥

श्री चौबीस तीर्थंकर विधान (खण्ड-३)

विधान-पीठिका

(गीतिका)

१. श्री आदिनाथ भगवान

लीन हो निज ध्येय में, सर्वज्ञ पद पाया प्रभो।
आदि तीर्थंकर नमन अविकार हो, सुखकार हो॥
अखिल जग में, एक शुद्धातम ही भासे सार है।
पाया स्वयं में ही अहो, आनंद अपरम्पार है॥

२. श्री अजितनाथ भगवान

मोह ही हुआ पराजित, अजित प्रभु अविजित रहे।
चिद्रूप को आराधकर, शिवभूप जिनवर हो गये॥
ऐसा पराक्रम प्रगट होवे, निर्विकल्प रहूँ सदा।
संतुष्ट प्रभु निर्मुक्त निज में, सहज तृप्त रहूँ सदा॥

३. श्री सम्भवनाथ भगवान

अहो संभवनाथ दर्शन कर, परम आनन्द हुआ।
परभाव विरहित एक ज्ञायक भाव का दर्शन हुआ॥
भावना जागी सहज, निर्ग्रंथ पद अविकार हो।
तृप्त निज में ही सदा, पर की न चाह लगार हो॥

४. श्री अभिनन्दननाथ भगवान

अहो अभिनन्दन प्रभो, स्वीकार अभिनन्दन करो।
आत्म आराधन करूँ मैं, आप प्रभु साक्षी रहो॥
क्रूरता से शून्य होवे, सिंहवृत्ति ज्ञानमय।
रहूँ निज में मग्न सहजहिं, कर्म नाशें क्लेशमय॥

५. श्री सुमतिनाथ भगवान

कुमति वश धर निमित्त दृष्टि, सहा दुःख अपार है।
चिदानन्दमय आत्मा ही, अमित गुण भंडार है॥
आत्म आश्रय से जिनेश्वर, ध्रुव अचल शिवपद लहा।
धनि सुमति जिन, सुमतिदाता जगत त्राता हो अहा॥

६. श्री पद्मप्रभ भगवान

स्वर्ण विरचित पंकजों की, पंक्ति प्रभो चरणों तले।
शोभती सु विहार काले, और बहु अतिशय धरे।
पद्मवत् निर्लिप्त मुद्रा, मुक्तिपथ दरशावती।
पद्मप्रभ तुमको निरखते, याद अपनी आवती॥

७. श्री सुपार्श्वनाथ भगवान

हे सुपार्श्व जिनेन्द्र तेरा, स्तवन कैसे करूँ।
गुण अनन्त अहो अलौकिक, आदि अन्त नहीं लहूँ॥
वचन में आवे नहीं, चिन्तन न पावे पार है।
स्वानुभवमय भक्ति वर्ते, वंदना अविकार है॥

८. श्री चन्द्रप्रभ भगवान

सुधा झरती शांत मूरति, चन्द्रप्रभ अति सोहनी।
मोहनाशक दिव्यध्वनि, स्वामी परम मनमोहिनी॥
चन्द्र किरणों के परस से, सिन्धु ज्यों उछले प्रभो।
उछले परम आनन्द सागर, सहज दरशन से विभो॥

९. श्री पुष्पदंत भगवान

हे प्रभो ! अध्यात्म विद्या, दिव्यध्वनि से तुम कही।
पुष्पदन्त जिनेन्द्र मुक्ति, की सुविधि भविजन लही॥
नाम सार्थक सुविधिनाथ, स्वपद भजूँ अतिचाव से।
निश्चिंत हूँ निर्द्वन्द्व हूँ रुचि लगी सहज स्वभाव से॥

१०. श्री शीतलनाथ भगवान

आधि-व्याधि-उपाधिमय, भवताप से तपता रहा।
अहो ! शीतलनाथ मम उर, दर्श से शीतल भया॥
परम शीतल तत्त्व, निज शुद्धात्मा पाया अहा।
तृप्त निज में ही रहूँ, संताप नहिं उपजे कदा॥

११. श्री श्रेयांसनाथ भगवान

निरपेक्ष होते भी अहो, जग दुख हरो श्रेयांस जिन।
सहज जीते कर्म शत्रु, क्रोध बिन शस्त्रादि बिन॥

शृंगार बिन स्वामी स्वयं ही, जगत के शृंगार हो।
ध्रुव श्रेय पाया नाथ, मेरी वंदना अविकार हो॥

१२. श्री वासुपूज्य भगवान

चक्र से या वज्र से भी, मोह जो नशता नहीं।
जिननाथ तव उपदेश से, दुर्मोह नाशे सहज ही॥
इन्द्रादि से भी पूज्य स्वामिन्, वासुपूज्य सु नाम है।
सहज पूज्य स्वभाव पाया, नाथ सहज प्रणाम है॥

१३. श्री विमलनाथ भगवान

स्नान बिन निर्मल हुए, प्रभु आप सहज स्वभाव से।
स्वयं छूटे कर्ममल, विभु आत्मध्यान प्रभाव से॥
विमल जिनवर दर्श करते, भेदज्ञान हृदय जगा।
भ्रान्ति विघटी शान्ति प्रगटी, भाव अति निर्मल भया॥

१४. श्री अनन्तनाथ भगवान

बसे सादि अनंत शिव में, परम आनन्द रूप हो।
प्रगटे अनन्त सुगुण जिनेश्वर, रहो ज्ञाता रूप हो॥
प्रभुता अनन्त सुज्ञान में भी, अनंत ही प्रतिभासती।
प्रभु अनन्त सुदर्श से, महिमा अनन्त प्रकाशती॥

१५. श्री धर्मनाथ भगवान

जिन धर्म पाया भाग्य से, आनंद अपरम्पार है।
दीखे स्वयं में ही अहो, अक्षय विभव भंडार है॥
निन्दा करें या त्रास दें जन, धर्म नहीं छोड़ूँ प्रभो।
हे धर्मनाथ जिनेन्द्र दुःखमय, बन्ध सब तोड़ूँ विभो॥

१६. श्री शान्तिनाथ भगवान

जन्म क्षण में ही जगत में, सहज ही साता हुई।
सहस्र नेत्रों देखते, नहीं इन्द्र को तृप्ति हुई॥
विभव चक्री का प्रभो निस्सार जाना आपने।
हे शान्तिजिन ! सुखशान्तिमय, निजपद प्रकाशा आपने॥

१७. श्री कुन्थुनाथ भगवान

प्रभु अहिंसा धर्म जग में, आपने विस्तृत किया।
मैत्री-प्रमोद, दया तथा माध्यस्थ भाव सिखा दिया॥
अनुभूत मुक्तिमार्ग का, उपदेश दे प्रभु शिव बसे।
हे कुन्थुनाथ जिनेन्द्र ! सहज सु, भक्ति उर में उल्लसे॥

१८. श्री अरनाथ भगवान

षट्खण्ड पर पाकर विजय, चक्री कहाए हे प्रभो।
फिर विजय पाकर मोह पर, तीर्थेश कहलाए विभो॥
भव रहित भगवान आत्मा, आप दर्शाया हमें।
अरनाथजिन ! उपकारवश, नितभाव से वन्दन तुम्हें॥

१९. श्री मल्लिनाथ भगवान

हे बाल ब्रह्मचारी प्रभो, चिद्ब्रह्म रस में रम रहे।
यौवन समय निर्ग्रन्थ दीक्षा, धार शिवचारी भये॥
त्रैलोक्य जेता काम जीता, होय निर्मोही सहज।
हे मल्लिजिन! प्रभुरूप लखते, शीश झुक जाता सहज॥

२०. श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान

हे नाथ मुनिसुव्रत तुम्हें, पाकर सनाथ हुआ जगत।
दिव्य ध्वनि सुनकर सु जाना, भविजनों ने सत् असत्॥
असत् रूप विभाव तज, सत् भाव की आराधना।
भव्यजीव तिरें भवोदधि, हो सहज प्रभु वन्दना॥

२१. श्री नमिनाथ भगवान

अणुमात्र का स्वामित्व तज, त्रयलोक के स्वामी हुए।
आत्मा में मग्न हो, सर्वज्ञ जगनामी हुए॥
शुद्धात्मा ही मंगलोत्तम, शरण रूप अनन्य है।
हो नमन् नमि जिन ! आपको, नमनीय रूप अनन्य है॥

२२. श्री नेमिनाथ भगवान

हे नेमि प्रभु ! आदर्श है, वैराग्य जग में आपका।
चढ़ गये गिरनार स्वामी, तोड़ बन्धन पाप का॥

निर्ग्रंथ हो, निर्द्वन्द हो, प्रभु मग्न निज में ही हुए।
प्रभुता सहज प्रगटी, अलौकिक तृप्त निज में ही हुए॥

२३. श्री पार्श्वनाथ भगवान

नाग-नागिन दग्ध लखकर, करुण हो संबोधिया।
धरणेन्द्र पद्मावती हुए, वैराग्य प्रभु तुम भी लिया॥
निर्ग्रंथ हो आत्मार्थ साधा, हो गये परमात्मा।
जग को बताया पार्श्वप्रभु, परमात्मा सब आत्मा॥

२४. श्री महावीर भगवान

जीता सुभट दुर्मोह सा प्रभु, मदन को निर्मद किया।
जग से विरत हो आत्मरत, परमात्म पद को पा लिया॥
तत्त्वोपदेश दिया प्रभो ! आदेय शुद्धात्मा कहा।
हे वीर जिनवर तुम प्रसाद सु, सहज निजपद हम लहा॥

मंगलाचरण

(दोहा)

नेता मुक्तिमार्ग के, साँचे तारणहार।
कर्म कलंक विनष्ट कर, हुए विश्व ज्ञातार॥

तीर्थंकर चौबीस वर, मंगलमय अविकार।
भक्तिभाव से पूजते, मन में हर्ष अपार॥

पूजों समुच्चय रूप से, अरु प्रत्येक-प्रत्येक।
अन्तर माँहिं निहारता, मैं अनेक में एक॥

निजानन्द निज में लहूँ, भोगों की नहिं चाह।
पाऊँ मैं भी आप सम, रत्नत्रय की राह॥

जब तक नहीं निर्ग्रंथ पद, प्रगटे मंगलरूप।
जिनवर पूजन के निमित्त, भाऊँ शुद्ध चिद्रूप॥

मुक्तिमार्ग की सुविधि ही, जान प्रशस्त विधान।
भक्ति भाव से पूजते, करूँ भेद-विज्ञान॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

श्री चौबीसी समुच्चय पूजन

(गीतिका)

पंचकल्याणक सुपूजित, ऋषभ आदि जिनेश्वरा।
वर्तमान इस क्षेत्र में, विभु धर्म-तीर्थ प्रगट करा॥
पूजन करूँ अति भक्ति से, उपकार परम विचारि के।
बोधि समाधि प्राप्त हो, यह भाव उर में धारि के॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनसमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति जिनसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(रोला)

भव-भव में प्रभु जन्म मरण करि बहु दुख पाया।
दर्शन पाकर आज देव! अमरत्व लखाया॥
समता जल ले पूजूँ ध्याऊँ हे अविकारी।
ऋषभादिक चौबीस जिनेश्वर मंगलकारी॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्व...।

क्षमा भाव धरि क्रोधादिक पर प्रभु जय पाई।
आत्म शान्ति की युक्ति दिव्यध्वनि से दरशाई॥
क्षमा भाव चन्दन ले पूजूँ हे अविकारी॥ऋषभादिक.॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

क्षत् भावों में फँसकर नहिं संसार बढ़ाना।
नाथ इष्ट है तुम सम ही अक्षय पद पाना॥
आत्म भावना अक्षत ले पूजूँ अविकारी॥ऋषभादिक.॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु प्रसाद से काम सुभट क्षण में विनशाऊँ।
भाऊँ ब्रह्म स्वरूप सहज आनन्द प्रगटाऊँ॥
जजूँ पुष्प निष्काम भावमय ले अविकारी॥ऋषभादिक.॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

चपल इन्द्रियों पर जय पाकर तृप्ति पाऊँ।
निजानन्द रस आस्वादी हो क्षुधा मिटाऊँ॥
सहज तृप्त निर्वांछक हो पूजूँ अविकारी॥ऋषभादिक.॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

जिनवाणी सुन भेदज्ञान कर मोह तजूँ मैं।
अन्तर्मुख हो परमभाव निज सहज लखूँ मैं॥
निर्मोही हो पूजूँ ध्याऊँ हे अविकारी॥ऋषभादिक.॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

द्रव्य भाव नो कर्मों से शुद्धातम न्यारा।
अहो आपकी साक्षी में प्रत्यक्ष निहारा॥
कर्म कलंक नशाऊँ पूजूँ हे अविकारी॥ऋषभादिक.॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

हो निरीह निज से ही निज में शिवफल पाया।
नित्य मुक्त आतम परमातम सम दर्शाया॥
ध्याऊँ आत्म स्वरूप सहज पूजूँ अविकारी॥ऋषभादिक.॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अरे! धूल सम जग वैभव क्षण में ठुकराया।
अन्तर्मग्न हुए अनर्घ्य निज वैभव पाया॥
जजूँ अर्घ्य ले शुद्ध भावमय हे अविकारी॥ऋषभादिक.॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

सहज भाव से पूजकर, गाऊँ शुभ जयमाल।
ध्याऊँ ध्येय स्वरूप निज, कटे कर्म जंजाल॥

(भुजंगप्रयात, तर्ज-मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक...)

ऋषभनाथ पूजूँ महासुक्खकारी, अजितनाथ वन्दूँ करम रिपु संहारी।
सम्भव जिनेश्वर जजूँ शम प्रदाता, नमूँ नाथ अभिनन्दनं शिव विधाता॥

सुमति पद्मप्रभ अरु सुपारस को वंदन, अहो चन्द्रप्रभ जिन भजूँ दुख निकन्दन।
श्री पुष्पदंत सु शीतल जिनेश्वर, नमूँ भक्ति से पूज्य श्रेयांस जिनवर॥

प्रथम बालयति वासुपूज्य सुस्वामी, करममल विघातक विमल जिन नमामी।
अनन्त जिनेश्वर सुगुणऽनन्त धारी, नमूँ धर्मनाथं धरम पथ प्रचारी॥

जजूँ शान्तिनाथं परम शान्तिदायक, जयतु कुन्थु जिनवर अहिंसा विधायक।
श्री अर जिनेन्द्रं धरम नीति धारी, नमूँ मल्लि जिनवर परम ब्रह्मचारी॥

मुनिसुव्रतं नमि तथा नेमिनाथं, नमूँ पार्श्वनाथं श्री वीरनाथं।
महाभक्ति से नाथ गुणगान करके, धरम तीर्थ पाऊँ स्वपद दृष्टि धरिके॥

न लौकिक फलों की प्रभो कामना है, न विषसम कुभोगों की कुछ वासना है।
रहो आप आदर्श निजपद को ध्याऊँ, कि साधन ही क्या? साध्य भी निज में पाऊँ॥

(घत्ता)

जय जय अविकारी, शिवसुखकारी, तीर्थेश्वर चौबीस भला।
जो प्रभु गुण गावें, मोह नशावें, पावें केवलज्ञान कला॥

ॐ ह्रीं श्री ऋषभादि चतुर्विंशतिजिनेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं नि.

(सोरठा)

पूजें जिनपद सार, ध्यावें निज शुद्धात्मा।
सो पावें भव पार, त्रिविध कर्ममल नाशिके॥

॥ पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ॥

तत्त्व के आराधक कभी दुखी नहीं होते हैं।
जो आत्मा को भूलता है, वही क्रोध करता है।
स्वाधीन सुख स्वाधीन ज्ञान के द्वारा ही सम्भव है।
कषायों का फल दुख है और ज्ञान का फल सुख है।
क्रोध शुत्र का नाश नहीं करता, नये शत्रु पैदा करता है।
राग में ज्ञान का ह्रास और ज्ञान में राग का विनाश हुआ है।

श्री आदिनाथ जिनपूजन

(दोहा)

नमूँ जिनेश्वर देव मैं, परम सुखी भगवान।
आराधूँ शुद्धात्मा, पाऊँ पद निर्वाण॥

हे धर्म-पिता सर्वज्ञ जिनेश्वर, चेतन मूर्ति आदि जिनम्।
मेरा ज्ञायक रूप दिखाने दर्पण सम, प्रभु आदि जिनम्॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण पा सहज सुधारस आप पिया।
मुक्तिमार्ग दर्शा कर स्वामी, भव्यों प्रति उपकार किया॥

साधक शिवपद का अहो, आया प्रभु के द्वार।
सहज निजातम भावना, जिन पूजा का सार॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

चेतनमय है सुख सरोवर, श्रद्धा पुष्प सुशोभित हैं।
आनन्द मोती चुगते हंस सुकेलि करैं सुख पाते हैं॥
स्वानुभूति के कलश कनकमय, भरि-भरि प्रभु गुण गाते हैं।
ऐसे धर्मी निर्मल जल से, मोह मैल को नशाते हैं॥

अथाह सरवर आत्मा, आनन्द रस छलकाय।
शान्त आतम रसपान से, जन्म-मरण मिट जाय॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मग्न प्रभु चेतन सागर में शान्ति जल से न्हाय रहे।
मोह मैल को दूर हटाकर, भवाताप से रहित भये॥
तप्त हो रहा मोह ताप से सम्यक् रस में स्नान करूँ।
समरस चन्दन से पूजूँ अरु तेरा पथ अनुसरण करूँ॥

चेतन रस को घोलकर, चारित्र सुगन्ध मिलाय।
भाव सहित पूजा करूँ, शीतलता प्रगटाय॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्ष अगोचर प्रभो आप, पर अक्षत से पूजा करता।
अक्षातीत ज्ञान प्रगटा कर, शाश्वत अक्षय पद भजता॥
अन्तर्मुख परिणति के द्वारा, प्रभुवर का सम्मान करूँ।
पूजूँ जिनवर परमभाव से, निज सुख का आस्वाद करूँ॥
अक्षय सुख का स्वाद लूँ, इन्द्रिय मन के पार।
सिद्ध प्रभु सुख मगन ज्यों, तिष्ठे मोक्ष मंझार॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम अतीन्द्रिय देव अहो ! पूजूँ मैं श्रद्धा सुमन चढ़ा।
कृतकृत्य हुआ निष्काम हुआ, तब मुक्ति मार्ग में कदम बढ़ा॥
गुण अनन्तमय पुष्प सुगन्धित, विकसित हैं निज आतम में।
कभी नहीं मुरझावें परमानन्द पाया शुद्धातम में॥
रत्नत्रय के पुष्प शुभ, खिले आत्म उद्यान।
सहजभाव से पूजते हर्षित हूँ भगवान॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृप्त क्षुधा से रहित जिनेश्वर चरु लेकर मैं पूजा करूँ।
अनुभव रसमय नैवेद्य सम्यक्, तुम चरणों में प्राप्त करूँ॥
चाह नहीं किंचित् भी स्वामी, स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ।
सादि-अनन्त मुक्तिपद जिनवर, आत्मध्यान से प्रकट लहूँ॥
जग का झूँठा स्वाद तो, चाख्यो बार अनन्त।
वीतराग निज स्वाद लूँ, होवे भव का अन्त॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अगणित दीपों का प्रकाश भी, दूर नहीं अज्ञान करे।
आत्मज्ञान की एक किरण, ही मोह तिमिर को तुरत हरे॥
अहो ज्ञान की अद्भुत महिमा, मोही नहिं पहिचान सकें।
आत्मज्ञान का दीप जलाकर, साधक स्व-पर प्रकाश करें॥
स्वानुभूति प्रकाश में, भासे आत्मस्वरूप।
राग पवन लागे नहीं, केवलज्योति अनूप॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

द्वेष भाव तो नहीं रहा, रागांश मात्र अवशेष रहा।
ध्यान अग्नि प्रगटी ऐसी, तहाँ कर्मेन्धन सब भस्म हुआ॥
अहो ! आत्मशुद्धि अद्भुत है, धर्म सुगन्धी फैल रही।
दशलक्षण की प्राप्ति करने, प्रभु चरणों की शरण गही॥
स्व-सन्मुख हो अनुभवूँ, ज्ञानानन्द स्वभाव।
निज में ही हो लीनता, विनसैं सर्व विभाव॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्दर्शन मूल अहो ! चारित्र वृक्ष पल्लवित हुआ।
स्वानुभूतिमय अमृत फल, आस्वादूँ अति ही तृप्त हुआ॥
मोक्ष महाफल भी आवेगा, निश्चय ही विश्वास अहो।
निर्विकल्प हो पूर्ण लीनता, फल पूजा का प्रभु फल हो॥
निर्वांछक आनन्दमय, चाह न रही लगार।
भेद न पूजक पूज्य का, फल पूजा का सार॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक् तत्त्व स्वरूप न जाना, नहिं यथार्थत: पूज सका।
रागभाव को रहा पोषता, वीतरागता से चूका॥
काललब्धि जागी अन्तर में, भास रहा है सत्य स्वरूप।
पाऊँगा निज सम्यक् प्रभुता, भास रही निज माँहिं अनूप॥
सेवा सत्य स्वरूप की, ये ही प्रभु की सेव।
जिन सेवा व्यवहार से, निश्चय आतम देव॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

कलि असाढ़ द्वय जान, सर्वार्थसिद्धि विमान से।
आय बसे भगवान, मरुदेवी के गर्भ में॥

गर्भवास नहिं इष्ट, तहाँ भी प्रभु आनन्दमय।
माँ को भी नहिं कष्ट, रत्न पिटारे ज्यों रहे॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णद्वितीयायां गर्भकल्याणकमंडिताय श्रीआदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं .

पृथ्वी हुई सनाथ नवमी कृष्णा चैत को।
नरकों में भी नाथ, जन्म समय साता हुई॥
इन्द्रादिक सिर टेक, कियो महोत्सव जन्म का।
मेरु पर अभिषेक, क्षीरोदधि तें प्रभु भयो॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां जन्मकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

भासा जगत असार, देख निधन नीलांजना।
नवमी कृष्णा चैत्र परम दिगम्बर पद धरो॥
चिदानन्द पद सार, ध्याने को मुनि पद लिया।
परम हर्ष उर-धार लौकान्तिक, धनि-धनि कहा॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णनवम्यां तपकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

प्रगट्यो केवलज्ञान, फाल्गुन कृष्ण एकादशी।
धर्मतीर्थ अम्लान, हुआ प्रवर्तित आप से॥
समझा तत्त्व स्वरूप, दिव्य देशना श्रवण कर।
पाई मुक्ति अनूप, भव्यन निज पुरुषार्थ से॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.

पायो अविचल थान, चौदश कृष्णा माघ दिन।
गिरि कैलाश महान, तीर्थ प्रगट जग में हुआ॥
सहज मुक्ति दातार, शुद्धातम की भावना।
वर्ते प्रभु सुखकार, मैं भी तिष्ठूँ मोक्ष में॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षकल्याणकप्राप्ताय श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

आदीश्वर वन्दूँ सदा, चिदानन्द छलकाय।
चरण-शरण में आपकी, मुक्ति सहज दिखाय॥

धन्य ध्यान में आप विराजे, देख रहे प्रभु आतमराम।
ज्ञाता-दृष्टा अहो जिनेश्वर, परमज्योतिमय आनन्दधाम॥

रत्नत्रय आभूषण साँचे, जड़ आभूषण का क्या काम ?
राग-द्वेष नि:शेष हुए हैं, वस्त्र-शस्त्र का लेश न नाम॥

तीन लोक के स्वयं मुकुट हो, स्वर्ण मुकुट का है क्या काम ?
प्रभु त्रिलोक के नाथ कहाओ, फिर भी निज में ही विश्राम॥

भव्य निहारें अहो आपको, आप निहारें अपनी ओर।
धन्य आपकी वीतरागता, प्रभुता का प्रभु ओर न छोर॥

आप नहीं देते कुछ भी पर, भक्त आप से ले लेते।
दर्शन कर उपदेश श्रवण कर, तत्त्वज्ञान को पा लेते॥

भेदज्ञान अरु स्वानुभूति कर, शिवपथ में लग जाते हैं।
अहो ! आप सम स्वाश्रय द्वारा, निज प्रभुता प्रगटाते हैं॥

जब तक मुक्ति नहीं होती, प्रभु पुण्य सातिशय होने से।
चक्री इन्द्रादिक के वैभव, मिलें अन्न-संग के तुष-से॥

पर उनको चाहे नहिं ज्ञानी, मिलें किन्तु आसक्त न हों।
निजानन्द अमृत रस पीते, विष-फल चाहे कौन अहो ?

भाते नित वैराग्य भावना, क्षण में छोड़ चले जाते।
मुनि दीक्षा ले परम तपस्वी, निज में ही रमते जाते॥

घोर परीषह उपसर्गों में मन सुमेरु नहिं कम्पित हो।
क्षण-क्षण आनन्द रस वृद्धिंगत, क्षपकश्रेणि आरोहण हो॥

शुक्लध्यान बल घाति विनष्टे, अर्हत् दशा प्रगट होती।
अल्पकाल में सर्व कर्ममल-वर्जित मुक्ति सहज होती॥

परमानन्दमय दर्श आपका, मंगल उत्तम शरण ललाम।
निरावरण निर्लेप परम प्रभु, सम्यक् भावे सहज प्रणाम॥

ज्ञान माँहिं स्थापन कीना, स्व-सन्मुख होकर अभिराम।
स्वयं सिद्ध सर्वज्ञ स्वभावी, प्रत्यक्ष निहारूँ आतमराम॥

दोहा- प्रभु नन्दन मैं आपका, हूँ प्रभुता सम्पन्न।
अल्पकाल में आपके, तिष्ठूँगा आसन्न॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं नि. स्वाहा।

दोहा- दर्शन-ज्ञानस्वभावमय, सुख अनन्त की खान।
जाके आश्रय प्रगटता, अविचल पद निर्वान॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि॥

श्री अजितनाथ जिनपूजन

(दोहा)

मोह महारिपु जीतकर, कामादिक रिपु जीत।
सर्व कर्ममल धोय के, मेटी भव की रीति॥
भावसहित पूजा करूँ, प्रभु चित माँहिं वसाय।
तृप्त रहूँ आनन्द में, जाननहार जनाय॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(रोला)

शाश्वत प्रभु अवलोक, परम आनन्द उपजाया।
प्रभु प्रसाद से जन्म जरान्तक, भय विनशाया॥
अजित जिनेश्वर भक्ति भाव से पूजन तेरा।
करूँ सहज हो, वृद्धिंगत रत्नत्रय मेरा॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

सहज ज्ञान में भासित, ज्ञायक अनुभव आये।
शान्त ज्ञेय निष्ठा हो, भव आताप नशाये॥अजित...॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

क्षत् विभाव से भिन्न, स्वयं को अक्षय ध्याऊँ।
प्रभु का यह उपकार, सहज अक्षय पद पाऊँ॥
अजित जिनेश्वर भक्ति भाव से पूजन तेरा।
करूँ सहज हो, वृद्धिंगत रत्नत्रय मेरा॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

रहूँ परम निष्काम आत्म आश्रय के बल से।
सर्व वासना मिटे ब्रह्मचर्य के ही बल से॥अजित...॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

क्षुधा वेदना की पीड़ा कैसे उपजावे ?
वेदक वेद्य अभेद, ज्ञान वेदन में आवे॥अजित...॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

चित्प्रकाशमय सदा सहज, निर्मोह निजातम।
आराधूँ हे नाथ, प्रगट हो पद परमातम॥अजित...॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

जलें ध्यान की अग्निमाँहिं, सब कर्म विकारी।
अहो विभो ! निष्कर्म, अवस्था हो अविकारी॥अजित...॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

जगा हृदय बहुमान, देव तुम पूज रचाई।
हुआ परम फल, फल की अभिलाषा विनशाई॥अजित...॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

हो अनर्घ्य हे नाथ ! अर्घ्य क्या तुम्हें चढ़ाऊँ।
अन्तर्मुख हो पूजक-पूज्य, सु-भेद मिटाऊँ॥अजित...॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

गर्भ वास निष्ताप, जेठ अमावस के दिना।
कीना प्रभुवर आप, भावसहित पूजूँ चरण॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णअमावस्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

जन्म भयो सुखकार, माघ सुदी दशमी दिवस।
आनन्द अपरम्पार, भयो सहज त्रयलोक में॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लदशम्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.स्वाहा।

मुनिपद दीक्षा धार, माघ सुदी दशमी दिना।
हो निशल्य अविकार, सहज निजातम साधिया॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

घातिकर्म निरवार, पौष सुदी एकादशी।
पूर्ण ज्ञान सुखकार, पाया प्रभु अरिहंत पद॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लएकादश्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

पाया प्रभु निर्वाण, चैत्र सुदी तिथि पंचमी।
शिखर सम्मेद महान, मैं पूजों अति चाव सौं॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लपंचम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

ज्ञान शरीरी नाथ को, ज्ञान माँहिं अवलोक।
ज्ञानमयी आनन्द हो, मिटें उपद्रव शोक॥

(गीतिका)

जित-शत्रु नन्दन, भवनिकन्दन, ज्ञानमय परमात्मा।
जयमाल गाऊँ भक्ति से, ध्याऊँ सहज शुद्धात्मा॥

पूर्व भव में विमलवाहन, भूप नीतिवान थे।
श्रुतकेवली मुनिराज देखे, जो गुणों की खान थे॥

उपदेश सुन अन्तर्मुखी, परिणमन प्रभु तुमने किया।
संसार में अब नहिं रहूँ, संकल्प तत्क्षण कर लिया॥

निर्ग्रंन्थ हो निर्द्वन्द हो, भायीं सु सोलह भावना।
प्रकृति तीर्थंकर बंधी, शुभरूप मंगल कारना॥

संन्यास पूर्वक देह तजकर, हुए प्रभु अहमिन्द्र थे।
थी शुक्ल-लेश्या भाव निर्मल, वासना से शून्य थे॥

छह माह आयु शेष थी, तब रत्न धारा वरसती।
सुन्दर हुई सम्पन्न अति, साकेत नगरी हरषती॥

सोलह सु सपने मात देखे, गर्भ में आये प्रभो।
कल्याण देवों ने मनाया, सभी हर्षाये अहो॥

फिर जन्मते अभिषेक इन्द्रों ने, सुमेरू पर किया।
थे सहज वैरागी, नहीं राज्यादि करते रस लिया॥

नक्षत्र टूटा देखते, वैराग्यमय चिन्तन किया।
अनुमोदना लौकान्तिकों की पाय हर्षाया हिया॥

आनन्दमय निर्ग्रन्थ दीक्षा धरी प्रभु आनन्द से।
आराधना करते प्रभो, छूटे करम के फन्द से॥

होकर स्वयंभू देव, मुक्ति-मार्ग दर्शाया सहज।
पुनि घाति शेष अघातिया, ध्रुव सिद्धपद पाया सहज॥

पूजा करूँ प्रभु आपकी, निष्काम हो निष्पाप हो।
परिणति स्वयं में लीन हो, आदर्श जग में आप हो॥

उच्छिष्ट सम छोड़े हुए, भव भोग इष्ट नहीं मुझे।
मम नित्य ज्ञानानन्दमय प्रभु, परम इष्ट मिला मुझे॥

सन्तुष्ट हूँ अति तृप्त हूँ, रतिवन्त हूँ निज भाव में।
जयवन्त हो श्री जैनशासन, नमन सहजस्वभाव में॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

प्रभुवर चरण प्रसाद से, विजित होंय सब कर्म।
स्वाभाविक प्रभुता खिले, रहूँ सदा निष्कर्म॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री सम्भवनाथ जिनपूजन

(दोहा)

नमूँ जिनेश्वर देव मैं, अनन्त चतुष्टयवान।
आवागमन रहित प्रभो ! करता भावाह्वान॥
दृष्टि-ज्ञान-सुध्यान में, सदा विराजो आप।
आओ प्रभु ! सन्निकट हो, मेटो मम भवताप॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(अवतार)

प्रभो ! जन्म-मरण से पार, आतमतत्त्व लखा।
जीवन का सहज प्रवाह, अनादि-अनन्त दिखा॥
हे सम्भवनाथ जिनेश ! पूँजों सुखदायी।
हे प्रभु तुम चरण प्रसाद, आतम निधि पाई॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

प्रभु भव-भव का संताप, सहज विनष्ट हुआ।
लोकोत्तर चन्दन आप, मैं कृत-कृत्य हुआ॥हे सम्भव...॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

विभु अक्षयपद अभिराम, आप दिखाया है।
अक्षत से पूजत स्वामि, चित हरषाया है॥हे सम्भव...।

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

शोभे जिन सौम्य स्वरूप, अनुपम अविकारी॥
ध्रुव ब्रह्मरूप चिद्रूप, ध्याऊँ सुखकारी॥हे सम्भव...॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

हो सहज तृप्त जिनराज, अपने माँहिं सही।
संतुष्ट हुआ चित आज, वांछा शेष नहीं॥हे सम्भव...॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

निर्मोही आत्म स्वभाव, तुम सम पहिचाना।
नाशूँ दुर्मोह विभाव, प्रभु निजपद जाना॥
हे सम्भवनाथ जिनेश ! पूँजों सुखदायी।
हे प्रभु तुम चरण प्रसाद, आतम निधि पाई॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

धूपायन काया माँहिं, अग्नि ध्यानमयी।
हो ज्वलित कर्म विनशाहिं, वर्तूं ज्ञानमयी॥हे सम्भव...॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

प्रभु प्रभुता पूर्ण निहार, परमानन्द हुआ।
प्रभु पूजक भेद विडार, जाननहार हुआ॥हे सम्भव...॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

इन्द्रादिक पद निस्सार, भासे दुखकारी।
पाऊँ अनर्घ पद सार, अविचल अविकारी॥हे सम्भव...॥

ॐ ह्रीं श्री संभवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(तर्ज - घड़ी जिनराज दर्शन की..., तुम्हारे दर्श बिन...)

अहो ! फागुन सुदी आठें, खोलते कर्म की गाँठें।
नाथ जब गर्भ में आये, जजत इन्द्रादि हर्षाये॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्ल अष्टम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री सम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

पूर्णिमा कार्तिकी सुखमय, जन्मकल्याण मंगलमय।
भव्य बहुमान से पूजें, पूजते कर्म रिपु धूजें॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लपूर्णिमायां जन्ममंगलमंडिताय श्री सम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

पूर्णिमा मगसिरी आई, धरी दीक्षा सु सुखदाई।
किया कचलौंच प्रभु ऐसे, कर्म लौंचे हों जिन जैसे॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लपूर्णिमायां तपोमंगलमंडिताय श्री सम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

चतुर्थी कृष्ण कार्तिक को, नशाया कर्म घाति को।
हुआ केवल सु मंगलमय, पूजते नष्ट हो भव भय॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णचर्तुर्थ्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री सम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

चैत सुदी षष्टि सुखदाई, प्रभो पंचम गति पाई।
अहो जिनराज को जजते, मुक्ति मिलती सहज भजते ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लषष्ठ्म्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री सम्भवनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

दुर्गम भवसागर विषैं, तारण-तरण जिहाज।
भक्ति भाव उर में धरूँ, गुण गाऊँ जिनराज ॥

(वीर छन्द)

पूजन करते नाथ आपकी, आनन्द अपरम्पार रे।
भवविरहित हे सम्भव जिनवर, सहज लहूँ भवपार रे ॥टेक ॥

द्रव्येन्द्रिय,भावेन्द्रिय अरु, इन्द्रिय विषयों से भिन्न हो।
सहज अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय, अनुभव करूँ अखिन्न हो ॥
करूँ देव परमार्थ स्तुति, रहूँ सहज अविकार रे ॥पूजन॥

एक शुद्ध निर्मम निर्मोही, स्वयं स्वयं को जान मैं।
होय क्षीण मोहादि कर्म रिपु, ऐसा धारूँ ध्यान मैं ॥
रहे प्रतिष्ठित ज्ञान, ज्ञान में, चाह न रही लगार रे ॥पूजन॥

उड़ते पक्षी की छाया सम, विषयों से सुख की आशा।
महाक्लेशकारी प्रभु जानी, पुद्गल का क्या विश्वासा?
हो निराश जग से हे स्वामिन्! साधूँ निज पद सार रे ॥पूजन॥

रचना मेघ विघटते लखकर, जिनदीक्षा ली अविकारी।
आत्मध्यान धरि कर्म नशाये, अक्षय प्रभुता विस्तारी ॥
धर्म-तीर्थ का किया प्रवर्तन, तिहुँ जग तारण हार रे ॥पूजन॥

तीर्थ स्वरूप आपको पाकर, भेदज्ञान की ज्योति जगी।
दुखकारी परलक्षी परिणति, नाथ सहज ही दूर भगी ॥
करूँ देव अनुकरण आपका, शिवस्वरूप शिवकार रे ॥पूजन॥

मोहीजन को लगे असम्भव, रागादि का मिट जाना।
आज सहज सम्भव भासे प्रभु, वीतराग पद पा जाना ॥
प्रभु प्रसाद मिट जावे पूजक-पूज्य भेद दुखकार रे ॥पूजन॥

(छन्द बसंततिलका)

इन्द्रादि शीश नावें, आनन्द बढ़ावें,
अति भक्ति भाव लावें, पूजा रचावें।
मैं अर्चना करूँ क्या? है शक्ति थोरी,
पूजन निमित्त परिणति, निज माँहिं जोरी ॥

ॐ ह्रीं श्री सम्भवनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

जो पूजें मन लाय, सम्भवनाथ जिनेश को।
पावें इष्ट अघाय, अविनाशी शिवपद लहें ॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री अभिनन्दननाथ जिनपूजन

(छन्द)

चन्द्र कान्ति की सूर्य तेज की, इन्द्र विभव की चाह करें।
ऐसी कान्ति तेज अरु वैभव, अभिनन्दन प्रभु सहज धरें ॥
गुण अनुपम अक्षय हैं जिनवर, क्या महिमा का गान करूँ।
हृदय विराजो अभिनन्दन प्रभु, निजानन्द रस पान करूँ ॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(गीतिका)

आया शरण जिननाथ की जब, सहज ही अतिशय हुआ।
दिखा शाश्वत आत्मा, मरणादि से निर्भय हुआ ॥
नाथ अभिनन्दन प्रभु की, करूँ पूजा भक्ति से।
पाऊँ विशुद्धि परम जिनवर सम, स्वयं की शक्ति से ॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

जिनरूप लख मैंने लखा, शीतल स्वभाव सु आपका।
चन्दन चढ़ा निजपद भजूँ कारण नशे भवताप का॥
नाथ अभिनन्दन प्रभु की, करूँ पूजा भक्ति से।
पाऊँ विशुद्धि परम जिनवर सम, स्वयं की शक्ति से॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षय जिनेश्वर पद निरख, इन्द्रादि पद दुखमय लगे।
निज-भावमय अक्षत चढ़ाऊँ, भाग्य मेरे हैं जगे॥नाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

जिनराज गुणमय सुमन माला, कंठ में धारण करूँ।
निष्काम परम सुशील पाऊँ, भाव अब्रह्म परिहरूँ॥नाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

स्वानुभवमय सरस चरु यह, आप ढिंग पाया प्रभो।
तृप्ति हुई ऐसी कि काल अनन्त तृप्त रहूँ विभो॥नाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री अजितनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

निज ज्ञान-दीप प्रकाश से, आलोकमय मेरा सदन।
झलके सु लोकालोक ऐसा, ज्ञान-केवल लहूँ जिन॥नाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

यह देह धूपायन बनाकर, ध्यान की अग्नि जला।
भस्म कर्मों को करूँ, जिनधर्म है मुझको मिला॥नाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

नहीं शेष कुछ वाँछा रही, पूजा सफल मेरी हुई।
निश्चय मिले मुक्ति सुफल, जब दृष्टि है सम्यक् हुई॥नाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्या मूल्य है जड़ अर्घ्य का, पाया अनर्घ्य निजात्मा।
अर्घ्य उत्तम प्रभु चढ़ाऊँ, मुदित हो परमात्मा॥नाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

आये गर्भ मँझार, माँ सिद्धार्था धनि हुई।
देव किया जयकार, षष्ठी सुदि वैशाख दिन॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

हुआ जन्म सुखकार, माघ सुदी बारस तिथि।
हर्षित इन्द्र अपार, उत्सव नाना विधि किए॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

नश्वर मेघ निहार, हो विरक्त जिननाथ जी।
दीक्षा ली सुखकार, माघ सुदी बारस दिना॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लद्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

रही सहज हो नाथ, वर्ष अठारह मुनिदशा।
आप हुए जिननाथ, पौष सुदी चौदश दिना॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लचतुर्दश्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

आनन्द कूट प्रसिद्ध, शिखर सम्मेद महान है।
तहँ ते भये सुसिद्ध, षष्ठी सुदी वैशाख प्रभु॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लषष्ठ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

जयमाला जिनराज की, गाऊँ मंगलकार।
जिनकी शुभ परिणति लखे, हो वैराग्य उदार॥

(छन्द-चौपाई)

वन्दन अभिनन्दन स्वामी को, चौथे तीर्थंकर नामी को।
विदेहक्षेत्र में नृपति महाबल, न्यायवन्त शोभें बहु दल बल॥

इक दिन सहज रूप वैरागे, यों मन माँहिं विचारन लागे।
ओस बिन्दु सम वैभव सारा, दुख कारण सब ही परिवारा॥

ज्यों-ज्यों भोग मनोहर पावे, तृष्णा त्यों-त्यों बढ़ती जावे।
जब तक श्वांसा तब तक आशा, आशावान जगत के दासा॥

जब मन की आशा मर जावे, परम सुखी जगनाथ कहावे।
सुख सिद्धि का एकहि साधन, निज ज्ञायक प्रभु का आराधन॥

अब मैं समय नहीं खोऊँगा, जग प्रपंच तज मुनि होऊँगा।
यों विचार त्यागा संसारा, आनन्दमय निर्ग्रन्थ पद धारा॥

तज परिग्रह प्रभु हुए विरागी, हर्ष सहित मुनिदीक्षा धारी।
उत्तम तीर्थंकर पददायी, सोलहकारण भावना भायी॥

देह समाधि पूर्वक छोड़ी, निज परिणति निज में ही जोड़ी।
विजय विमान माँहिं उपजाये, हो अहमिन्द्र दिव्य सुख पाये॥

छह महीना आयुष्य रह गई, नगरि अयोध्या शोभित भई।
रत्न धनपति ने वर्षाये, माँ को सोलह स्वप्न दिखाये॥

अन्तिम गर्भ माहिं प्रभु आए, कल्याणक इन्द्रादि मनाए।
जन्मादिक के उत्सव भारी, जग प्रसिद्ध सबको सुखकारी॥

भोगों की कुछ कमी नहीं थी, परिणति फिर भी रंगी नहीं थी।
तप धर केवलज्ञान सु पाया, मंगल धर्म तीर्थ प्रगटाया॥

समवशरण की शोभा प्यारी, बारह सभा लगी सुखकारी।
गणधर इक सौ तीन विराजे, सोलह सहस्र केवली राजे॥

लाखों साधु आर्यिका सोहें, संघ चतुर्विध मन को मोहें।
महातत्त्व दर्शाया स्वामी, पाऊँ मैं भी अन्तर्यामी॥

सकल विभव तज मोक्ष पधारे, आऊँ नाथ समीप तुम्हारे।
भावसहित अभिनन्दन करते, शाश्वत प्रभु को नित्य सुमरते॥

ॐ ह्रीं श्री अभिनन्दननाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

पूजा हो सुखकार, अभिनन्दन जिनराज की।
पावें शिवपद सार, आकुलता का नाश हो॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री सुमतिनाथ जिनपूजन

(गीतिका)

देवेन्द्र और नरेन्द्र चरणों में सदा सिर नावते।
हर्षावते गुण गावते निज भव भ्रमण विनशावते॥
उन सुमति जिन की अर्चना को मम हृदय उमगावता।
असमर्थ हूँ अल्पज्ञ हूँ फिर भी प्रभो! गुण गावता॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सुमति जिन पूजों हरषाई।
कुमति विनाशक, सुमति प्रकाशक पूजों हरषाई॥टेक॥
भूल स्वयं को भव-भव भटक्यो, महाक्लेश पाई।
जन्म मरण नाशन को पूजों, जल से सुखदाई॥सुमति.॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भव आताप निवारण को, चन्दन से अधिकाई।
प्रभु के चरण जजों अविनाशी शीतलता दाई॥सुमति.॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

ध्रुव के आश्रय से हे जिनवर ! ध्रुवगति प्रगटाई।
भक्तिभाव अक्षत सों पूजों, अक्षय पद दाई॥सुमति.॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पुण्योदय के सकल भोग, बिन भोगे खिर जाई।
कामवासना ब्रह्मचर्य के बल से विनशाई॥सुमति.॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

भोजन सकल असार दिखे हे परम तृप्ति दाई।
अमृत झरे अहो अन्तर में, क्षुधा न उपजाई॥सुमति.॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

सूर्य-चन्द्र भी हर न सकें, जिस तम को जिनराई।
ज्ञानज्योति ताके नाशन को, प्रभुवर प्रगटाई॥सुमति.॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

आत्म-ध्यान की अग्नि, कर्म नाशन को प्रज्वलाई।
स्वाभाविक दशधर्म सुगन्धी, जग में फैलाई॥
सुमति जिन पूजों हरषाई।
कुमति विनाशक, सुमति प्रकाशक पूजों हरषाई॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

भौतिक फल अब नहीं चाहिए, भव-भव दुखदाई।
महामोक्ष फल प्रगटाने को परम शरण पाई॥सुमति.॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अन्तर में विलसाई स्वामी, अद्भुत प्रभुताई।
अर्घ्य चढ़ाऊँ भक्ति जिनेश्वर, उर में उमगाई॥सुमति.॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-चाल)

सोलह सपने माँ देखे, वर्ते उर हर्ष विशेषे।
सावन सित दूज सुहाई, गरभागम मंगलदाई॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लद्वितीयायां गर्भमंगलमंडिताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

सित चैत एकादशि आई, जन्मे त्रिभुवन सुखदाई।
कल्याणक इन्द्र मनावें, भवि पूजत बहु सुख पावें॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

ग्यारसि सित चैत महाना, तप धारा श्री भगवाना।
पूजत पद भावना भाऊँ, निर्ग्रंथ दशा कब पाऊँ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

सित चैत एकादशि आई, प्रभु केवल लक्ष्मी पाई।
सुर समवशरण रचवाया, धर्मामृत प्रभु बरसाया॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

एकादशि चैत सुदी की, पाई पंचम गति नीकी।
प्रभु सविनय अर्घ्य चढ़ाऊँ, निर्मुक्त महापद ध्याऊँ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लैकादश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

इन्द्रादिक पूजित चरण, धन्य-धन्य जिनराज।
भक्तिसहित गुण गाँय हम, पावें सुगुण समाज॥

(छन्द-पद्धरि)

जय सुमति जिनेश्वर गुण गरिष्ट, दर्शायो निजपद परम इष्ट।
प्रभु स्वयंसिद्ध मंगलस्वरूप, बिन्मूरति चिन्मूरति अनूप॥

निरपेक्ष निरामय निर्विकार, जयवन्तो शाश्वत समयसार।
निज साधन से ही साध्य हुए, आराधन कर आराध्य हुए॥

अक्षय अनंत गुण प्रगटाये, कर्मों के बादल विघटाये।
जय दर्शन-ज्ञान अनंत देव, सुख-वीर्य अनंत हुए स्वयमेव॥

अद्भुत प्रभुता जिनराज अहो, महिमा है अपरम्पार प्रभो।
निष्काम स्वयं में रहे पाग, जग से निस्पृह हे वीतराग॥

निर्भूषण जग-भूषण जिनेश, नाशे प्रभु जग के सब क्लेश।
जब शान्तमूर्ति का अवलोकन, अनुपमस्वरूप का हो चिन्तन॥

रागादि स्वयं ही होंय मंद, हों शिथिल सहज ही कर्म बन्ध।
स्वाभाविक आनन्द स्वाद पाय, फिर परिणति निज में ही रमाय॥

नाशे पर की झूठी ममता, सब में समता निज में रमता।
परिणाम सहज अविकारी हो, मंगलमय मंगलकारी हो॥

लक्ष्मी चरणों की दासी हो, फिर भी प्रभु सहज उदासी हो।
इन्द्रादिक पद की चाह न हो, उपसर्गों की परवाह न हो॥

अन्तर्पुरुषार्थ बढ़े स्वामी, हो साधु दशा त्रिभुवननामी।
वृद्धिंगत होवे रत्नत्रय, कर्मों का होता जावे क्षय॥

रागादि दोष निःशेष होंय, प्रभु आत्मीक गुण प्रगट होंय।
यों मोक्षमार्ग का निमित्त देख, जागी उर में भक्ति विशेष॥

भक्तिवश ही गुणगान किया, पूजन करते हरषाय हिया।
तुम शासन पा परमार्थ ध्याय, पाऊँ पद अक्षय सौख्यदाय॥

ॐ ह्रीं श्री सुमतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

कुमति विनाशक सुमति जिन, पायो सुखद सहाय।
निश्चय निज प्रभुता लहूँ, आवागमन नशाय॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री पद्मप्रभ जिनपूजन

(छन्द-अडिल्ल)

जय जय पद्म जिनेश, परम सुख रूप हो,
स्वानुभूति के निमित्त शुद्ध चिद्रूप हो।
दर्शन पाकर हुआ सहज आनन्दमय,
करूँ अर्चना रागादिक पर हो विजय॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(गीतिका)

इन्द्रादि से पूजित दरश कर, परम ज्ञान प्रकाशिया।
पानकर समता सुधा, जन्मादि का भय नाशिया॥
भव भोग तन वैराग्य धार, सु शुद्ध परिणति विस्तरूँ।
श्री पद्मप्रभ जिनराज की पूजा करूँ भव से तिरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

जिनवचन सुन निजभाव लखि, परिणाम अति शीतल भया।
चन्दन नहीं भवताप नाशक, जान तुम आगे तज्या॥भव.॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षय अखण्ड सुगुण करण्ड, चिदात्म देव महान है।
सो प्रभु प्रसादहिं पाइयो, जागा सहज बहुमान है॥भव.॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

प्रभु ज्ञानमय ब्रह्मचर्य ही है परम औषधि काम की।
तातैं जिनेश्वर शरण आया, कामना तजि वाम की॥भव.॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

निज हेतु निज में ही निरन्तर, झरे अमृत ज्ञानमय।
ताके आस्वादत तृप्ति हो, नाशें क्षुधादिक दुःखमय॥भव.॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

अज्ञानतम में भटकते जो, दुख सहे कैसे कहूँ?
प्रभु भेदज्ञान प्रकाश करि, निर्मोह निज आतम लहूँ॥भव.॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

ध्यानाग्नि में नाशे करम मल, आत्म शुद्ध कहाय है।
निष्कर्म अविनाशी स्वपद हो, भव भ्रमण नशि जाय है॥भव.॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

सम्यक्त्व जिसका मूल है, चारित्र धर्म धरूँ सही।
ताके प्रभाव लहूँ सहज, ध्रुव अचल अनुपम शिव मही॥भव.॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि आत्मधर्म अनर्घ्य स्वामी, अर्घ्य से पूजूँ अहो।
इन्द्रादि पद के विभव भी, निस्सार भिन्न लगें प्रभो॥भव.॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-होली)

श्री पद्मप्रभ जिनराजजी, जयवन्तो सुखकार।
माघ कृष्ण षष्ठी दिन आये, स्वामी गर्भ मंझार।
करें देवियाँ सेवा माँ की, वर्षे रत्न अपार॥श्री.॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को, जन्मे जग दुखहार।
जन्म महोत्सव सुरगण कीनो, घर-घर मंगलाचार॥श्री.॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जातिस्मरण निमित्त हुआ प्रभु लख संसार असार।
कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी को दीक्षा ली अविकार॥
श्री पद्मप्रभ जिनराजजी, जयवन्तो सुखकार।

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णत्रयोदश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

कौशाम्बीवन शुक्लध्यान धर, केवललक्ष्मी सार।
पाई चैत सुदी पूनम को, त्रेसठ प्रकृति निवार॥श्री.॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लपूर्णिमायां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

मोहन कूट शिखर से प्रभुवर, सर्व कर्म मल टार।
फाल्गुन कृष्णा चौथ के दिन पायो शिवपद सार॥श्री.॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचर्तुथ्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

जयमाला जिनराज की, गाऊँ भवि सुखदाय।
पाऊँ ज्ञान-विरागता, सकल उपाधि नशाय॥

(छन्द-नाराच, तर्ज : वन्दे जिनवर.....)

पद्म के समान कान्तिमान पद्मप्रभ जिनेन्द्र,
वन्दते सु भक्ति से तीन लोक के शतेन्द्र।
दिखावते असार पुण्य का विभव मनो प्रभो,
सारभूत आत्मीक ज्ञान सुख अहो अहो॥१॥
द्रव्यदृष्टि धारिके, मिथ्यात्व भाव नाशिके,
विषय कषाय त्यागि के निर्ग्रन्थ पद सु धारिके।
सार्थक किया प्रभो ! सुनाम अपराजितं,
भावना हृदय जगी सहज सोलहकारणं॥२॥
तीर्थंकर प्रकृति बंधी आप ग्रैवेयिक गये,
गर्भ समय मात को सोल स्वपने भये।
जन्म समय इन्द्र ने सुमेरु पर न्हवन किया,
पद्म चिन्ह पद्मप्रभ नाम को प्रसिद्ध किया॥३॥

राज्यकाल में भी प्रभु अंतरंग उदास था,
चित्त में स्व-चित्स्वरूप का ही मात्र वास था।
एक दिवस देख द्वार पर बंधे सु हस्ति को,
हुआ सु जाति स्मरण सहज प्रभो विरक्त हो॥४॥
त्याग सर्व परिग्रह साधु दीक्षा धरी,
ध्यान ऐसा किया कर्म प्रकृति हरी।
छठवें तीर्थनाथ वर्तमान के हुए,
वज्र चामर आदि शतक गणधर हुए॥५॥
समवशरण माँहिं अंतरीक्ष मन मोहते,
अष्ट प्रातिहार्य सह अनेक विभव सोहते।
ओंकार ध्वनि खिरी तत्त्व दर्शित हुए,
आत्मबोध प्राप्त कर भव्य हर्षित हुए॥६॥
सिद्ध सम शुद्ध बुद्ध आत्मा दिखा दिया,
गुणस्थान आदि से भिन्न दर्शा दिया।
मोह आदि दुःखरूप बंध हेतू कहे,
ज्ञानमय संवरादि मुक्ति हेतू कहे॥७॥
मुक्तिदशा साध्य ध्येय शुद्ध आत्मा कहा,
आत्मदृष्टि धारि पूजते प्रभो ! तुम्हें अहा।
साधु-संग होय प्रभु ! असंग रूप ध्याऊँ मैं,
आपके प्रसाद सहज सिद्ध स्वपद पाऊँ मैं॥८॥

ॐ ह्रीं श्री पद्मप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

पद्मप्रभ भगवान, लोक शिखर पर राजते।
पाऊँ आतमज्ञान, भाव सहित पूजूँ नमूँ॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

दोषों को छिपाने का नहीं, मिटाने का उपाय करो।
गुणों को दिखाने का नहीं, गुणों में समाने का उपाय करो।

श्री सुपार्श्वनाथ जिनपूजन

(रोला)

जिनवर पूजा भविजन को मंगलकारी है,
भाव विशुद्धि का निमित्त सब दुःखहारी है।
पार्श्ववर्ति लख देह शुद्ध चेतन पद ध्यावें,
श्री सुपार्श्व भगवान भाव से पूज रचावें॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(छन्द-दिग्पाल)

मुनिमन समान जल ले, जिनराज चरण पूजें।
आवागमन मिटे मम, जन्मादि दोष धूजें॥
पूजा सुपार्श्व स्वामी, ऐसी करूँ तुम्हारी।
हो तुम समान जिनवर, भावी दशा हमारी॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भवताप रहित प्रभु क्या? चन्दन तुम्हें चढ़ायें।
सुनकर वचन जिनेश्वर, नाशें सभी कषायें॥पूजा.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

अक्षत अखण्ड लेकर, जिननाथ गुण विचारें।
अक्षय सुगुणमयी प्रभु, निज आत्मा निहारें॥पूजा.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

ले पुष्प शीलमय जिन, होवें परम जितेन्द्रिय।
है उपादेय भासा, हमको भी सुख अतीन्द्रिय॥पूजा.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

नैवेद्य सरस पाया, प्रभुता स्वयं स्वयं में।
क्षुत् वेदना नशायें, रम जायें हम स्वयं में॥पूजा.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

मोहान्धकार नाशे, पावें प्रकाश अनुपम।
हे पूर्ण ज्ञानमय प्रभु, चरणों में आए हैं हम॥पूजा.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

हों भस्म कर्म सब ही, ऐसा हो ध्यान जिनवर।
हो धर्म से सुवासित, जीवन हमारा प्रभुवर॥पूजा.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

सम्यक्त्व मूल संयुक्त चारित्र तरू लगावें।
अक्षय अनंत रसमय, मुक्ति के फल सु पावें॥पूजा.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

दुर्लभ सु अर्घ्य लेकर, हम भावना संवारें।
अविचल अनर्घ्य प्रभुता, निज में ही प्रभु निहारें॥पूजा.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

गर्भागम सुखकार, भादों सुदि छटि को हुआ।
वरषे रतन अपार, सोलह सपने माँ लखे॥

ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

द्वादशि सुदी सु ज्येष्ठ, जन्मे त्रिभुवन नाथ जी।
इन्द्र कियो अभिषेक, पाण्डुक शिला सुमेरू पै॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

आत्मीक सुखसार, लखि प्रभुवर दीक्षा धरी।
गूँजा जय-जयकार, जेठ सुदी बारस दिना॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लद्वादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

फाल्गुन कृष्णा षष्ठि, हुए स्वयंभू नाथ जी।
हर्षमयी हुई सृष्टि, दिव्य बोध को पाय के॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णषष्ठ्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

शिखर सम्मेद महान, फाल्गुन कृष्णा सप्तमी।
प्रभु पायो निर्वाण, पूजें अति आनन्द सों॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

हुए विरक्त सु जगत से, पतझड़ लख जिनदेव।
निर्ग्रन्थ पथ अपनाय के, मुक्त हुए स्वयमेव॥

(तर्ज : चित्स्वरूप महावीर.....)

श्री सुपार्श्व जिनराज, मुक्ति पथ दरशाया।
परमानन्द स्वरूप, जिनेश्वर दरशाया॥टेक॥

द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय, इन्द्रिय विषयों से प्रभु भिन्न कहा।
परम अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय, सिद्ध समान स्वरूप कहा॥
स्वानुभूत जिनमार्ग, जिनेश्वर दरशाया॥श्री सुपार्श्व.॥

द्रव्यकर्म-नोकर्म-भाव कर्मों से न्यारा देव कहा।
नित्य निरंजन निष्क्रिय-ध्रुव, निर्मुक्त चिदानन्दरूप अहा॥
नयातीत पक्षातिक्रान्त प्रभु दरशाया॥श्री सुपार्श्व.॥

जीवसमास मार्गणा-गुणथानों से, ज्ञायक भिन्न अहा।
टंकोत्कीर्ण सु-अलिंगग्रहण, अव्यक्त स्वानुभवगम्य कहा॥
आश्रय करने योग्य, निजातम दरशाया॥श्री सुपार्श्व.॥

नवतत्त्वों के स्वांगों से, निरपेक्ष निरामय रूप कहा।
जिनने समझा भवदुख नाशा, नित्यानंद स्वरूप लहा॥
हेय-उपादेय भेद महेश्वर दरशाया॥श्री सुपार्श्व.॥

रागादिक दुख रूप बताये, वीतराग शिवपंथ कहा।
परम अहिंसा से ही होता, भवभ्रमणा का अन्त अहा॥
रत्नत्रय अविकार तुम्हीं ने दरशाया॥श्री सुपार्श्व.॥

बहिरातमता हेय जान तज, अन्तर आतम हों स्वामी।
ध्रुव परमातम पद को साधें, तुम सम ही अन्तर्यामी॥
धन्य-धन्य शिवरूप आपने दरशाया॥श्री सुपार्श्व.॥

जब तक आराधन पूरा हो, जिनशासन का योग मिले।
निर्मल आत्म भावना वर्ते, निज गुणमय उद्यान खिले॥
पाया स्वाश्रित मार्ग चरण में सिर नाया॥श्री सुपार्श्व.॥

ॐ ह्रीं श्री सुपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(दोहा)

श्री सुपार्श्व जिनराज की, भक्ति करें जो कोय।
इन्द्रादिक पद पाय के, निश्चय मुक्त सु होय॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री चन्द्रप्रभ जिनपूजन

(जोगीरासा)

तज गृहजाल महादुखकारण, चरण शरण में आया।
चन्द्र समान शान्त निर्मल छवि, लखि आनन्द उपजाया॥
तन मन धन है सर्व समर्पण, करूँ अर्चना स्वामी।
चंचल परिणति थिर हो निज में, तुम सम त्रिभुवननामी॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(भुजंगप्रयात्)

चढ़ाऊँ क्षमाभावमय नीर सुखकर,
नशें जन्म-मरणादि कारण सु दुखकर॥
अहो चन्द्रप्रभ जी की पूजा रचाऊँ,
सहजज्ञानमय भावना सहज भाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन चढ़ाऊँ परमशान्तिमय प्रभु,
भवाताप नाशे जजूँ आपको विभु॥ अहो...॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत अमलभावमय देव लाऊँ,
विनाशीक जग के अपद नाहिं चाहूँ॥
अहो चन्द्रप्रभ जी की पूजा रचाऊँ,
सहजज्ञानमय भावना सहज भाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।

अतीन्द्रिय निजानन्द निज माँहिं सरसे,
सतावे नहीं काम जिनवर शरण से॥अहो...॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

चिदानन्द-सुधारस प्रभो पान करके,
क्षुधादिक महादोष क्षणमाँहिं हरके॥ अहो...॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रकाशित सहज ज्ञान में नाथ ज्ञायक,
झलकते नशे मोह तम दु:खदायक॥ अहो...॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

जलें कर्म सब आत्म-ध्यानाग्नि माँहीं,
सुविकसित हो निजगुण नहीं अन्त पाहीं॥ अहो...॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।

न लौकिक फलों की प्रभो ! कामना है,
महा मोक्षफल पाऊँ यह भावना है॥ अहो...॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

धरूँ भक्तिमय देव प्रासुक सु अर्घ्य,
लहूँ आत्म प्रभुता सु अविचल अनर्घ्य॥ अहो...॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(दोहा)

चन्द्रप्रभ जिनराज का, गर्भागम सुखकार।
चैत कृष्ण पंचमि दिवस, पूजों भाव सम्हार॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं

पौष कृष्ण एकादशी, जन्मे श्री जगदीश।
इन्द्रादिक उत्सव कियो, नह्वन कियो गिरिशीश॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

भव-तन-भोगविरक्त हो, जिनदीक्षा अविकार।
धरी पौष वदि ग्यारसी, पूजों करि जयकार॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

फाल्गुन श्यामा सप्तमी, प्रगट्यो केवलज्ञान।
आतम महिमा मुक्तिपथ, दर्शायो भगवान॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सित फाल्गुन सप्तमि गये, मुक्तिमाँहिं परमेश।
पूजत पाप विनष्ट हों, धन्य-धन्य सर्वेश॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

जयवन्तो शिवभूप, अचिन्त्य महिमा के धनी।
परमानन्द स्वरूप, गाऊँ जयमाला प्रभो॥

(तर्ज- हे दीनबन्धु...)

हे चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र ! सत्य शरण हो तुम्हीं।
हे वीतराग देव ! तारण-तरण हो तुम्हीं॥
कर दर्श नाथ सहज ही कृतकृत्य हो गया।
प्रभु ! स्वयं स्वयं में ही सहज तृप्त हो गया॥
विभु ! तेजपुंज आत्मा को आप जानके।
होकर उदास लोक से दीक्षा सु-धार के॥
ध्यानाग्नि में चहुँ घाति कर्म सहज जलाए।
अनन्त दर्श-ज्ञान-सुख-वीर्य तब पाए॥
अष्टम हुए तीर्थेश धर्मतीर्थ बताया।
ध्रुव तीर्थरूप आत्मा प्रत्यक्ष दिखाया॥

आत्मानुभूतिमय अहो परमार्थ तीर्थ है।
जिससे तिरें भवसिन्धु वह सत्यार्थ तीर्थ है॥
निजभाव में रमते सदा तुम ही सु राम हो।
निष्काम परमब्रह्म हो आनन्दधाम हो॥
परमार्थ मुक्तिमार्ग के हो आप विधाता।
विश्वेश विष्णु रूप हो सब विश्व के ज्ञाता॥
अतिशय तुम्हें जो देखते वे दर्शनीय हों।
जो भावसहित पूजते वे पूजनीय हों॥
वाँछा ही मिटे देव तुम्हारे सु ध्यान से।
हो प्रगट आत्मीकभाव आत्म-ध्यान से॥
प्रभु ! ध्यानमय मुद्रा सहज वैराग्य जगाती।
रागांश हों निश्शेष ज्ञान ज्योति जगाती॥
चैतन्यमय परमार्थ भावना सहज रहे।
भवनाश हो शिववास हो दुर्भावना दहे॥
गद्-गद् हुआ बहुमान से, बस मौन ही रहूँ।
नाथ हो निर्ग्रन्थ तेरा पंथ मैं गहूँ॥
तेरे प्रसाद से सहज समाधि पाऊँगा।
ज्ञाता हूँ मुक्त ज्ञातारूप ही रहाऊँगा॥

(घत्ता)

श्रीचन्द्र जिनेशं, जय जगतेशं, धर्मेशं भवसर-तारी।
अद्भुत प्रभुतामय, हुआ सु निर्भय, पूजत पद मंगलकारी॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

समयसारमय आपकी, प्रभुता तिहुँजग सार।
विस्मय उपजावे प्रभो, भुक्ति मुक्ति दातार॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री पुष्पदंत जिनपूजन

(गीतिका)

अक्षय सु आतम निधि बताई, प्राप्ति की भी विधि प्रभो।
है सार्थक यह नाम भी जिन, सुविधिनाथ कहा अहो॥
सौभाग्य से अवसर मिला, पूजा करूँ अति चाव से।
हे पुष्पदंत जिनेन्द्र ! मैं छूटूँ विकारी भाव से॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(छन्द-अडिल्ल)

निर्मल जल ले, पूजूँ प्रभु हरषाय के,
जन्म जरा मृत नाशूँ निजपद ध्याय के।
पुष्पदंत जिनराज करूँ गुणगान मैं,
होय प्रतिष्ठित सहज ज्ञान ही ज्ञान में॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भक्ति भावमय चन्दन ले पूजा करूँ।
नाशे ताप कषायों का समता धरूँ॥पुष्पदंत..॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

पूजूँ निर्मल अक्षत से जिननाथ जी।
पाऊँ उत्तम धर्मी जन का साथ जी॥पुष्पदंत..॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

दिव्य पुष्प ले भाऊँ जिनवर भावना।
विषयों की हो स्वप्न माँहिं भी चाह ना॥पुष्पदंत..॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

झूठे नैवेद्य लख, निस्सार तजूँ प्रभो।
पीऊँ सन्तोषामृत तुम सम ही विभो॥पुष्पदंत..॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

सहज रतन रुचि दीप उजालूँ देव जी।
मोह महातम नशे सहज स्वयमेव जी॥

पुष्पदंत जिनराज करूँ गुणगान मैं,
होय प्रतिष्ठित सहज ज्ञान ही ज्ञान में॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

आर्त-रौद्र तज आत्मध्यान धारूँ अहो।
जरें कर्ममल निजगुण विस्तारूँ प्रभो॥पुष्पदंत..॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

पुण्य-पाप फल सकल जिनेश्वर त्यागकर।
पाऊँ जिनवर मुक्तिफल आनन्दकर॥पुष्पदंत.॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्ध भावमय अर्घ्य धरूँ आनन्द से।
पद अनर्घ्य हो बचूँ कर्म के फन्द से॥पुष्पदंत..॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चौपाई)

नवमी फागुन वदी सुहाई, गर्भ कल्याण भयो सुखदाई।
सेवे मात देवि सुखकारी, पूजूँ जिनवर मंगलकारी॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णनवम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

मगसिर सुदि एकम दिन आया, इन्द्र जन्मकल्याण मनाया।
उत्सव नाना भाँति रचाई, मैं भी पूजूँ त्रिभुवन राई॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लप्रतिपदायां जन्ममंगलमंडिताय श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

इक दिन उल्कापात हुआ था, अन्तर में वैराग्य हुआ था।
भाय भावना दीक्षा धारी, मगसिर सुदि एकम् सुखकारी॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लप्रतिपदायां तपोमंगलमंडिताय श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

आत्मध्यान प्रभु ऐसा धारा, नाशे घाति कर्म दुखकारा।
कार्तिक कृष्णा द्वितीया स्वामी, धर्मतीर्थ प्रकटा अभिरामी॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णद्वितीयायां ज्ञानमंगलमंडिताय श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

सुप्रभ टोंक सम्मेद महाना, आप पधारे अविचल थाना।
भादों सुदि अष्टमि सुखकारा, पूजत होवे हर्ष अपारा॥

ॐह्रीं भाद्रपदशुक्लअष्टम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री पुष्पदंतजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

तीर्थंकर नवमें प्रभो ! अद्भुत महिमावंत।
शाश्वत् धर्म बताइया, रहे सदा जयवन्त॥

(छन्द-पद्धरी)

हे पुष्पदंत ! हे सुविधिनाथ !! दर्शन पाकर हुआ सनाथ।
जिनराज भजूँ निजभाव सजूँ, परमानंदमय चिद्रूप भजूँ॥

हे तेजपुंज हे धर्ममूर्ति ! हे ज्ञानपुंज चैतन्यमूर्ति।
मंगलमय लोकोत्तम स्वरूप, भविजन को तुम ही शरणरूप॥

नाशे कर्माश्रित सब विभाव, प्रगटे स्वाश्रित आतम स्वभाव।
तुम दिव्यध्वनि सुन जगे ज्ञान, आतम-अनात्म की हो पिछान॥

पर्यायदृष्टि छूटे जिनन्द, प्रगटे अनुभव रस दुख निकन्द।
दुःख कारण रागादिक दिखाय, पुरुषार्थ तिन्हें नाशन जगाय॥

वैराग्य भावना सहज होय, क्षण-क्षण में निज शुद्धात्म जोय।
निर्ग्रन्थ मार्ग में बढ़े जाय, तुम सम अक्षय पदवी सु पाय॥

यों मुक्तिमार्ग के निमित्त आप, भव्यों के नाशो प्रभु संताप।
हे परम धरम दातार देव, चरणों में शीश नमें स्वयमेव॥

जो पूजे सो जगपूज्य होय, आपद ताको आवे न कोय।
तुम ढिग वांछा ही प्रभु नशाय, निज में ही अद्भुत तृप्ति पाय॥

इन्द्रादिक पूजें चरण आन, अद्भुत अतिशय जिनवर महान।
ऐसी प्रभुता मैं भी सु पाय, तिष्ठूँ जिनेश तुम पास आय॥

ॐ ह्रीं श्री पुष्पदंतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

(सोरठा)

पुष्पदंत भगवान, तीन लोक चूड़ामणि।
होय सकल कल्याण, जिन पूजा परसादतैं॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री शीतलनाथ जिनपूजन

(छन्द-अडिल्ल)

कल्पवृक्ष शुभ चिन्ह सुदेव मनोज्ञ है।
कल्पवृक्ष नहिं तुम उपमा के योग्य है॥
अविचल सुख दातार सहज ज्ञातार हो।
हृदय विराजो प्रभो ! परम उपकार हो॥

(दोहा)

जय जय शीतलनाथ जिन, मिथ्या तपन नशाय।
परम जितेन्द्रिय भाव सों, पूजें मंगलदाय॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(छन्द-द्रुतविलम्बित)

सहज समकित जल प्रभु धारिके, जन्म मरण कुरोग निवारिके।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भावनामय चन्दन लायके, दुःखमय भवताप नशायिके।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

सहज संयम धारे सुखकरं, अखय पद को पावें जिनवरं।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

पंच इन्द्रिय भोग विडारिके, भजें नित निष्काम विचारिके।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

तृप्त होवें निजरस लीन हो, क्षुधा तृष्णा सहजहिं क्षीण हो।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

मोह नाशा सम्यक्ज्ञान से, क्या प्रयोजन दीपक भानु से।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

परम आतम ध्यान लगायिके, लहें निजपद कर्म नशायिके।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविनाशनाय धूपं नि. स्वाहा।

मार्ग प्रभुवर का अहो हम अनुसरें, पाप-पुण्य नशें शिवफल लहें।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

धरें अर्घ्य जिनेश्वर चरण में, तज प्रपंच सु आये शरण में।
परम आनन्दमय शिवदायकं, जजें शीतलजिन जगनायकं॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चौपाई)

चैत्र कृष्ण अष्टमि दिन देव, अच्युत से च्युत हो स्वयमेव।
मात सुनन्दा उर अवतरे, गर्भ कल्याणक सुख विस्तरे॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णअष्टम्यां श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय गर्भकल्याणप्राप्ताय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

माघ कृष्ण द्वादश जिनराय, अन्तिम जन्म भयो सुखदाय।
जन्मकल्याणक पूजा करें, यही भाव फिर जन्म न धरें॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय जन्मकल्याणप्राप्ताय अर्घ्यं नि.स्वाहा।

वैभव यौवन इन्द्रिय-भोग, इन्द्रधनुष सम लखे मनोग।
माघ कृष्ण द्वादशि दिन नाथ, धारी दीक्षा नावें माथ॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णद्वादश्यां श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय तपकल्याणप्राप्ताय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

स्वामी पौष चतुर्दशि श्याम, केवलज्ञान लह्यो अभिराम।
शोभें समवशरण के माँहिं, दर्शन से भवि पाप नशाहिं॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णचतुर्दश्यां श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय ज्ञानकल्याणप्राप्ताय अर्घ्यं नि.स्वाहा।

अष्टमि सितअसौज भगवान, पायो अविचल पद निर्वाण।
भाव सहित हम शीश नमांय, ज्ञाता दृष्टा रह शिव पांय॥

ॐ ह्रीं अश्विनशुक्लअष्टम्यां श्रीशीतलनाथजिनेन्द्राय मोक्षकल्याणप्राप्ताय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

दोहा- सहज शांत शीतल रहें, शीतल चरण प्रसाद।
गावें जयमाला सुखद, नाशें सर्व विषाद॥

(छन्द-त्रोटक)

श्री शीतलनाथ जिनेन्द्र नमूँ, जिनतत्त्व समझ दुर्मोह वमूँ।
ज्ञायक हूँ सहज प्रतीति हो, आनन्दमय निज अनुभूति हो॥

पर में एकत्व ममत्व न हो, सपने में भी कर्तृत्व न हो।
परिणमन सहज होता भासे, ज्ञातृत्व सहज ही प्रतिभासे॥

कुछ इष्ट-अनिष्ट विकल्प न हो, दुखमय मिथ्या संकल्प न हो।
दुख कारण आस्रव बंध नशें, संवर निर्जर सुखमय विलसें॥

यों तत्त्व प्रतीति नाथ धरें, प्रभु साक्षी हों भव सिन्धु तरें।
निर्ग्रंथ भावना भावत हैं, अविनाशी निजपद चाहत हैं॥

बिनशत मुक्ता सम ओस बिन्दु, निरखी प्रात: तुमने जिनेन्द्र।
तत्क्षण संसार असार तजा, आनन्दमय आतम रूप सजा॥

वस्त्राभूषण सब फैंक दिये, निर्मम होकर कचलौंच किये।
जिनयोग अपूर्व लगाया था, दुष्कर्म समूह नशाया था॥

अद्‌भुत जिनवैभव प्रगटाया, सुर समवशरण था रचवाया।
हुई दिव्य देशना सारभूत, भविजन को शुभ कल्याणभूत॥

लाखों प्राणी प्रतिबुद्ध हुए, तद्‌भव से भी बहु मुक्त हुए।
यों दशवें तीर्थंकर सु होय, सब कर्म नाशि गये सिद्ध लोय॥

ज्यों सिद्धालय में आप बसे, त्यों देहालय शुद्धात्म लसे।
हम ध्यावें मंगलकार प्रभो, वर्ते नित जाननहार विभो॥

ॐ ह्रीं श्री शीतलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला अर्घ्यं नि. स्वाहा।

सोरठा- पूजा श्री जिनराज, भक्ति-युक्ति युत जो करें।
पावें सिद्ध समाज, सब संक्लेश निवारिकें॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री श्रेयांसनाथ जिनपूजन

(रोला)

श्रेय रूप ग्यारहवें तीर्थंकर पहिचाने।
अहो अकर्ता दृष्टा ज्ञाता सहज प्रमाने॥
जागा भाग्य हमारा, प्रभुवर पूज रचावें।
निजानन्द निजमाँहिं, आप सम हम भी पावें॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ: ठ:।
ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छंद -त्रिभंगी)

प्रभु देह उपजती देह विनशती, अविनाशी है शुद्धातम।
यह भेद जानकर निज अनुभव कर, पूजें ध्यावें परमातम॥
श्रेयांस जिनेन्द्रं इन्द्र नरेन्द्रं, पूजत अन्तर्दृष्टि धरें।
तिहुँ जग ज्ञातारं शिवदातारं, प्रभु चरणों में नमन करें॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

प्रभु चन्दन बावन ताप मिटावन, भवाताप नहीं दूर करे।
या सम नहीं दूजा श्री जिन पूजा, सहज सर्व संताप हरे॥श्रेयांस.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि.स्वाहा।

क्षत् भाव दुखारी हे त्रिपुरारी, त्याग अखण्डित भाव धरें।
अक्षय सुखरूपं मुक्त स्वरूपं, अक्षत ले प्रभु पूज करें॥श्रेयांस.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

भोगों को भोगा, इच्छा रोगा, त्यों-त्यों अधिक बढ़ा स्वामी।
प्रभु शील बढावें काम नशावें, शिवपद पावें जगनामी॥श्रेयांस.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

निजसुधबुध खोकर जिसवश होकर, खाद्य-अखाद्य सभी खाया।
सो क्षुधा नशावें तृप्त रहावें, निज में प्रभु सम मन भाया॥श्रेयांस.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

प्रभु भ्रम तम नाशे ज्ञान प्रकाशे, तातैं प्रभुवर चरण जजें।
निर्मोह रहावें ज्ञान बढ़ावें, सहज परम निजभाव भजे॥
श्रेयांस जिनेन्द्रं इन्द्र नरेन्द्रं, पूजत अन्तर्दृष्टि धरें।
तिहुँ जग ज्ञातारं शिवदातारं, प्रभु चरणों में नमन करें॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

प्रभु कर्म महावन भूलि रहे हम, शिव मारग है नहिं भाया।
निज ध्येय सु ध्यावें कर्म नशावें, परम धरम प्रभु से पाया॥श्रेयांस.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

जिन कर्मों के फल हुए सु व्याकुल, सो फल प्रभुवर नहिं चाहें।
सब सिद्धि प्रदाता शिवफलदाता, धर्म कल्पतरु प्रगटाएँ॥श्रेयांस.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

ले द्रव्य सु अर्घ्यं भाव अनर्घ्यं, आनन्द सों जिनवर पूजें।
श्रद्धान जगाया भाव बढ़ाया, भव-भव के पातक धूजें॥श्रेयांस.॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चौपाई)

विमला माँ को स्वप्न दिखाये, पुष्पोत्तर तजकर प्रभु आये।
जेठ श्याम षष्ठी सुखकारी, जिनपद पूजें मंगलकारी॥

ॐ ह्रीं जेष्ठकृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.स्वाहा।

फाल्गुन कृष्ण एकादशि आई, जन्मे अनुपम मंगलदायी।
क्षीरोदधि तें जल भर लावें, सुरपति प्रभु अभिषेक करावें॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

विषय-कषाय असार विचारे, हो निर्ग्रंथ परम तप धारे।
फाल्गुनश्याम-एकादशि स्वामी, भावसहित हम शीश नमामी॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

शुक्लध्यान धरि घाति नशाये, अनन्त चतुष्टय प्रभु प्रगटाये।
माघ अमावस आनन्दकारी, पूजत होवें शिवमगचारी॥

ॐ ह्रीं माघकृष्णामावस्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

श्रावण शुक्ल पूर्णिमा जिनवर, मुक्ति पधारे सकल कर्म-हर।
इन्द्र मोक्ष कल्याण मनावें, भक्ति सहित प्रभु पूज रचावें॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लपूर्णिमायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीश्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं..।

जयमाला

(दोहा)

श्रेय रूप श्रेयांस जिन, परम श्रेय दर्शाय।
आप बसे शिवलोक में, भक्ति करूँ सुखदाय॥

(छंद-सरसी)

नलिनप्रभ राजा के भव में रत्नत्रय प्रकटाकर।
तीर्थंकर प्रकृति बांधी थी, सोलहकारण भाकर॥

आयु पूर्णकर साधु समाधि पूर्वक छोड़ी देह।
स्वर्ग सोलवें इन्द्र हुए थे भावें सदा विदेह॥

तहँते चयकर सिंहपुरी में लिया प्रभु अवतार।
दिव्योत्सव करते इन्द्रादिक देखत दृष्टि हजार॥

मति-श्रुत अवधिज्ञान के धारक जन्म समय से आप।
अतिशय रूप निरखते नाशें भव-भव के संताप॥

पुण्योदय के भोग भोगते अन्तर रहे उदास।
पतझड़ के तरु देखे इक दिन काल लगा गृहवास॥

भायी प्रभु वैराग्य भावना, लौकान्तिक सुर आय।
अनुमोदन करते प्रभुवर का, चरणों में सिर नाय॥

सहज भाव से दीक्षा लीनी, हुए नाथ निर्ग्रंथ।
तप कल्याणक देव मनावें, आप बढ़े शिवपन्थ॥

आत्म ध्यान से अल्पकाल में प्रगटा केवलज्ञान।
समवशरण में दिव्य ध्वनि से दिया तत्त्व का ज्ञान॥

धर्मतीर्थ की कर प्रभावना, गये नाथ निर्वाण।
धर्मतीर्थ जिनवर का पाकर किया स्व-पर कल्याण॥

भाव सहित प्रभु पूजन करके, उपजा उर आनन्द।
सहज भावना होवे स्वामी, रहूँ परम निर्द्वन्द्व॥

ॐ ह्रीं श्री श्रेयांसनाथ-जिनेन्द्राय जयमालाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

सर्व सिद्धि दातार, वीतराग सर्वज्ञ जिन।
सहज लहें भवपार, अनुगामी हो आप के॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री वासुपूज्य जिनपूजन

(सवैया तेईसा, तर्ज-वीर हिमाचल तें..)

बालयती वसुपूज्यतनय, प्रभु वासव सेवित त्रिभुवन नामी।
बारहवें तीर्थंकर हो, संयुक्त सुगुण छियालिस अभिरामी॥
मुक्तिमार्ग मिला भविजन को, दिव्यध्वनि द्वारा हे स्वामी।
भाव भये शुभ पूजन के, तिष्ठो उर में हे अन्तरयामी॥

(दोहा)

हर्षित हो पूजूँ चरण, चिंतूँ गुण अभिराम।
आराधूँ परमात्म पद, पाऊँ शाश्वत धाम॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छंद-गीतिका)

निज आत्मतीर्थ सु पाइया, समतामयी जल जहाँ भरा।
मिथ्यात्व मल छूट्यो प्रभो ! स्नान करि निर्मल भया॥
श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र की, पूजा करूँ अति चाव सों।
आनन्दमय ब्रह्मचर्य वर्ते, नाथ ! सहज स्वभाव सों॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं नि. स्वाहा।

भव ताप नाशा देव ! शीतलता स्वयं में ही मिली।
आराधना की युक्ति पाई, सहज निज परिणति खिली॥

श्री वासुपूज्य जिनेन्द्र की, पूजा करूँ अति चाव सों।
आनन्दमय ब्रह्मचर्य वर्ते, नाथ ! सहज स्वभाव सों॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं नि.स्वाहा।

अक्षय अबाधित ज्ञानमय, चैतन्यप्रभु पाया अहो।
तुष बिना तन्दुल सम अमल, अक्षय स्व-पद आधार हो॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय अक्षयपद-प्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

प्रभु ! तुम गुणों की पुष्पमाला, कंठ में धारण करूँ।
निष्काम ब्रह्मस्वरूप ध्याऊँ, अब्रह्म परिणति परिहरूँ॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

शुद्धात्म अनुभव के समान, न रस दिखे तिहुँलोक में।
ताके आस्वादी क्षुधादिक, नाशे बसे शिवलोक में॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

चैतन्य ज्योति सु जगमगे, मोहान्धकार नहीं रहे।
फिर बाह्य दीपक भी सहज निस्सार मुझको भी लगे॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय मोहांधकार-विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

आनन्दमय आराधना से, ध्यान की अगनी जले।
निज सुगुण विलसें सर्व वैभाविक करम ईंधन जले॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं नि. स्वाहा।

तिहुँलोक पूजित सिद्धपद, आराधना का फल महा।
यह जानकर लौकिक फलों का भाव नहीं किंचित् रहा॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय मोक्षफल-प्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

निर्भेद निरघ सु अर्घ्य लेकर, ज्ञानमय आनन्दमय।
मैं अर्चना करता प्रभु, निर्द्वन्द्व पद पाऊँ अभय॥श्री.॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद-प्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छंद द्रुतविलम्बित)

होय च्युत महाशुक्र विमान से, आये विजया माता गर्भ में।
षाढ़ कृष्णा षष्टिमी थी सही, धनि हुई चम्पापुर की मही॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णषष्ठ्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

चतुर्दशि फागुन की श्याम है, जन्म अन्तिम प्रभु अभिराम है।
किया था अभिषेक सुमेरु पर, पुण्यशाली इन्द्रों ने आनंद कर॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।
ब्याह अवसर पर प्रभु वैराग्य धरि, भव शरीर कुभोग असार लखि।
चतुर्दशि फागुन कलि शुभघड़ी, अहो मुनिपद की सहज दीक्षा धरी॥
ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णचतुर्दश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।
शुक्ल ध्यान महान लगाइया, ज्ञान केवल जिनवर पाईया।
दिव्यध्वनि भई मंगलकार है, दूज भादव कृष्ण की सुखकार है॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदकृष्णद्वितीयायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।
चतुर्दशी सित भादौं की सही, लही प्रभुवर ने अहो अष्टम् मही।
तीर्थ चम्पापुर महासुखदाय है, अर्घ ले जजिहौं सहज शिवदाय है॥
ॐ ह्रीं भाद्रपदशुक्लचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्रीवासुपूज्य-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

इन्द्रादिक पूजैं चरण, महाभक्ति उर धार।
गावें जयमाला प्रभो ! आतमनिधि दातार॥

(चौपाई)

जय-जय वासुपूज्य भगवान, गुण अनन्त मंगलमय जान।
भरि यौवन में सहज विराग, भोगों प्रति उपज्या नहिं राग॥

निज में प्रमुदित बाह्य उदास, आत्मसाधना का उल्लास।
जगत विभव किंचित् न सुहाय, तत्त्व विचार करें सुखदाय॥

शुद्धातम ही जग में सार, अविनाशी सुख का आधार।
इन्द्रिय सुख तो दुख के मूल, फल में उपजें भव-भव शूल॥

संसारी निज ज्ञान विहीन, इन्द्रिय मद मेटन बलहीन।
विषय चाह उपजावे दाह, भोगन में भूले शिवराह॥

आत्मज्ञान बिन शरण न कोय, व्यर्थ मोह में क्लेशित होय।
अब विलम्ब करना नहीं जोग, धरूँ शीघ्र शिवदाता योग॥

सब विधि अवसर मिलो महान, जीतूँ कर्म लहूँ निर्वान।
दृढ़ विराग उपज्या सुखदाय, तत्क्षण लौकान्तिक सुर आय॥

अनुमोदन कर शीश नवाय, धन्य विचार कियो जिनराय।
दीक्षा धरो प्रभो ! अविकार, भायें भावना हम हू सार॥

इन्द्रादिक आये हर्षाय, प्रभु को तपकल्याण मनाय।
उत्सव सों प्रभु वन में गये, वस्त्राभूषण सब तजि दये॥

पंच मुष्ठि कचलौंच कराय, निर्ग्रंथ रूप धर्‌यो सुखदाय।
आत्म ध्यान की धुनी लगाय, एक वर्ष छद्मस्थ रहाय॥

चढ़े क्षपक श्रेणी सुखकार, प्रगट्‌यो अर्हत् पद अविकार।
भविजन को शिवराह दिखाय, सिद्धालय में तिष्ठे जाय॥

ज्ञान माँहिं हे देव निहार, करें अर्चना मंगलकार।
प्रभु चरणों में शीश नवाय, अद्‌भुत परमानन्द विलसाय॥

(छन्द-घत्ता)

प्रभु अमल अनूपं शुद्ध चिद्रूपं, सहजानंदमय राजत हो।
निष्काम जिनेश्वर, जजूँ महेश्वर, शिव मारग विस्तारत हो॥
ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्यजिनेन्द्राय जयमालाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

बाल ब्रह्मचारी प्रभो ! वासुपूज्य जिनराज।
करि सम्यक् आराधना, पाऊँ निजपद राज॥
॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

परिग्रहासक्त प्राणी का चित्त निरन्तर चंचल रहता है।
विषयासक्त प्राणी का चित्त निरन्तर मलिन रहता है।
इन दु:खों से बचने का उपाय आत्मघात नहीं आत्मसाधना है।

श्री विमलनाथ जिनपूजन

(चौपाई)

जय-जय विमलनाथ भगवान, भक्ति सहित करता आह्वान्।
मेरे हृदय विराजो देव, आराधूँ निजपद स्वयमेव॥

(दोहा)

कम्पिल नगरी जन्म से, हुई जगत विख्यात।
कृतवर्मा प्रभु के पिता, जय-जय श्यामा मात॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ:ठ:।
ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भववषट्।

(छन्द-चाल होली)

प्रभु पूजों भाव सों, श्री विमलनाथ जिनरायजी पूजों भाव सों।
प्रासुक समतामय जल लीनों, अन्तर्दृष्टि लाय।
यही भावना प्रभु प्रसाद से, जन्म-मरण मिट जाय॥प्रभु..॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम क्षमा भाव मय चन्दन, भव आताप मिटाय।
प्रभु चरणों में मैंने पाया, आनन्द उर न समाय॥प्रभु...॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

जग में भोग संयोग विभव सब विनाशीक दुखदाय।
अक्षय पद का आराधन कर, अक्षय प्रभुता पाय॥प्रभु..॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कामदाह अति ही दुखदायक, महा अनर्थ कराय।
ताको नाशि लहूँ तुम सम ही, ब्रह्मचर्य सुखदाय॥प्रभु..॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तृष्णा भाव मिटे हे स्वामी, भव-भव में दुखदाय।
सन्तोषामृत पियूँ निरन्तर, तुम समान जिनराय॥प्रभु..॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

भेदज्ञान का हुआ उजाला, मिथ्या तिमिर नशाय।
अविरल ज्ञान भावना भाऊँ, केवलि पद प्रगटाय॥
प्रभु पूजों भाव सों, श्री विमलनाथ जिनरायजी पूजों भाव सों।

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज तत्त्व का सहज ध्यान हो, कर्म समूह नशाय।
जगत पूज्य निष्कर्म निरंजन, सिद्ध स्वपद प्रगटाय॥प्रभु...॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पाप-पुण्य के फल में प्राणी, भव-भव में भरमाय।
शुद्ध भाव से अहो जिनेश्वर, सहज मोक्ष फल पाय॥प्रभु...॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

विमल अर्घ्य ले प्रभु चरणन में, आऊँ अति हर्षाय।
ज्ञानानन्दमय निज अनर्घ्यपद, पाऊँ हे शिवराय॥प्रभु...॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-सखी)

गर्भागम मंगल गाये, नभ से सु-रतन वर्षाये।
कलि जेठ सु-दशमी जानो, प्रभु पूजत चित हुलसानो॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णदशम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्रायअर्घ्यं नि.।

सुदि माघ चतुर्थी आई, जन्मे जिन आनन्ददायी।
भयो मेरु न्हवन सुखकारी, पूजत प्रभु पद अविकारी॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

सुदि माघ चतुर्थी प्यारी, मुनिपद की दीक्षा धारी।
इन्द्रादिक उत्सव कीनो, सुनि आनन्द होय नवीनो॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लचतुर्थ्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

सुदि माघ छटी दिन आयो, अरहंत परमपद पायो।
कैवल्यलक्ष्मी पाई, हमको शिव राह दिखाई॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लषष्ठ्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

कलि षाढ़ अष्टमी पावन, कर आवागमन निवारण।
निर्वाण महाफल पाया, हम पूजत शीश नवाया॥

ॐ ह्रीं श्री आषाढ़कृष्णअष्टम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीविमलनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

जयमाला

(सोरठा)

तेरहवें तीर्थेश, विमल विमल पद देत हैं।
परमपूज्य सर्वेश, अनन्त चतुष्टय रूप जिन॥

(छन्द-कामिनी मोहन, तर्ज: मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक...)

गाऊँ जयमाल जिनराज आनन्द सौं,
छूटि हौं दुःखमय कर्म के फन्द सौं।
मोहवश मैं अनादि से भ्रमता रहा,
नाथ कैसे कहूँ जो महादुःख सहा॥
परम सौभाग्य से नाथ दर्शन हुआ,
जैनवाणी सुनी तत्त्व निर्णय हुआ।
है त्रिविध कर्ममल शून्य शुद्धात्मा,
ज्ञान-आनन्दमय सहज परमात्मा॥
नित्य निरपेक्ष निर्द्वन्द निर्मल अहो,
सहज स्वाधीन निर्लेप ज्ञायक प्रभो।
जानकर नाथ आदेय आनन्द हुआ,
मोहतम मिट गया आत्म-अनुभव हुआ॥
जागा बहुमान उर में अहो आपका,
भेद जाना धर्म-कर्म पुण्य-पाप का।
आपकी स्तुति देव कैसे करूँ,
गुण अनन्ते विभो! चित्त माँहीं धरूँ॥
आप ही लोक में सत्य परमेश्वरं,
वीतरागी सु सर्वज्ञ तीर्थंकरं।

आपको जग से वैराग्य जब था हुआ,
देव लोकान्तिकों ने सुमोदन किया॥
परम उल्लास से नाथ संयम धरा,
घातिया घात कर ज्ञान केवल वरा।
जग को दर्शाय ध्रुव शुद्ध परमात्मा,
हो गये आप निष्कर्म सिद्धात्मा॥
भाव पंचम परम पारिणामिक महा,
करके आराधना आप शिवपद लहा।
धन्य हो ! धन्य हो !! परम उपकारी हो,
भावमय वंदना देव ! अविकारी हो॥
ध्याऊँ निज देव को पाऊँ जिनदेव पद,
इन्द्र चक्री के पद जिसके सन्मुख अपद।
कामना वासना अन्य कुछ ना रही,
सहज कृत-कृत्य ज्ञायक रहूँगा सही॥

(छन्द-घत्ता)

जय विमल जिनेशं, हरत कलेशं नमत सुरेशं सुखकारी।
जो पूजें ध्यावें, मोह नशावें, पावें पद मंगलकारी॥

ॐ ह्रीं श्री विमलनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालाऽर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

(छन्द-अडिल्ल)

जयवन्तो जिनराज, जगत में नित्य ही।
तुम प्रसाद भवि पावें, बोधि समाधि ही॥
वीतराग जिनधर्म सु, मंगलकार है।
भाव सहित जे धरे, लहे भव पार है॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

स्वभाव मिटता नहीं, विभाव टिकता नहीं।

राग के समय भी ज्ञान राग से भिन्न रहता है।

श्री अनन्तनाथ जिनपूजन

(वीरछन्द)

जय अनन्त भगवन्त संत प्रभु, तारण-तरण जिहाज हो,
विषय-कषाय इन्द्रियाँ जीतीं, भावरूप जिनराज हो।
निज प्रभुता अनन्त दरशाई, मोह अंधेरा दूर भगा,
अनन्त चतुष्टय रूप महेश्वर, पूजन का उल्लास जगा॥

(दोहा)

प्रभुवर की पूजा करें, रोम-रोम हुलसाय।
निज प्रभुता पावें प्रभो, यही भाव उमगाय॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ:ठ:।
ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

समता भाव सहज सुखकार, जन्म मरण दु:ख नाशनहार।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥
जय जय अनन्तनाथ भगवन्त, गुण-अनन्त अनुपम शोभन्त॥महासुख..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

समकित शीतलता का मूल, सहज नशे भव-भव की शूल।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥जय जय अनन्तनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

जग के पद क्षत् रूप लखाय, अक्षय पद निज में विलसाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥जय जय अनन्तनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जीते काम सुभट जिनराय, धारें ब्रह्मचर्य हुलसाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥जय जय अनन्तनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय कामवाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अनुभव रस में तृप्त रहाय, क्षुधा तृषा सहजहिं विनशाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥जय जय अनन्तनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निज-स्वभाव उद्योत कराय, सम्यग्ज्ञान प्रकाश लहाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥जय जय अनन्तनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

आत्मध्यान की अग्नि जलाय, सर्व विभाव सहज नशि जाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥जय जय अनन्तनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

साधन शुद्ध उपयोग बनाय, साध्य रूप शिवफल प्रगटाय।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥जय जय अनन्तनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु को पाकर हुए सनाथ, पावें निज अनर्घ्यपद नाथ।
महासुख होय, प्रभु पद पूजें शिवसुख होय॥जय जय अनन्तनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(चौपाई)

कार्तिक कृष्णा एकम् के दिन, गरभ माँहिं आये तुम हे जिन।
पन्द्रह मास रत्न थे बरसे, मात-पिता नर-नारी हरषे॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णप्रतिपदायां गर्भमंगलमण्डिताय श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं

सकल सृष्टि अति ही हरषाई, सिंहसेन गृह बजी बधाई।
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशि दिन जन्में, मेरु न्हवन कीनो सुरपति ने॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

उल्कापात देखकर स्वामी, धरि वैराग्य हुए शिवगामी।
ज्येष्ठ कृष्ण द्वादशि सुखकार, वन में गूँजा जय-जयकार॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णद्वादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

एक मास धरि प्रतिमा योग, जये कर्म धरि ध्यान मनोज्ञ।
चैत अमावस केवल पाय, भाव सहित हम अर्घ्य चढ़ाय॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

चैत अमावस लह्यो निर्वाण, जय-जय अनन्तनाथ भगवान।
अचल सिद्धपद वन्दें सार, ध्यावें समयसार अविकार॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री अनन्तनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.

जयमाला

सोरठा- अनन्तनाथ भगवान, जयवन्तो मम हृदय में।
करूँ प्रभो ! गुण गान, भावविशुद्धि के लिए॥

(छन्द-पद्धरि)

भव भ्रमण मूल मिथ्यात्व नाश, पाया प्रभुवर आतम प्रकाश।
जग विभव-विभाव असार त्याग, निर्ग्रंथ मार्ग में चित्त पाग॥

साधा जिनवर शुद्धोपयोग, मुनि मुद्रा मन मोहे मनोग।
प्रभु मौन निजानन्द लीन हुए, निर्द्वन्द सहज स्वाधीन हुए॥

बिन काम दाह नहीं अक्ष भोग, नहीं राग द्वेष नहीं रोग शोक।
पर परिणति सों अत्यन्त भिन्न, निज रस में तृप्त रहें अखिन्न॥

धरि ध्यान क्षपकश्रेणी चढ़ाय, प्रभु घातिकर्म सहजहिं नशाय।
तब केवलज्ञान हुआ सुखकर, किय समवशरण धनपति आकर॥

भवि भागन वश खिरी दिव्यध्वनि, हरषे सब ज्ञानी और मुनि।
शुद्धात्म तत्त्व ही कहा सार, ध्रुव एक शुद्ध वर्जित विकार॥

हम अनुभव करि कीना प्रमान, पाया प्रभुवर सत्यार्थ ज्ञान।
जीते रागादिक सकल क्लेश, आरम्भ परिग्रह तजि अशेष॥

धारें निर्ग्रंथ स्वरूप देव, यह भाव भयो स्वामी स्वयमेव।
वृद्धिंगत हो पुरुषार्थ नाथ, पामरता का होवे विनाश॥

जग में तुम ही हो सत्य शरण, प्रभु परम हितैषी मोह हरण।
हो परम धरम आराध्य सार, निज सम करि कारण दुर्निवार॥

प्रभु पद वन्दूँ मैं बार-बार, अविकारी आनन्दरूप धार।
तुम चरण प्रसाद लहूँ अनन्त, अपनी अक्षय प्रभुता महन्त॥

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- अहो अनन्त जिनेश को, नित पूजें मनलाय।
इन्द्रादिक से पूज्य हो, निश्चय शिवपद पाय॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री धर्मनाथ जिनपूजन

(गीतिका)

हे प्रभो ! शिवमार्ग पाया, भविजनों ने आप से।
आपका दर्शन हुआ, प्रभुवर परम सौभाग्य से॥
भक्ति से पूरित हृदय, गुणगान को उद्यत हुआ।
बहुमान से पूजा करूँ, निजनाथ के सन्मुख हुआ॥

(दोहा)

पूजूँ धर्म जिनेश को, भाव विशुद्धि धार।
प्रभु सम प्रभु अन्तर निरख, भक्ति करूँ अविकार॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः।
ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीरछन्द)

सहज शुद्ध आतम नहिं जाना, मोह मलिनता नहिं जानी।
बाह्य मलिनता जल से धोई, धर्म रीति नहिं पहिचानी॥
मोह मलिनता को हरने अब, शुद्ध आत्मा को ध्याऊँ।
धर्मनाथ प्रभु की पूजा कर, परमधर्म निज में पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दनादि से शीतलता की, आशा में भरमाया था।
प्रभु गुण चिन्तन रूपी चंदन, नहीं क्रोधवश पाया था॥
अब भवाताप विनशाने को, भव रहित आत्मा को ध्याऊँ॥धर्मनाथ...॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षयपद नहिं पहिचाना, अक्षय वैभव नहिं पाया था।
अपद्भूत इन्द्रादि पदों में, सुख समझा ललचाया था॥
अक्षय अविकारी सुख पाने, ध्रुव रूप आत्मा को ध्याऊँ॥धर्मनाथ....॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम निजानन्द नहिं जाना, भोगों में चित्त लुभाया था।
अनुकूल भोग सामग्री पा, इतराया शील नशाया था॥
अब परम शील सुख पाने को, चिद्रूप आत्मा को ध्याऊँ॥
धर्मनाथ प्रभु की पूजा कर, परमधर्म निज में पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि बिना, स्वाभाविक तृप्ति न पाई थी।
रे ! क्षुधा रोग से पीड़ित हो, जो वस्तु मिली सब खाई थी॥
अविनाशी आनन्द पाने को, परिपूर्ण आत्मा को ध्याऊँ॥धर्मनाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार में भटकाया, भव-भव में स्वामिन् दुखी हुआ।
निजनिधि अवलोकन कर न सका, भव-भव में जन्मा और मुआ॥
अब सम्यग्ज्ञान प्रकाश मिला, चैतन्य आत्मा को ध्याऊँ॥धर्मनाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अग्नि में खेय दशांग धूप, जग में जो धुआँ उड़ाते हैं।
नहिं इससे कर्म नष्ट होते, बहुते प्राणी मर जाते हैं॥
अब कर्म नशाऊँ ध्यानानल में, ध्येय आत्मा को ध्याऊँ॥धर्मनाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु पुण्य-पाप के फल पाकर, रति-अरति करें प्राणी जग के।
पर पुण्य-पाप को सहज त्याग, ज्ञानी साधक हों शिवमग के॥
अविनाशी शिवफल पाने को, निर्मुक्त आत्मा को ध्याऊँ॥धर्मनाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुबार चढ़ाया द्रव्य अर्घ्य, पर प्रभु स्वरूप से रहा विमुख।
कुछ नहीं मूल्य है द्रव्यअर्घ्य का, निज अनर्घ्यपद के सन्मुख॥
अविचल अनर्घ्यपद पाने को, अब अनुपम शुद्धातम ध्याऊँ॥धर्मनाथ.॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(रोला)

गर्भागम जिनराज आपका मंगलकारी,
पन्द्रह माह रत्नवर्षा होवे सुखकारी।
अष्टम सित वैशाख गर्भ कल्याण मनाया,
पूजत तुम्हें जिनेश महा आनन्द उपजाया॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लाष्टम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

माघ शुक्ल तेरस के दिन जन्मे अविकारी,
मेरु शिखर अभिषेक और उत्सव सुखकारी।
इन्द्रादिक ने किये, भक्ति कर मैं हर्षाऊँ,
जनम-मरण की सन्तति नाशे यह वर पाऊँ॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

उल्कापात निहार विरागी हुए जिनेश्वर,
हुए माघ सित तेरस को निर्ग्रंथ मुनीश्वर।
धन्यसेन नृप धन्य प्रथम आहार कराया,
हुए पंच-आश्चर्य हर्ष जन-जन में छाया॥

ॐ ह्रीं माघशुक्लत्रयोदश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

लगभग एक वर्ष मुनिपद में निजपद भाया,
रत्नपुरी दीक्षावन आकर ध्यान लगाया।
पौष शुक्ल पूनम दिन घाति कर्म नशाये,
समवशरण अरु अतिशय अन्य सहज प्रगटाये॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लपूर्णिमायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

श्री सम्मेदशिखर पर कर्म कलंक निवारे,
प्रभो चतुर्थी जेठ सुदी निर्वाण पधारे।
मुक्त स्वरूप विचार आपकी पूज रचाऊँ,
सम्यक् आराधन द्वारा निर्वाण सुपाऊँ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठशुक्लचतुर्थ्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(सोरठा)

जयमाला सुखकार, गाऊँ अति आनन्द सों।
भाव रहे अविकार, भव-भव के बन्धन नशें॥

(तर्ज – अहो जगत गुरु देव...)

धर्मनाथ जिनराज परम धरम दर्शाया,
रत्नत्रय अविकार, शिवपुर पंथ दिखाया।
प्रभो ! प्रयोजनभूत सप्त तत्त्व प्रगटाये,
उपादेय निज भाव हेय अन्य सब गाये॥

निज-दृष्टि निज-ज्ञान अहो लीनता निज में,
निज-आश्रय से नाथ सहज बढ़े शिवमग में।
निज अनुभव रस कूप शिवपुर मूल जिनेश्वर,
तुमरे चरण प्रसाद जाना हे परमेश्वर॥

त्रिभुवन मंगलकार प्रभुवर धर्म तुम्हारा,
मिले हमें अविकार जागा भाग्य हमारा।
पंचकल्याणक देव सुरगण आय मनावें,
तीन लोक के जीव सहजहिं साता पावें॥

निकट भव्य तो नाथ लख सम्यक् प्रगटावें,
निर्मोही हो नाथ शिवमारग में धावें।
दर्शन कर मुनिनाथ मुक्त स्वरूप दिखावे,
पूजत तुम्हें जिनेश मुक्ति समीप सु आवे॥

स्व-पर विवेक जगाय देव ! गुणों का चिन्तन,
चाह-दाह विनशाय होय धर्म आकिंचन।
धूल समान दिखाँय, जग के वैभव सारे,
पर पद आपद रूप, भोग भुजंग से कारे॥

भक्ति कर जिनदेव यही भावना भाऊँ,
प्रभो ! आप सम होय अपनी प्रभुता पाऊँ।
तवपद मम उरमाँहिं, मम उर तुम चरणन में,
तब लौं लीन रहाय, थिरता होवे निज में॥

(छन्द-घत्ता)

श्री धर्म जिनेश्वर हे परमेश्वर, जजत मुनीश्वर सुखकारी।
मैं भी प्रभु ध्याऊँ, कर्म नशाऊँ शिवपद पाऊँ अविकारी॥

ॐ ह्रीं श्री धर्मनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पूजत धर्म जिनेश को, सर्व क्लेश विनशाय।
अक्षय निज सम्पत्ति मिले, सिद्ध स्वपद प्रगटाय॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री शान्तिनाथ जिनपूजन

(गीतिका)

चक्रवर्ती पाँचवें अरु कामदेव सु बारहवें।
इन्द्रादि से पूजित हुए, तीर्थेश जिनवर सोलहवें॥
तिहुँलोक में कल्याणमय, निर्ग्रन्थ मारग आपका।
बहुमान से पूजन निमित्त, स्वरूप चिन्तें आपका॥

(सोरठा)

चरणों शीस नवाय, भक्तिभाव से पूजते।
प्रासुक द्रव्य सुहाय, उपजे परमानन्द प्रभु॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(बसन्ततिलका)

प्रभु के प्रसाद अपना ध्रुवरूप जाना,
जन्मादि दोष नाशें हो आत्मध्याना।

श्री शान्तिनाथ प्रभु की पूजा रचाऊँ,
सुख शान्ति सहज स्वामी निज माँहिं पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जाना स्वरूप शीतल उद्योतमाना,
भव ताप सर्व नाशे हो आत्मध्याना॥श्री शान्ति...॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय विभव प्रभु सम निज माँहिं जाना,
अक्षय स्वपद सु पाऊँ हो आत्मध्याना॥श्री शान्ति...॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्काम ब्रह्मरूपं निज आत्म जाना,
दुर्दान्त काम नाशे हो आत्मध्याना॥श्री शान्ति...॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

परिपूर्ण तृप्त ज्ञाता निजभाव जाना,
नाशें क्षुधादि क्षण में हो आत्मध्याना॥श्री शान्ति...॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मोह ज्ञानमय ज्ञायक रूप जाना,
कैवल्य सहज प्रगटे हो आत्मध्याना॥श्री शान्ति...॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

निष्कर्म निर्विकारी चिद्रूप जाना,
भव-हेतु-कर्म नाशें हो आत्मध्याना॥श्री शान्ति...॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्बन्ध मुक्त अपना शुद्धात्म जाना,
प्रगटे सु मोक्ष सुखमय हो आत्मध्याना॥श्री शान्ति...॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अविचल अनर्घ्य प्रभुतामय रूप जाना,
विलसे अनर्घ्य आनन्द हो आत्मध्याना॥श्री शान्ति...॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(दोहा)

भादौं कृष्णा सप्तमी, तजि सर्वार्थ विमान।
ऐरा माँ के गर्भ में, आए श्री भगवान॥

ॐ ह्रीं भादवकृष्णासप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

कृष्णा जेठ चतुर्दशी, गजपुर जन्मे ईश।
करि अभिषेक सुमेरू पर, इन्द्र झुकावें शीश॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

सारभूत निर्ग्रन्थ पद, जगत असार विचार।
कृष्णा जेठ चतुर्दशी, दीक्षा ली हितकार॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

आत्मध्यान में नशि गये, घातिकर्म दुखदान।
पौष शुक्ल दशमी दिना, प्रगटो केवलज्ञान॥

ॐ ह्रीं पौषशुक्लादशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जेठ कृष्ण चौदशि दिना, भये सिद्ध भगवान।
भाव सहित प्रभु पूजते, होवे सुख अम्लान॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णाचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीशान्तिनाथ-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(चौपाई)

जय जय शान्तिनाथ जिनराजा, गाऊँ जयमाला सुखकाजा।
जिनवर धर्म सु मंगलकारी, आनन्दकारी भवदधितारी॥

(लावनी)

प्रभु ! शान्तिनाथ लख शान्त स्वरूप तुम्हारा।
चित शान्त हुआ मैं जाना जाननहारा॥टेक॥
हे वीतराग सर्वज्ञ परम उपकारी,
अद्भुत महिमा मैंने प्रत्यक्ष निहारी।
जो द्रव्य और गुण पर्यय से प्रभु जानें,
वे जानें आत्मस्वरूप मोह को हानें॥
विनशें भवबन्धन हो सुख अपरम्पारा॥ चित शान्त हुआ मैं...॥१॥

हे देव! क्रोध बिन कर्म शत्रु किम मारा?
बिन राग भव्यजीवों को कैसे तारा?
निर्ग्रन्थ अकिंचन हो त्रिलोक के स्वामी,
हो निजानन्दरस भोगी योगी नामी॥
अद्‌भुत, निर्मल है सहज चरित्र तुम्हारा॥ चित शान्त हुआ मैं... ॥२॥
सर्वार्थसिद्धि से आ परमार्थ सु साधा,
हो कामदेव निष्काम तत्त्व आराधा।
तजि चक्र सुदर्शन, धर्मचक्र को पाया,
कल्याणमयी जिनधर्मतीर्थ प्रगटाया॥
अनुपम प्रभुता माहात्म्य विश्व से न्यारा॥ चित शान्त हुआ मैं... ॥३॥
गुणगान करूँ हे नाथ आपका कैसे?
हे ज्ञानमूर्ति ! हो आप आप ही जैसे।
हो निर्विकल्प निर्ग्रन्थ निजातम ध्याऊँ,
परभावशून्य शिवरूप परमपद पाऊँ॥
अद्वैत नमन हो प्रभो सहज अविकारा॥ चित शान्त हुआ मैं... ॥४॥
कुछ रहा न भेद विकल्प पूज्य पूजक का,
उपजे न द्वन्द दुःखरूप साध्य-साधक का।
ज्ञाता हूँ ज्ञातारूप असंग रहूँगा,
पर की न आस निज में ही तृप्त रहूँगा॥
स्वभाव स्वयं को होवे मंगलकारा॥ चित शान्त हुआ मैं... ॥५॥

(घत्ता)

जय शान्ति जिनेन्द्रं, आनन्दकन्दं, नाथ निरंजन कुमतिहरा।
जो प्रभु गुणगावें, पाप मिटावें, पावें आतमज्ञान वरा॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला-पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा- भक्तिभाव से जो जजें, जिनवर चरण पुनीत।
वे रत्नत्रय प्रगटकर, लहें मुक्ति नवनीत॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री कुन्थुनाथ जिनपूजन

(दोहा)

कामदेव होकर प्रभो ! किया काम निर्मूल।
चक्रवर्तीपद सम्पदा, समझी तुमने धूल॥
निर्ग्रन्थ पद आराधकर, धर्म तीर्थ प्रगटाय।
हुए मुक्त श्री कुन्थु प्रभु, पूजूँ प्रीति बढ़ाय॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठःठः।
ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(वीरछन्द)

अन्तर साम्यभाव धारण कर, जल जिनचरणों में लाऊँ।
जन्म-जरा-मृत दोष नाशने, अविनाशी निजपद ध्याऊँ॥
कुन्थुनाथ की पूजा करते, हृदय हर्षित होता है।
भक्तिभाव से प्रभु गुण गाते, आनन्द विलसित होता है॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज भाव से शान्त भाव से, चन्दन नाथ चढ़ाता हूँ।
क्रोधादिक संताप मेटने, आत्म भावना भाता हूँ॥कुन्थुनाथ...॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्मल अक्षत जिनवर सन्मुख, सविनय आज चढ़ाता हूँ।
क्षत् भावों से उदासीन हो, अक्षय पद को ध्याता हूँ॥कुन्थुनाथ...॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम्हें नाथ निष्काम निरखकर, प्रासुक पुष्प चढ़ाता हूँ।
कामभाव को निष्फल करने, ब्रह्म भावना भाता हूँ॥कुन्थुनाथ...॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

देव ! स्वयं में तृप्त तुम्हें लख, यह नैवेद्य चढ़ाता हूँ।
क्षुधा वेदना हरने को, परिपूर्ण भावना भाता हूँ॥कुन्थुनाथ...॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

लोकालोक प्रकाशक हो प्रभु फिर भी दीप चढ़ाता हूँ।
मोह अंधेरा दूर भगाने, ज्ञान भावना भाता हूँ॥
कुन्थुनाथ की पूजा करते, हृदय हर्षित होता है।
भक्तिभाव से प्रभु गुण गाते, आनन्द विलसित होता है॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धन्य प्रभो ! निष्कर्म अवस्था, मेरे मन को भाई है।
वैभाविक दुष्कर्म जलाने, ध्यान अग्नि प्रगटाई है॥कुन्थुनाथ...॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

तुम जैसा अविनाशी फल, पाने को चित्त ललचाया है।
प्रासुकफल ले भक्तहृदय प्रभु, चरणशरण में आया है॥कुन्थुनाथ..॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु अनर्घ्य वैभव लख, मेरा रोम-रोम पुलकाया है।
ऐसा पद प्रगटाने स्वामी, सविनय अर्घ्य चढ़ाया है॥कुन्थुनाथ...॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(वीरछन्द)

तजि विमान सर्वार्थसिद्धि प्रभु, गर्भ विषैं आये सुखकार।
श्रावण कृष्णा दशमी के दिन, पूजूँ जिनवर मंगलकार॥

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णदशम्यां गर्भमंगलमण्डिताय श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

एकम सुदि वैशाख सु पावन, हुई बधाई मंगलकार।
अन्तिम जन्म हुआ हे स्वामी, पूजें हरि करि उत्सव सार॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां जन्ममंगलमण्डिताय श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

नगरी की शोभा को लखते, जागा उर वैराग्य महान।
धनि एकम वैशाख सुदी को, पद निर्ग्रन्थ लिया अम्लान॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां तपोमंगलमण्डिताय श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

केवल पायो चैत सुदी तृतीया को घातिकर्म चकचूर।
अद्भुत समवशरण की शोभा, धर्म प्रभाव हुआ भरपूर॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लतृतीयायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

टोंक ज्ञानधर से शिव पायो, सुदि एकम वैशाख दिना।
हरि निर्वाण महोत्सव कीनो, पूजूँ मन-वच-काय बिना॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लप्रतिपदायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं।

जयमाला

(दोहा)

परम अहिंसा धर्म का, दिया सत्य उपदेश।
निजानन्द में मग्न हो, गाऊँ सुयश जिनेश॥

(तर्ज– दिन रात मेरे स्वामी...)

आया शरण तुम्हारी, हे कुन्थुनाथ जिनवर।
आतम निधि सुपाऊँ, पुरुषार्थ जागे प्रभुवर॥टेक॥

जब से स्वरूप देखा, नहीं और कुछ सुहावे।
ज्यों मीन जल बिना त्यों, मम चित्त छटपटावे॥
निजपद की भावना है, तुम सम ही होऊँ सत्वर॥आतम.॥

प्रभु चक्रवर्ती पद को तृण के समान छोड़ा।
होकर परम जितेन्द्रिय, विषयों से मुख को मोड़ा॥
भव जाल से विरत हो, हुए सहज दिगम्बर॥आतम.॥

धनि धर्म मित्र श्रावक, आहार प्रथम दीना।
निज आत्म भावना से, मुक्ती का मार्ग लीना॥
सुर हर्ष प्रगट कीना, पंचाश्चर्य प्रगट कर॥आतम.॥

एकाग्र हुए स्वामी, निज भाव थे निहारे।
फिर क्षपक श्रेणि चढ़कर, घाती करम संहारे॥
प्रगटा अनंत चतुष्टय, हुए अरहंत सुखकर॥आतम.॥

दश जन्म के थे अतिशय, कैवल्य के हुए दश।
देवों ने कीने चौदह, थे प्रातिहार्य भी अठ॥
धनपति ने भक्ति कीनी विभु समवशरण रचकर॥आतम.॥

प्रभु दिव्य-ध्वनि के द्वारा, सन्मार्ग था बताया।
तत्त्वों का मार्ग सुनकर, भव्यों ने बोध पाया॥
जिनमार्ग पर चलूँ मैं, निर्भय निःशंक होकर॥आतम.॥

अनुपम है प्रभुता प्रभु की, अद्भुत है महिमा प्रभु की।
वचनों से कैसे गावें, हम स्तुति सु प्रभु की॥
हो ज्ञान में प्रतिष्ठित बस ज्ञान ही जिनेश्वर॥आतम.॥

चिन्मूर्ति हो विराजे, ज्यों मुक्ति में हे स्वामी।
ध्रुव अचल ऋद्धि पाई, विश्वेश त्रिजग नामी॥
सो भावना मैं भाऊँ, चरणों में शीश धरकर॥आतम.॥

(छन्द-घत्ता)

प्रभु के गुण गावें, मुनिजन ध्यावें, शुद्धातम में लीन भये।
रागादि विनाशे, ज्ञान प्रकाशे, कर्म महारिपु सहज जये॥

ॐ ह्रीं श्री कुन्थुनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पूजा कुन्थु जिनेश की, नित नव मंगलकार।
जग प्रपंच से काढ़ि कै, रत्नत्रय दातार॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री अरनाथ जिनपूजन

(छन्द-लावनी)

अरनाथ जिनेश्वर, दुर्लभ दर्शन पाया।
हे जगतपूज्य ! पूजा का भाव जगाया॥
मदनेश्वर, चक्री, तीर्थंकर पद धारी।
मम हृदय पधारो, भाव रहें अविकारी॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(सोरठा)

जन्म-जरा-मृत नाश के, हुए प्रगट भगवान।
प्रभु समान शुद्धात्मा, अविनाशी पहिचान॥
सहज भक्ति उर धारि के, पूजूँ अर जिनराय।
ध्याऊँ ध्रुव परमात्मा, परमानन्द विलसाय॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवाताप नाशक सुतप, कियो जिनेश्वर देव।
मिटती भक्ति प्रसाद से, चाह दाह स्वयमेव॥सहज..॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत के कारण घातिया, आत्म ध्यान से नाश।
अक्षय गुणमय आत्मा, किया विभो परकाश॥सहज..॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

आर्त ध्यान के हेतु हैं, रौद्र ध्यानमय भोग।
उत्तम शील प्रकाशकर, कीनो पूरण योग॥सहज..॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज रस में संतुष्ट हो, क्षुधा वेदनी टाल।
सो रस निज में ही झरे, पीवत होय निहाल॥सहज..॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सहज ज्ञानमय आत्मा, भासा तत्त्व महान।
मोहादिक विध्वंस कर, पाया केवलज्ञान॥सहज..॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्मेन्धन को भस्म कर, धर्म सुगन्ध सुदेय।
तीन लोक पूजित हुए, दिव्य धूप मैं लेय॥सहज..॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म प्रकृति त्रेसठ तजी, पच्चासी फिर नाशि।
महामोक्षफल प्रभु लहो, गुण अनन्त की राशि॥सहज..॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज अनर्घ्य प्रभुता अहो ! प्रगटाई जिननाथ।
सो प्रभुता अन्तर लखी, अर्घ्य लेय हे नाथ॥सहज..॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(तर्ज : भावना रथ पर चढ़ जाऊँ...)

पंच कल्याणक मनहारी–२
भव्यों के कल्याण निमित्त यह उत्सव सुखकारी ॥टेक॥
पन्द्रह मास रतन शुभ वर्षे, आनन्द भयो भारी।
फाल्गुन शुक्ला तीज हुआ, गर्भागम सुखकारी ॥पंचकल्याणक..॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लातृतीयां गर्भमंगलमण्डिताय श्री अरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

मगसिर सुदी चर्तुदशि गजपुर, जन्मे जगतारी।
मेरु शिखर पर इन्द्रादिक, अभिषेक कियो भारी ॥पंचकल्याणक॥

ॐ ह्रीं मगसिरशुक्लचतुर्दश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री अरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

मगसिर शुक्ला दशमी को निर्ग्रन्थ दशा धारी।
समता रस की धार बहाई, नित्यानन्दकारी ॥पंचकल्याणक॥

ॐ ह्रीं मगसिरशुक्लचतुर्दश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री अरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

कार्तिक शुक्ला द्वादशि को लहि, केवल अविकारी।
धर्मतीर्थ का किया प्रवर्तन, सबको हितकारी ॥पंचकाल्याकणक॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लद्वादश्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री अरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

कृष्णा चैत अमावस्या को, बन्ध दशा टारी।
नित्य निरंजन शिवपद पायो, अक्षय अविकारी ॥पंचकल्याकणक॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णामावस्यायां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री अरनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

धर्म शस्य हित मेघ सम, श्री अरनाथ महान।
गाऊँ जयमाला प्रभो, परमानन्द की खान॥

(तर्ज-प्रभो! आपने एक ज्ञायक दिखाया..)

प्रभु आपको पूजते हर्ष भारी,
स्वयं की विभूति स्वयं में निहारी।
अहो नाथ ! तुमसे तुम्हीं हो दिखाते
महानन्दमय पद तुम्हीं तो बताते॥

महामोहतम प्रभु तुम्हीं तो नशाते,
सहज ज्ञानमय ज्योति तुम ही जलाते।
सुगम मोक्षमारग तुम्हीं प्रभु दिखाते,
सरस ज्ञान गंगा तुम्हीं हो बहाते॥
विषयों के फन्दे से तुम ही छुड़ाते,
चर्तुगति दुःखों से तुम्हीं तो बचाते।
परम ज्ञान वैराग्य तुम ही जगाते,
निर्ग्रन्थ पथ में तुम्हीं प्रभु बढ़ाते॥
हो निरपेक्ष बान्धव तुम्हीं साँचे जग में,
तुम्हीं मार्गदर्शक अहो मोक्षमग में।
हुआ मैं निशंकित तुम्हारे वचन से,
परम सौख्य पाया स्वयं अनुभवन से॥
कहाँ तक कहूँ नाथ महिमा तुम्हारी,
न शब्दों में शक्ति प्रभो ! इतनी धारी॥
चिन्तन तुम्हारा नहीं पार पावे,
अहो स्वानुभव में न आनंद समावे॥
खिला पुण्य मेरा, मिला दर्श तेरा,
यही भावना होय वन माँहिं डेरा।
हो निर्ग्रन्थ मुद्रा महासुखकारी,
सहज ध्यान में कर्म नाशे विकारी॥
नहीं कामना कोई निष्काम वर्तूं,
परम समरसी भाव निर्मान वर्तूं।
नहीं क्षोभ आवे परम शांत वर्तूं,
निर्द्वन्द्व निर्मूढ़ निर्भ्रान्त वर्तूं॥
विशुद्धि जिनेश्वर सु बढ़ती ही जावे,
परम-भाव में वृत्ति रमती ही जावे।

प्रभो आप सम ही परम लीनता हो,
परम मुक्तता हो, परम पूर्णता हो॥

ॐ ह्रीं श्री अरनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

निज कल्याण स्वरूप, धर्मचक्र के अर प्रभो।
पूजूँ हे शिवभूप ! होवें मंगल नित नये॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री मल्लिनाथ जिनपूजन

(छन्द-अडिल्ल)

मल्लिनाथ जिनराज, परम आदर्श हो।
भविजन को सुखदाय, आपका दर्श हो॥
देव आप सम ब्रह्मचर्य वर्ते सदा।
पूजूँ तुम्हें जिनेश, हर्ष उर में महा॥

(छन्द-दोहा)

परम जितेन्द्रिय जिन हुए, काम सुभट को जीत।
स्वाभाविक आनंद की, जागी सहज प्रतीति॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ:ठ:।
ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छन्द-अवतार)

जल जाना प्रभु निस्सार, चरणन माँहिं तजूँ।
तुमसम ही हे जिनराय, अव्यय भाव सजूँ॥
हे बालयती तीर्थेश, नित प्रति शिर नाऊँ।
हे मल्लिनाथ जिनराज, शाश्वत पद पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु चन्दनादि निस्सार, चरणन माँहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, शीतल शांत रहूँ।।हे बालयती..॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत् रूप विभाव असार, चरणन माँहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, अक्षय सौख्य लहूँ॥
हे बालयती तीर्थेश, नित प्रति शिर नाऊँ।
हे मल्लिनाथ जिनराज, शाश्वत पद पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु काम भोग निस्सार, चरणन माँहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, ब्रह्म विलास भजूँ॥ हे बालयती..॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निस्सार बाह्य नैवेद्य, चरणन माँहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, तृप्त सदैव रहूँ।।हे बालयती..॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीप प्रभु निस्सार, चरणन माँहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, नित निर्मोह रहूँ।।हे बालयती..॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखरूप नहीं जड़ धूप, चरणन माँहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, नित निष्कर्म रहूँ।।हे बालयती..॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लौकिक फल सर्व असार, चरणन माँहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, मुक्त सदैव रहूँ।।हे बालयती..॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु बाह्य विभव निस्सार, चरणन माँहिं तजूँ।
तुम सम ही हे जिनराज, विभव अनर्घ्य लहूँ।।हे बालयती..॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सोरठा)

करे जगत कल्याण, गर्भागम भी आपका।
हो भवभय से त्राण, भाव सहित पूजूँ प्रभो ॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लप्रतिपदायां गर्भमंगलमण्डिताय श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जन्म समय इन्द्रादि, कीना न्हवन सुमेरु पर।
जन्मोत्सव कर याद, आनन्द धरि पूजूँ प्रभो॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं ।

ब्याह समय वैराग, धारि हृदय दीक्षा लही।
निज स्वरूप में पाग, कर्म नाश उद्यम किया॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षशुक्लैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि।

केवलज्ञान सुपाय, धर्म तीर्थ प्रगटाइयो।
निश्चय शिव-सुखदाय, पूजूँ अति उल्लास सौं॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णद्वितीयायां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

सर्व कर्म मल जारि, अविनाशी शिवपद लह्यो।
मुक्त स्वरूप निहार, प्रभु निश्चय पूजा करूँ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनशुक्लपंचम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

जयमाला जिनराज की, गाऊँ मंगल रूप।
कर स्मरण चरित्र प्रभु, ध्याऊँ शुद्ध चिद्रूप॥

(ऑचलीबद्ध-चौपाई)

जय-जय मल्लिनाथ भगवान, जिनमुद्रा लखकर अम्लान।
आनन्द मेरे उर न समाय, तन का रोम-रोम पुलकाय॥

महिमा प्रभु की कही न जाय, प्रभु भक्ति वाचाल कराय।
परमब्रह्म परमात्मस्वरूप, तुम गुण तिहुँ जगमाँहिं अनूप॥

जम्बूद्वीप विदेह मँझार, नृपति वैश्रवण चित्त उदार।
मुनि सुगुप्ति के दर्शन किए, रत्नत्रय व्रत सहजहि लिए॥

इक दिन वन विहार के काल, देखा वट का वृक्ष विशाल।
किन्तु लौटते समय विनष्ट, देख हुआ था चित्त विरक्त॥

दीक्षा ले भायी सुखकार, भावना सोलह कारण सार।
किया प्रकृति तीर्थंकर बंध, कर समाधि हुए अहमिन्द्र॥

मिथिला नगरी राजा कुम्भ, प्रजावती रानी अतिरम्य।
अपराजित विमान तें सार, आये ताके गर्भ मंझार॥

नाना उत्सव देव सु किये, धन्य घड़ी प्रभु जन्मत भये।
हुआ सुमेरू पर अभिषेक, दर्शन से प्रभु जगे विवेक॥

अद्भुत क्रीड़ाएं सुखकार, करते बढ़ते भये कुमार।
शादी को जब चली बरात, लख शोभा प्रभु हुए उदास॥

हुआ जाति स्मरण सु ज्ञान, दीक्षा हेतु किया प्रस्थान।
धिक्-धिक् कह त्यागे जड़भोग, आराधा निजरूप मनोग॥

छह दिन में लहि केवलज्ञान, धर्मतीर्थ प्रगटा अम्लान।
समवशरण में शोभें आप, भविजन के नाशें संताप॥

एक मास पहले जिनराज, सम्बल कूट सु आय विराज।
करके योग निरोध महान, पायो अविचल पद निर्वाण॥

भाव सहित पूजत जिनदेव, तत्त्वज्ञान जागे स्वयमेव।
विचरूँ मैं भी प्रभु के पंथ, पाऊँ दशा परम निर्ग्रंथ॥

(छन्द-घत्ता)

जय मल्लि जिनेन्द्रं, आनन्द कन्दं, चिदानन्दमय चित्त धरूँ।
तज जग जंजालं, सुगुण विशालं, प्रभु समान ही प्रगट करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मल्लिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(सोरठा)

प्रभु पूजा सुखकार, हर्षित हो नित प्रति करूँ।
पाऊँ निज पद सार, अन्य न कोई कामना॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनपूजन

(गीतिका)

मुनिनाथ त्रिभुवननाथ पूजित, मुनिसुव्रत प्रभु को नमूँ ।
जिन-भक्तिमय धरि भाव निर्मल, मोह मायादिक वमूँ॥
मम हृदय में आओ विराजो, हर्ष से पूजन करूँ।
निर्भेद हो, निरखेद हो, निर्मुक्त प्रभुता विस्तरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ:ठ:।
ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छन्द-चौपाई)

आत्मतीर्थ जल से अविकारी, भाव सहित पूजूँ त्रिपुरारी।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-आताप विनाशन हारी, चन्दन से पूजूँ उपकारी।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय आबाधित पद धारी, अक्षत से पूजें अविकारी।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

परम ब्रह्ममय रूप सु ध्याऊँ, काम वासना दूर भगाऊँ।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निजरस आस्वादी हो स्वामी, नाशूँ क्षुधा महादुखदानी।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वपर ज्ञानमय ज्योति जगाऊँ, मोह महातम सहज मिटाऊँ।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ध्यान अग्नि में कर्म जलाऊँ, ऊर्ध्वगमन से शिवपुर जाऊँ।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सभी पुण्यफल हेय लखाऊँ, निर्वांछक हो शिवफल पाऊँ।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

द्रव्य-भावमय अर्घ्य चढ़ाऊँ, पद अनर्घ्य प्रभु सम प्रगटाऊँ।
मुनिसुव्रत प्रभु गुण उच्चारूँ, धन्य भाग्य जब मुनिव्रत धारूँ॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(छन्द-अडिल्ल)

श्रावण कृष्णा दूज गर्भ आए प्रभो,
सोलह सपने माँ को दिखलाए विभो।
करें देवियाँ सेव मात की चाव सों,
हम हू पूजें जिनवर भक्ति भाव सों॥

ॐ ह्रीं श्रावणकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं

तिथि वैशाख वदी दशमी अति पावनी,
जन्मकल्याणक की थी छटा सुहावनी।
मेरु शिखर पर इन्द्र प्रभु को ले गयो,
किया महा-अभिषेक जगत आनन्द भयो।

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णदशम्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं

लख गजराज प्रसंग विरक्ति मन धरी,
ली हरिवंश शिरोमणि ! दीक्षा शिवकरी।
तिथि वैशाख वदी दशमी सुखकार थी,
मुनिसुव्रत की गूँजी जय-जयकार थी॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं

तिथि वैशाख वदी नवमी चित थिर कियो,
क्षपक श्रेणि चढ़ घाति नाशि केवल लियो।
दिव्यध्वनि सुन भव्य अनेक सु तिर गये,
पूजत अहो जिनेश भाव सम्यक् भये॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णनवम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं

निर्जर टोंक शिखर सम्मेद तें शिव गये,
फाल्गुन कृष्णा बारस सिद्धालय ठये।
परम मुक्त शुद्धात्म स्वरूप दिखाइया,
हे प्रभु हमहूँ पावें भाव जगाइया॥

ॐ ह्रीं फाल्गुनकृष्णद्वादशम्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं

जयमाला

(दोहा)

जीते अन्तर शत्रु प्रभु, इन्द्रिय विषय-कषाय।
मुनिव्रत धरि शिवपद लह्यो, मुनिसुव्रत जिनराय॥

(वीरछन्द)

पूजा करके भक्ति करते, मुनिसुव्रत भगवान की।
यही भावना प्रभु सम पावें, पदवी हम निर्वाण की॥

देखो प्रभु ने सहज भाव से, दुर्लभ रत्नत्रय धारा।
जगत प्रपंच तजे दुःखकारी, मुनि दीक्षा को स्वीकारा॥

सभी जीव दुःखों से छूटें, पावें आतम ज्ञान को।
पाप-पुण्य की बेड़ी टूटें, धारें आतम ध्यान को॥

जब ही ऐसे भाव जगे थे, प्रकृति बँधी तीर्थंकर की।
हुए पंचकल्याणक मण्डित, जय हो जगत हितंकर की॥

सोमा-नन्दन कर्म निकन्दन, धर्मतीर्थ जो प्रगटाया।
महाभाग्य हमने भी पाया, महानन्द उर में छाया॥

मोह अंधेरा दूर हुआ है, वस्तु स्वभाव धर्म भासा।
जीव-अजीव भिन्न दिखलावें, दुखकारण आस्रव नाशा॥

संवर पूर्वक होय निर्जरा, कर्म बंध तड़ तड़ टूटें।
धन्य परम निर्मुक्त दशा हो, पर-सम्बन्ध सभी छूटें॥

तृप्त स्वयं में मग्न स्वयं में, काल अनंत रहें अविकार।
यही भावना सहज पूर्ण हो, और चाह नहीं रही लगार॥

करें अनुसरण प्रभो आपका, आराधन निज आतम का।
हुआ सहज विश्वास मुनीश्वर, पद पाऊँ परमातम का॥

(छन्द-घत्ता)

अनुपम गुणधारी, हे अविकारी, मुनिसुव्रत जिनशरण लही।
रत्नत्रय पाऊँ मंगल गाऊँ, जाऊँ अष्टम मुक्ति मही॥

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्व. स्वाहा।

(सोरठा)

पूजा श्री जिनराज, महाभाग भविजन करें।
पावें सिद्ध समाज, तीन लोक में पूज्य हों॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री नमिनाथ जिनपूजन

(छन्द-पद्धरि)

नमिनाथ जजूँ जिननाथ भजूँ, मिथ्या संकल्प-विकल्प तजूँ।
ये ही शिवसुख का कारण है, निजभाव सजूँ निजभाव भजूँ॥
अति पुण्योदय जागा स्वामिन् बहुमान आपका आया है।
पूजन करते ज्ञानानन्द सागर, अन्तर में उछलाया है॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

(छन्द-चाल)

सम्यक् जल ले अविकारी, पूजूँ चैतन्य विहारी।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, जन्मादिक दोष नशाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वांछक चन्दन पाऊँ, प्रभु चाह दाह बिनशाऊँ।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, धर्मामृत धार बहाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षत् अक्षत भेद विचारूँ, विचिकित्सा दोष विडारूँ।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, अक्षत से पूज रचाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु प्रासुक पुष्प चढ़ाऊँ, परिणति निजमाँहिं लगाऊँ।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, निष्काम भावना भाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म परमरस स्वादी, नाशो मम क्षुधा कुव्याधी।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, प्रासुक नैवेद्य चढ़ाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहान्धकार नहीं भावे, ताको प्रभु ज्ञान नशावे।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, प्रभु सम केवल प्रगटाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु ध्यान अग्नि प्रजलाई, कर्मों की धूल उड़ाई।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, वात्सल्य भाव प्रगटाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

वैभाविक फल विनशाया, प्रभु धर्म प्रभाव बढ़ाया।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, जिन मुक्तिमहाफल पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अष्टांग अर्घ्य ले स्वामी पूजूँ मैं अन्तर्यामी।
नमिनाथ चरण सिर नाऊँ, अविचल अनर्घ्यपद पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(वीरछन्द)

आश्विन कृष्णा द्वितीया के दिन, शुभ गर्भ विषैं प्रभुवर आए।
अभिनन्दन मात-पिता का कर, देवों ने रत्न सु वर्षाये॥

ॐ ह्रीं आश्विनकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं

दसवीं अषाढ़ श्यामा के दिन, मंगलमय अन्तिम जन्म लिया।
नरकों में भी साता आई, देवों ने उत्सव आन किया।

ॐ ह्रीं अषाढ़कृष्णदशम्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

दो देवों ने आ नमन किया, अपराजित प्रभु वृतान्त कहा।
तब जातिस्मरण हुआ सुखमय, कलिषाढ़ दशैं तप आप लहा॥

ॐ ह्रीं अषाढ़कृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

शुद्धातम रस में लीन हुए, तब चार घाति चकचूर किए।
मगसिर सित एकादशि स्वामी, केवलज्ञानी अरहंत हुए॥

ॐ ह्रीं मगसिरशुक्लैकादशम्यां ज्ञानमंगलमण्डिताय श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

है टोंक मित्रधर सुखकारी, सम्मेदशिखर से सिद्ध हुए।
वैशाख कृष्ण चौदश के दिन, प्रभु आवागमन विमुक्त हुए॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलमण्डिताय श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(दोहा)

भाव सहित पूजा करी, गाऊँ अब जयमाल।
परिणति अन्तर में ढले, होऊँ सहज निहाल॥

(छन्द-रोला)

जयवन्तो नमिनाथ विश्व के जाननहारे।
जयवन्तो नमिनाथ दोष रागादि निवारे॥

जयवन्तो नमिनाथ मोहतम नाशन हारे।
जयवन्तो नमिनाथ भवोदधि तारण हारे॥

चरण परस से भूमि जगत में तीर्थ कहाई।
भाव विशुद्धि की निमित्त सबको सुखदाई॥

ध्यान द्वार से मम परिणति में निवसो स्वामी।
रत्नत्रयमय भाव-तीर्थ प्रगटे जगनामी॥
परमानन्दमय नाथ भाग्य से तुमको पाया।
भव-भव का संताप सर्व ही सहज पलाया॥
भेदज्ञान की ज्योति जगी गुण चिन्तत प्रभुजी।
आत्मज्ञान की कला खिली, अन्तर में जिनजी॥
निज प्रभुता में मग्न नाथ जग प्रभुता पाई।
भई विभूति समवशरण की मंगलदाई॥
दिव्य-ध्वनि से दिव्य-तत्त्व प्रभुवर दर्शाया।
सम्यक् सरस सरल शिवपथ जिनवर दर्शाया॥
निर्मोही हो नाथ आपका मारग पाऊँ।
आप रहो आदर्श मुक्तिमारग मैं धाऊँ॥
राग-द्वेष मय वैभाविक परिणति मिट जावे।
रहूँ परम निर्मुक्त स्वपद प्रभु सम प्रगटावे॥
वचनातीत स्वरूप वचन में कैसे आवे।
चिन्तन भी प्रभु महिमा का कुछ पार न पावे॥
अहो ! स्वानुभवगम्य नाथ को निज में ध्याऊँ।
प्रभु पूजा के निमित्त सहज पुरुषार्थ बढ़ाऊँ॥

(छन्द-घत्ता)

धनि-धनि नमिनाथा, नावें माथा, इन्द्रादिक तव चरणों में।
भव दु:ख नशाऊँ, ध्यान बढ़ाऊँ, शिवसुख पाऊँ चरणों में॥

ॐ ह्रीं श्री नमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

करें करावें मोद धर, पूजा श्री जिनराज।
स्वर्गादिक सुख पायके, पावें शिवपद राज॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री नेमिनाथ जिनपूजन

(रोला)

नेमिनाथ जिनराज, दर्शकर चित हुलसाया,
ज्ञानानन्दमय देव ! सहज निजपद दरशाया।
लख अनुपम वैराग्य आपका त्रिभुवन नामी,
जगा सहज बहुमान विराजो हृदय स्वामी॥

(दोहा)

बाल ब्रह्मचारी प्रभो, अद्भुत प्रभुतावान।
पूजें हर्ष विभोर हो, भाव सहित भगवान॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

ज्ञानसरोवर का सम्यक् जल, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
जन्म-जरा-मृत नाश करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥
धन्य-धन्य नेमीश्वर स्वामी, बालयती हो शिवपद पाय।
आतमनिधि दातार जिनेश्वर, भाव यही निजपद प्रगटाय॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

दाह निकंदन शीतल चन्दन, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
सहज भाव शीतल नित वर्ते, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥धन्य...॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखंडित अनुपम अक्षत, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
निज अक्षय पद प्राप्त करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥धन्य...॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म वृक्ष के पुष्प शीलमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
काम व्यथा निर्मूल करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥धन्य...॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

निज रस पूरित नैवेद्य सुखमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
नाश करन को दोष क्षुधादि, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥धन्य...॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्न दीप सुन्दर सुज्ञानमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
मोह तिमिर के नाश करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥
धन्य-धन्य नेमीश्वर स्वामी, बालयती हो शिवपद पाय।
आतमनिधि दातार जिनेश्वर, भाव यही निजपद प्रगटाय॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

अहो गंध दशधर्ममयी मैं, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
अष्ट कर्म निर्मूल करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥धन्य...॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रासुक फल मैं सहज भावमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
महामोक्ष फल प्राप्त करन को, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥धन्य...॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य अनूपम जिनभक्तिमय, लेकर श्री जिन चरण चढ़ाय।
अविनाशी अनर्घ्य पद पाऊँ, पूजूँ गुण गाऊँ हरषाय॥धन्य...॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(उपेन्द्रवज्रा, तर्ज: मैं हूँ पूर्ण ज्ञायक..)

कार्तिक सुदी षष्ठमि गर्भ माँहीं, आए प्रभो सर्व जन सुखपाँहीं।
वर्षे रतनराशि महिमा अपारी, करें देवियाँ मातु सेवा सुखारी॥

ॐ ह्रीं कार्तिकशुक्लषष्ठम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

श्रावण सुदी षष्ठमि सुखकारी, जन्में जिनेश्वर जग दुःखहारी।
इन्द्रादि ने जन्म अभिषेक कीना, करें भावना जन्म हो ना नवीना॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठम्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

तजो ब्याह को स्वाँग दीक्षा सु धारी, अभयरूप निर्ग्रन्थ वृत्ति सम्भारी।
छटे श्रावणी सित जजों नाथ चरणं, दिखे विश्व में धर्म ही सत्य शरणं॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लषष्ठम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

धरो ध्यान जिनवर अचल अविकारी, नशे घातिया कर्म सब दुःखकारी।
आश्विन सुदी प्रतिपदा सुखरूपं, जजूँ नेमि पायो सु अर्हत् स्वरूपं॥

ॐ ह्रीं अषाढ़शुक्लप्रतिपदायां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

सित षाढ़ अष्टमि सु निर्वाण पायो, गिरनार पर्वत सु तीरथ कहायो।
अहो हम स्वयंसिद्ध निजपद निहारें, करें अर्चना भाव अपना सुधारें॥

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लअष्टम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीनेमिनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जयमाला

(दोहा)

शंख चिन्ह चरणों लसे, शोभे श्याम शरीर।
निरावरण विज्ञानमय, निश्चय से अशरीर॥

(तर्ज: अहो जगत गुरुदेव...)

नेमिनाथ जिनराज तिहुँ जग मंगलकारी।
अनन्त चतुष्टयरूप, देव परम अविकारी॥टेक॥
प्रभु पंचमभव पूर्व शुद्धातम पहिचाना,
धरि जिनदीक्षा आप पायो स्वर्ग विमाना।
फिर तीजे भव माँहिं सोलहकारण भाई,
धर्मतीर्थ कर्तार प्रकृति पुण्य बंधाई॥
फेर हुए अहमिन्द्र तहँ तैं आप पधारे,
समुद्रविजय के लाल तुम ही शरण हमारे।
दीन पशु लख आप ब्याह तजो दुखकारी,
हो विरक्त शिवहेतु निर्ग्रन्थ दीक्षा धारी॥
कियो काम चकचूर निज बल से ही स्वामी,
तिहुँ जग पूज्य ललाम हुए जितेन्द्रिय नामी।
क्षपक श्रेणि चढ़ देव परमातम पद पायो,
धनपति ने तब आय समवशरण सु रचायो॥
झलकें लोकालोक युगपद् परिणति माँहीं,
तदपि विकल्प न लेश रमे सहज निज माँहीं।
नशे अठारह दोष आत्मीक गुण सोहे,
आयुध अम्बर नाहिं सौम्य दशा मन मोहे॥

खिरी दिव्यध्वनि देव दिव्यतत्त्व दर्शायो,
समयसार अविकार सारभूत प्रगटायो।
परलक्षी सब भाव दुखकारण बतलाये,
रत्नत्रय सुखरूप सुखकारण दर्शाये॥
जगत विभव निस्सार हमको भी प्रभु लागे,
मिटा मोह दुखकार तुम चरणों के आगे।
त्यागूँ जगत प्रपंच पुण्य-पाप दुखकारी,
भाव यही जिनराज पाऊँ पद अविकारी॥

ॐ ह्रीं श्री नेमिनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(घत्ता)

जय नेमि जिनेश्वर, साँचे ईश्वर, शील शिरोमणि जितमारं।
भव भय हर्तारं, धर्माधारं, जयवन्तो शिवदातारं॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री पार्श्वनाथ जिनपूजन

(छन्द-ताटंक)

हे पार्श्वनाथ ! हे पार्श्वनाथ, तुमने हमको यह बतलाया।
निज पार्श्वनाथ में थिरता से, निश्चय सुख होता सिखलाया॥
तुमको पाकर मैं तृप्त हुआ, ठुकराऊँ जग की निधि नामी।
हे रविसम स्व-पर प्रकाशक प्रभु, मम हृदय विराजो हे स्वामी॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(वीरछन्द)

जड़ जल से प्यास न शान्त हुई, अतएव इसे मैं यहीं तजूँ।
निर्मल जल-सा प्रभु निजस्वभाव, पहिचान उसी में लीन रहूँ॥

तन-मन-धन निज से भिन्न मान, लौकिक वाँछा नहिं लेश रखूँ।
तुम जैसा वैभव पाने को, तव निर्मल चरण-कमल अर्चूं॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन से शान्ति नहीं होगी, यह अन्तर्दहन जलाता है।
निज अमल भावरूपी चन्दन ही, रागाताप मिटाता है॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

प्रभु उज्ज्वल अनुपम निजस्वभाव ही, एकमात्र जग में अक्षत।
जितने संयोग वियोग तथा, संयोगी भाव सभी विक्षत॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं नि. स्वाहा।

ये पुष्प काम-उत्तेजक हैं, इनसे तो शान्ति नहीं होती।
निज समयसार की सुमन माल ही कामव्यथा सारी खोती॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

जड़ व्यञ्जन क्षुधा न नाश करें, खाने से बंध अशुभ होता।
अरु उदय में होवे भूख अतः, निजज्ञान अशन अब मैं करता॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

जड़ दीपक से तो दूर रहो, रवि से नहिं आत्म दिखाई दे।
निज सम्यक्ज्ञानमयी दीपक ही, मोहतिमिर को दूर करे॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

जब ध्यान-अग्नि प्रज्ज्वलित होय, कर्मों का ईंधन जले सभी।
दशधर्ममयी अतिशय सुगंध, त्रिभुवन में फैलेगी तब ही॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

जो जैसी करनी करता है, वह फल भी वैसा पाता है।
जो हो कर्तृत्व-प्रमाद रहित, वह महा मोक्षफल पाता है॥ तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

निज आत्मस्वभाव अनुपम है, स्वाभाविक सुख भी अनुपम है।
अनुपम सुखमय शिवपद पाऊँ, अतएव यह अर्घ्य समर्पित है॥तन.॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(दोहा)

दूज कृष्ण वैशाख को, प्राणत स्वर्ग विहाय।
वामा माता उर वसे, पूजूँ शिव सुखदाय॥

ॐ ह्रीं वैशाखकृष्णद्वितीयायां गर्भमंगलमण्डिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

पौष कृष्ण एकादशी, सुतिथि महा सुखकार।
अन्तिम जन्म लियो प्रभु, इन्द्र कियो जयकार॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.

पौष कृष्ण एकादशी, बारह भावन भाय।
केशलोंच करके प्रभु, धरो योग शिवदाय॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णएकादश्यां तपोमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

शुक्लध्यान में होय थिर, जीत उपसर्ग महान।
चैत्र कृष्ण शुभ चौथ को, पायो केवलज्ञान॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णचर्तुर्थ्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.

श्रावण शुक्ल सु सप्तमी, पायो पद निर्वाण।
सम्मेदाचल विदित है, तव निर्वाण सुथान॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लसप्तम्याम् मोक्षमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अर्घ्यं

जयमाला

(तर्ज–प्रभु पतित पावन में...)

हे पार्श्व प्रभु मैं शरण आयो दर्शकर अति सुख लियो।
चिन्ता सभी मिट गयी मेरी कार्य सब पूरण भयो॥

चिन्तामणी चिन्तत मिले तरु कल्प माँगे देत हैं।
तुम पूजते सब पाप भागैं सहज सब सुख हेत हैं॥

हे वीतरागी नाथ ! तुमको भी सरागी मानकर।
माँगें अज्ञानी भोग वैभव जगत में सुख जानकर॥

तव भक्त वाँछा और शंका आदि दोषों रहित हैं।
वे पुण्य को भी होम करते भोग फिर क्यों चहत हैं॥

जब नाग और नागिन तुम्हारे वचन उर धर सुर भये।
जो आपकी भक्ति करें वे दास उनके भी भये॥

वे पुण्यशाली भक्त जन की सहज बाधा को हरें।
आनन्द से पूजा करें वाँछा न पूजा की करें॥

हे प्रभो तव नासाग्रदृष्टि यह बताती है हमें।
सुख आत्मा में प्राप्त कर लें व्यर्थ बाहर में भ्रमें॥

मैं आप सम निज आत्म लखकर आत्म में थिरता धरूँ।
अरु आशा-तृष्णा से रहित अनुपम अतीन्द्रिय सुख भरूँ॥

जब तक नहीं यह दशा होती आपकी मुद्रा लखूँ।
जिनवचन का चिन्तन करूँ व्रत शील संयम रस चखूँ॥

सम्यक्त्व को नित दृढ़ करूँ पापादि को नित परिहरूँ।
शुभराग को भी हेय जानूँ लक्ष्य उसका नहिं करूँ॥

स्मरण ज्ञायक का सदा विस्मरण पुद्गल का करूँ।
मैं निराकुल निजपद लहूँ प्रभु ! अन्य कुछ भी नहिं चहूँ॥

ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

पूज्य ज्ञान वैराग्य है, पूजक श्रद्धावान।
पूजा गुण अनुराग अरु, फल है सुख अम्लान॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति, पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां, धिक् च गृहाश्रमम्॥

(पद्मनन्दि पंचविंशति, ६/१५)

जो जिनेन्द्र भगवान के दर्शन, पूजन, स्तवन आदि नहीं करते हैं, उनका जीवन व्यर्थ है। उनके गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

श्री महावीर जिनपूजन

(दोहा)

अद्‍भुत प्रभुता शोभती, झलके शान्ति अपार।
महावीर भगवान के, गुण गाऊँ अविकार॥
निजबल से जीत्यो प्रभो, महाक्लेशमय काम।
पूजन करते भावना, वर्तूं नित निष्काम॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् इत्याह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(त्रिभंगी)

भव-भव भटकायो, अति-दुख पायो, तृष्णाकुल तुम ढिंग आयो।
उत्तम समता जल, शुचि अति शीतल, पायो उर आनन्द छायो॥
इन्द्रादि नमन्ता, ध्यावत संता, सुगुण अनन्ता, अविकारी।
श्री वीर जिनन्दा, पाप निकन्दा, पूजों नित मंगलकारी॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवताप निकन्दन, चन्दनसम गुण, हरष-हरष गाऊँ ध्याऊँ।
नाशूँ दुर्मोहं, दुखमय क्षोभं, सहज शान्ति प्रभु सम पाऊँ॥ इन्द्रादि.॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय गुणमण्डित, अमल अखंडित, चिदानन्द पद प्रीति धरूँ।
क्षत् विभव न चाहूँ, तोष बढ़ाऊँ, अक्षय प्रभुता प्राप्त करूँ॥ इन्द्रादि...॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभुसम-आनन्दमय, नित्यानन्दमय, परमब्रह्मचर्य चाहत हों।
नव बाढ़ लगाऊँ, काम नशाऊँ, सहज ब्रह्मपद ध्यावत हों॥ इन्द्रादि...॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाण-विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

दुख क्षुधा नशावन, पायो पावन, निज अनुभव रस नैवेद्यं।
नित तृप्त रहाऊँ, तुष्ट रहाऊँ, निज में ही हूँ निर्भेदं॥ इन्द्रादि...॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

उद्योतस्वरूपं, शुद्धचिद्रूपं, प्रभु प्रसाद प्रत्यक्ष भयो।
अज्ञान नशायो, समसुख पायो, जाननहार जनाय रह्यो॥ इन्द्रादि...॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

विच कर्ममहावन, भटक्यो भगवन्, शिवमारग तुमढिंग पायो।
तप अग्नि जलाऊँ, कर्म नशाऊँ, स्वर्णिम अवसर अब आयो॥ इन्द्रादि...॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादि विकारं, दुखदातारं, त्याग सहज निजपद ध्याऊँ।
साधूँ हो निर्भय, शुद्धरत्नत्रय, अविनाशी शिवफल पाऊँ॥ इन्द्रादि...॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

करि अर्घ अनूपं, हे शिवभूपं, द्रव्य-भावमय भक्ति करूँ।
तज सर्व-उपाधि, बोधि-समाधि पाऊँ निज में केलि करूँ॥ इन्द्रादि...॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ्य

(सरसी)

नगरी सजी रत्न वर्षाये, सोलह स्वप्ने देखे मात।
षष्ठमि सुदी आषाढ़ प्रभू का, गर्भ कल्याणक हुआ विख्यात॥
भावसहित प्रभु करूँ अर्चना, शुद्धातम कल्याणस्वरूप।
आनन्द सहित आपसम ध्यावें, पावें अविचल बोध अनूप॥

ॐ ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

नरकों में भी कुछ क्षण को तो, साता का संचार हुआ।
चैत सुदी तेरस को प्रभुवर, जन्म जगत सुखकार हुआ॥भाव...॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

जीरण तृण-सम विषयभोग तज, बाल ब्रह्मचारी हो नाथ।
दशमी मगसिर कृष्णा के दिन जिनदीक्षा धारी जिननाथ॥भाव...॥

ॐ ह्रीं मगसिरकृष्णदशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

दशमी सुदि बैशाख तिथी को, आत्मलीन हो घाति विनाश।
धन्य-धन्य महावीर प्रभु को, हुआ सु केवलज्ञान प्रकाश॥भाव...॥

ॐ ह्रीं बैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानमंगलमंडिताय श्रीमहावीर-जिनेन्द्राय अर्घ्यं नि. स्वाहा।

अन्तिम शुक्लध्यान प्रगटाया, शेष अघाति विमुक्त हुए।
कार्तिक कृष्ण अमावस के दिन, वीर जिनेश्वर सिद्ध हुए॥
भावसहित प्रभु करूँ अर्चना, शुद्धातम कल्याणस्वरूप।
आनन्द सहित आपसम ध्यावें, पावें अविचल बोध अनूप॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णमावस्यायां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि.।

जयमाला

(सोरठा)

वर्द्धमान श्रीवीर, सन्मति अरु महावीर जी।
जयवन्तो अतिवीर, पंचनाम जग में प्रसिद्ध॥

(जोगीरासा)

चित्स्वरूप प्रगटाया प्रभुवर, चित्स्वरूप प्रगटाया।
स्वयं स्वयंभू होय जिनेश्वर, चित्स्वरूप प्रगटाया॥टेक॥

हो सबसे निरपेक्ष सिंह के, भव में सम्यक् पाया।
स्वाश्रित आत्माराधन का ही, सत्य मार्ग अपनाया॥१॥

बढ़ती गई सु भाव-विशुद्धि, दशवें भव में स्वामी।
आप हुए अन्तिम तीर्थंकर, भरतक्षेत्र में नामी॥२॥

इन्द्रादिक से पूजित जिनवर, सम्यक्ज्ञानि विरागी।
इन्द्रिय भोगों की सामग्री, दुख निमित्त लख त्यागी॥३॥

जब विवाह प्रस्ताव आपके, सन्मुख जिनवर आया।
आत्मवंचना लगी हृदय में, दृढ़ वैराग्य समाया॥४॥

अज्ञानी सम भव में फँसना, 'क्या इसमें चतुराई?'।
भव-भव में भोगों में फँसकर, भारी विपदा पाई॥५॥

उपादेय निज शुद्धातम ही, अब तो भाऊँ ध्याऊँ।
धरूँ सहज मुनिधर्म परम साधक हो शिवपद पाऊँ॥६॥

इस विचार का अनुमोदन कर, लौकान्तिक हर्षाये।
आप हुए निर्ग्रन्थ ध्यान से, घाति कर्म भगाये॥७॥

हुए सु गौतम गणधर पहले, दिव्यध्वनि सुखकारी।
खिरी श्रावणी वदि एकम को, त्रिभुवन मंगलकारी॥८॥

धर्मतीर्थ का हुआ प्रवर्तन, आत्मबोध जग पाया।
प्रभो! आपका शासन पाकर, रोम-रोम हुलसाया॥९॥

वर्ष बहत्तर आयु पूर्ण कर, सिद्धालय तिष्ठाये।
तुम गुण चिन्तन मोह नशावे, भेदज्ञान प्रगटावे॥१०॥

सहज नमनकर पूजन का फल और न कुछ भी चाहूँ।
सहज प्रवर्ते तत्त्व भावना आवागमन मिटाऊँ॥११॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमालार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(बसन्ततिलका)

सत्तीर्थ वीर प्रभु का जग में प्रवर्ते,
निज तत्त्वबोध पाकर सब लोक हर्षे।
दुर्भावना न आवे मन में कदापि,
निर्विघ्न निर्विकारी आराधना प्रवर्ते।

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

समुच्चय जयमाला

(दोहा)

मोहादिक रिपु जीतकर, जय पाई अविकार।
जयमाला गाऊँ सुखद, गुण चिन्तन के द्वार॥

(त्रोटक)

जय मंगलमय जय लोकोत्तम, जय अनन्य शरण जय पुरुषोत्तम।
जय महावीर जय महाधीर, अवबोध-सिन्धु अति ही गम्भीर॥

जय तेजपुंज जय दिव्य-रूप, हे प्रशममूर्ति अति शान्त-रूप।
जय वचन अगोचर हे महेश, जय स्वानुभूति गोचर जिनेश॥

जय ज्ञानमात्र परभाव शून्य, जय गुण अनंत से सदा पूर्ण।
जय वीतमोह जय वीतक्रोध, जय वीतमान जय वीतलोभ॥

जय वीत-क्षोभ जय वीत-काम, निर्दोष परम प्रभुता ललाम।
दृग ज्ञान सुक्ख वीरज अनंत, जय गुण अनंत महिमा अनंत॥

ध्रुव धर्म तीर्थ पाकर जिनेश, आनंद हुआ उर में विशेष।
प्रभु दूर हुए सब पाप ताप, संतुष्ट आप में हुआ आप॥

देखत प्रभु को निज रूप दिखे, दुर्मोह मिटे दुष्कर्म नशे।
विभु धन्य अलौकिक गुणनिधान, करते भक्तों को निज समान॥

जिन आराधन की लगी लगन, मैं द्रव्य-भाव से बनूँ नगन।
भाऊँ ध्याऊँ ज्ञायक स्वरूप, देहादि दिखें अति भिन्न रूप॥

उपसर्ग परीषह सहज जीत, अपनाऊँ मैं परमार्थ नीति।
ऐसा पुरुषार्थ जगे स्वयमेव, साम्राज्य मुक्ति का लहूँ देव॥

भव-भव का दुखमय भ्रमण नाश, तिष्ठूँ सिद्धालय आप पास।
सब जीव लहें निज तत्त्वज्ञान, पावें सम्यग्दर्शन महान॥

मैत्री प्रमोद कारुण्य भाव, माध्यस्थ धार साधें स्वभाव।
विपरीत विकल्पों को सु त्याग, सब लगें लगावें मुक्तिमार्ग॥

दिन दूना धर्म प्रभाव बढ़े, दुर्व्यसन उपद्रव दूर रहें।
चित शान्त रहे सन्तुष्ट रहे, नित आनन्द मंगल सहज बढ़े॥

भक्ति वश निज हित के निमित्त, पूजन विधान कीना पवित्र।
प्रभु भूल चूक सब क्षमा होय, मम परिणति पूर्ण पवित्र होय॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिमहावीरान्त चतुर्विंशतिजिनेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(दोहा)

जिस विधि से जिनवर लहा, परमानन्द अम्लान।
उस विधि से ही हे विभो ! होऊँ आप समान॥

॥ पुष्पांजलिं क्षिपामि ॥

श्री आध्यात्मिक पाठ संग्रह (खण्ड-४)

सामायिक पाठ

(दोहा)

पंच परम गुरु को प्रणमि, सरस्वती उर धार।
करूँ कर्म छेदंकरी सामायिक सुखकार॥१॥

(चाल-छन्द)

आत्मा ही समय कहावे, स्वाश्रय से समता आवे।
वह ही सच्ची सामायिक, पाई नहीं मुक्ति विधायक॥२॥

उसके कारण मैं विचारूँ, उन सबको अब परिहारूँ।
तन में 'मैं हूँ' मैं विचारी, एकत्वबुद्धि यों धारी॥३॥

दुखदाई कर्म जु माने, रागादि रूप निज जाने।
आस्रव अरु बन्ध ही कीनो, नित पुण्य-पाप में भीनो॥४॥

पापों में सुख निहारा, पुण्य करते मोक्ष विचारा।
इन सबसे भिन्न स्वभावा, दृष्टि में कबहुँ न आवा॥५॥

मद मस्त भयो पर ही में, नित भ्रमण कियो भव-भव में।
मन वचन योग अरु तन से, कृत कारित अनुमोदन से॥६॥

विषयों में ही लिपटाया, निज सच्चा सुख नहीं पाया।
निशाचर हो अभक्ष्य भी खाया, अन्याय किया मन भाया॥७॥

लोभी लक्ष्मी का होकर, हित-अहित विवेक मैं खोकर।
निज-पर विराधना कीनी, किंचित् करुणा नहिं लीनी॥८॥

षट्काय जीव संहारे, उर में आनन्द विचारे।
जो अर्थ वाक्य पद बोले, थे त्रुटि प्रमाद विष घोले॥९॥

किंचित् व्रत संयम धारा, अतिक्रम व्यतिक्रम अतिचारा।
उनमें अनाचार भी कीने, बहु बाँधे कर्म नवीने॥१०॥

प्रतिकूल मार्ग यों लीना, निज-पर का अहित ही कीना।
प्रभु शुभ अवसर अब आयो, पावन जिनशासन पायो॥११॥

लब्धि त्रय मैंने पायी, अनुभव की लगन लगायी।
अतएव प्रभो मैं चाहूँ, सबके प्रति समता लाऊँ॥१२॥

नहिं इष्टानिष्ट विचारूँ, निज सुक्ख स्वरूप संभारूँ।
दुःखमय हैं सभी कषायें, इनमें नहिं परिणति जाये॥१३॥

वेश्या सम लक्ष्मी चंचल, नहिं पकडूँ इसका अंचल।
निर्ग्रन्थ मार्ग सुखकारी, भाऊँ नित ही अविकारी॥१४॥

निज रूप दिखावन हारी, तव परिणति जो सुखकारी।
उसको ही नित्य निहारूँ, यावत् न विकल्प निवारूँ॥१५॥

तुम त्याग अठारह दोषा, निजरूप धरो निर्दोषा।
वीतराग भाव तुम भीने, निज अनन्त चतुष्टय लीने॥१६॥

तुम शुद्ध बुद्ध अनपाया[1], तुम मुक्तिमार्ग बतलाया।
अतएव मैं दास तुम्हारा, तिष्ठो मम हृदय मंझारा॥१७॥

तव अवलम्बन से स्वामी, शिवपथ पाऊँ जगनामी।
निर्द्वन्द निशल्य रहाऊँ, श्रेणि चढ़ कर्म नशाऊँ॥१८॥

जिनने मम रूप न जाना, वे शत्रु न मित्र समाना।
जो जाने मुझ आतम रे, वे ज्ञानी पूज्य हैं मेरे॥१९॥

जो सिद्धात्मा सो मैं हूँ, नहिं बाल युवा नर मैं हूँ।
सब तैं न्यारा मम रूप, निर्मल सुख ज्ञान स्वरूप॥२०॥

जो वियोग संयोग दिखाता, वह कर्म जनित है भ्राता।
नहिं मुझको सुख दुःखदाता, निज का मैं स्वयं विधाता॥२१॥

आसन संघ संगति शाला, पूजन भक्ति गुणमाला।
इनतैं समाधि नहिं होवे, निज में थिरता दुःख खोवे॥२२॥

१. अविनाशी

घिन गेह देह जड़ रूपा, पोषत नहिं सुक्ख स्वरूपा।
जब इससे मोह हटावे, तब ही निज रूप दिखावे॥२३॥

वनिता बेड़ी गृह कारा, शोषक परिवार है सारा।
शुभ जनित भोग जो पाई, वे भी आकुलता दायी॥२४॥

सबविधि संसार असारा बस निज स्वभाव ही सारा।
निज में ही तृप्त रहूँ मैं, निज में संतुष्ट रहूँ मैं॥२५॥

(दोहा)

निज स्वभाव का लक्ष्य ले, मैंटूँ सकल विकल्प।
सुख अतीन्द्रिय अनुभवूँ, यही भावना अल्प॥२६॥

अपूर्व अवसर

आवे कब अपूर्व अवसर जब, बाह्यान्तर होऊँ निर्ग्रन्थ।
सब सम्बन्धों के बन्धन तज, विचरूँ महत् पुरुष के पंथ॥१॥

सर्व-भाव से उदासीन हो, भोजन भी संयम के हेतु।
किंचित् ममता नहीं देह से, कार्य सभी हों मुक्ती सेतु॥२॥

प्रगट ज्ञान मिथ्यात्व रहित से, दीखे आत्म काय से भिन्न।
चरितमोह भी दूर भगाऊँ, निज-स्वभाव का ध्यान अछिन्न॥३॥

जबतक देह रहे तबतक भी, रहूँ त्रिधा मैं निज में लीन।
घोर परीषह उपसर्गों से, ध्यान न होवे मेरा क्षीण॥४॥

संयम हेतु योग प्रवर्तन, लक्ष्य स्वरूप जिनाज्ञाधीन।
क्षण-क्षण चिन्तन घटता जावे, होऊँ अन्त ज्ञान में लीन॥५॥

राग-द्वेष ना हो विषयों में, अप्रमत्त अक्षोभ सदैव।
द्रव्य-क्षेत्र अरु काल-भाव से, विचरण हो निरपेक्षित एव॥६॥

क्रोध प्रति मैं क्षमा संभारूँ, मान तजूँ मार्दव भाऊँ।
माया को आर्जव से जीतूँ, वृत्ति लोभ नहिं अपनाऊँ॥७॥

उपसर्गों में क्रोध न तिलभर, चक्री वन्दे मान नहीं।
देह जाय किंचित् नहिं माया, सिद्धि का लोभ निदान नहीं॥८॥

नग्न वेष अरु केशलोंच, स्नान दन्त धोवन का त्याग।
नहीं रुचि शृङ्गार प्रति, निज संयम से होवे अनुराग॥९॥

शत्रु-मित्र देखूँ न किसी को, मानामान में समता हो।
जीवन-मरण दोऊ सम देखूँ, भव-शिव में न विषमता हो॥१०॥

एकाकी जंगल मरघट में, हो अडोल निज-ध्यान धरूँ।
सिंह व्याघ्र यदि तन को खायें, उनमें मैत्रीभाव धरूँ॥११॥

घोर तपश्चर्या करते, अहार अभाव में खेद नहीं।
सरस अन्न में हर्ष न रजकण, स्वर्ग ऋद्धि में भेद नहीं॥१२॥

चारित मोह पराजित होवे, आवे जहाँ अपूर्वकरण।
अनन्य चिन्तन शुद्धभाव का, क्षपक-श्रेणि पर आरोहण॥१३॥

मोह स्वयंभूरमण पार कर, क्षीण-मोह गुणस्थान वरूँ।
ध्यान शुक्ल एकत्व धार कर, केवलज्ञान प्रकाश करूँ॥१४॥

भव के बीज घातिया विनशें, होऊँ मैं कृतकृत्य तभी।
दर्श ज्ञान सुख बल अनन्तमय, विकसित हों निजभाव सभी॥१५॥

चार अघाती कर्म जहाँ पर, जली जेबरी भाँति रहे।
आयु पूर्ण हो मुक्त दशा फिर, देह मात्र भी नहीं रहे॥१६॥

मन-वच-काया-कर्मवर्गणा, के छूटें सब ही सम्बन्ध।
सूक्ष्म अयोगी गुणस्थान हो, सुखदायक अरु पूर्ण अबन्ध॥१७॥

परमाणु मात्र स्पर्श नहीं हो, निष्कलंक अरु अचल स्वरूप।
चैतन्य मूर्ति शुद्ध निरंजन, अगुरुलघु बस निजपद रूप॥१८॥

पूर्व प्रयोगादिक कारण वश, ऊर्ध्व गमन सिद्धालय तिष्ठ।
सादि अनन्त समाधि सुख में, दर्शन ज्ञान चरित्र अनन्त॥१९॥

जो पद श्री सर्वज्ञ ज्ञान में, कह न सके पर श्री भगवान।
वह स्वरूप फिर अन्य कहे को, अनुभवगोचर है वह ज्ञान॥२०॥

मात्र मनोरथ रूप ध्यान यह, है सामर्थ्य हीनता आज।
'रायचन्द' तो भी निश्चय मन, शीघ्र लहूँगा निजपद राज॥२१॥

सहज भावना से प्रेरित हो, हुआ स्वयं ही यह अनुवाद।
शब्द अर्थ की चूक कहीं हो, सुधी सुधार हरो अवसाद॥२२॥

ज्ञानाष्टक

निरपेक्ष हूँ कृतकृत्य मैं, बहु शक्तियों से पूर्ण हूँ।
मैं निरालम्बी मात्र ज्ञायक, स्वयं में परिपूर्ण हूँ॥
पर से नहीं सम्बन्ध कुछ भी, स्वयं सिद्ध प्रभु सदा।
निर्बाध अरु निःशंक निर्भय, परम आनन्दमय सदा॥१॥

निज लक्ष से होऊँ सुखी, नहिं शेष कुछ अभिलाष है।
निज में ही होवे लीनता, निज का हुआ विश्वास है॥
अमूर्तिक चिन्मूर्ति मैं, मंगलमयी गुणधाम हूँ।
मेरे लिए मुझसा नहीं, सच्चिदानन्द अभिराम हूँ॥२॥

स्वाधीन शाश्वत मुक्त अक्रिय अनन्त वैभववान हूँ।
प्रत्यक्ष अन्तर में दिखे, मैं ही स्वयं भगवान हूँ॥
अव्यक्त वाणी से अहो, चिन्तन न पावे पार है।
स्वानुभव में सहज भासे, भाव अपरम्पार है॥३॥

श्रद्धा स्वयं सम्यक् हुई, श्रद्धान ज्ञायक हूँ हुआ।
ज्ञान में बस ज्ञान भासे, ज्ञान भी सम्यक् हुआ॥
भग रहे दुर्भाव सम्यक्, आचरण सुखकार है।
ज्ञानमय जीवन हुआ, अब खुला मुक्ति द्वार है॥४॥

जो कुछ झलकता ज्ञान में, वह ज्ञेय नहिं बस ज्ञान है।
नहिं ज्ञेयकृत किंचित् अशुद्धि, सहज स्वच्छ सुज्ञान है॥

परभाव शून्य स्वभाव मेरा, ज्ञानमय ही ध्येय है।
ज्ञान में ज्ञायक अहो, मम ज्ञानमय ही ज्ञेय है॥५॥

ज्ञान ही साधन, सहज अरु ज्ञान ही मम साध्य है।
ज्ञानमय आराधना, शुद्ध ज्ञान ही आराध्य है॥
ज्ञानमय ध्रुव रूप मेरा, ज्ञानमय सब परिणमन।
ज्ञानमय ही मुक्ति मम, मैं ज्ञानमय अनादिनिधन॥६॥

ज्ञान ही है सार जग में, शेष सब निस्सार है।
ज्ञान से च्युत परिणमन का नाम ही संसार है॥
ज्ञानमय निजभाव को बस भूलना अपराध है।
ज्ञान का सम्मान ही, संसिद्धि सम्यक् राध है॥७॥

अज्ञान से ही बंध, सम्यग्ज्ञान से ही मुक्ति है।
ज्ञानमय संसाधना, दुख नाशने की युक्ति है॥
जो विराधक ज्ञान का, सो डूबता मंझधार है।
ज्ञान का आश्रय करे, सो होय भव से पार है॥८॥

यों जान महिमाज्ञान की, निजज्ञान को स्वीकार कर।
ज्ञान के अतिरिक्त सब, परभाव का परिहार कर॥
निजभाव से ही ज्ञानमय हो, परम-आनन्दित रहो।
होय तन्मय ज्ञान में, अब शीघ्र शिव-पदवी धरो॥९॥

सांत्वनाष्टक

शान्तचित्त हो निर्विकल्प हो, आत्मन् निज में तृप्त रहो।
व्यग्र न होओ क्षुब्ध न होओ, चिदानन्द रस सहज पिओ॥टेक॥

स्वयं स्वयं में सर्व वस्तुएँ, सदा परिणमित होती हैं।
इष्ट-अनिष्ट न कोई जग में, व्यर्थ कल्पना झूठी है॥
धीर-वीर हो मोहभाव तज, आतम-अनुभव किया करो॥१॥ व्यग्र.॥

देखो प्रभु के ज्ञान माँहिं, सब लोकालोक झलकता है।
फिर भी सहज मग्न अपने में, लेश नहीं आकुलता है॥
सच्चे भक्त बनो प्रभुवर के ही पथ का अनुसरण करो॥२॥ व्यग्र.॥

देखो मुनिराजों पर भी, कैसे-कैसे उपसर्ग हुए।
धन्य-धन्य वे साधु साहसी, आराधन से नहीं चिगे॥
उनको निज-आदर्श बनाओ, उर में समताभाव धरो॥३॥ व्यग्र.॥

व्याकुल होना तो, दुख से बचने का कोई उपाय नहीं।
होगा भारी पाप बंध ही, होवे भव्य अपाय नहीं॥
ज्ञानाभ्यास करो मन माहीं, दुर्विकल्प दुखरूप तजो॥४॥ व्यग्र.॥

अपने में सर्वस्व है अपना, परद्रव्यों में लेश नहीं।
हो विमूढ़ पर में ही क्षण-क्षण, करो व्यर्थ संक्लेश नहीं॥
अरे विकल्प अकिंचित्कर ही, ज्ञाता हो ज्ञाता ही रहो॥५॥ व्यग्र.॥

अन्तर्दृष्टि से देखो नित, परमानन्दमय आत्मा।
स्वयंसिद्ध निर्द्वन्द्व निरामय, शुद्ध बुद्ध परमात्मा॥
आकुलता का काम नहीं कुछ, ज्ञानानन्द का वेदन हो॥६॥ व्यग्र.॥

सहज तत्त्व की सहज भावना, ही आनन्द प्रदाता है।
जो भावे निश्चय शिव पावे, आवागमन मिटाता है॥
सहजतत्त्व ही सहज ध्येय है, सहजरूप नित ध्यान धरो॥७॥ व्यग्र.॥

उत्तम जिन वचनामृत पाया, अनुभव कर स्वीकार करो।
पुरुषार्थी हो स्वाश्रय से इन, विषयों का परिहार करो॥
ब्रह्मभावमय मंगल चर्या, हो निज में ही मग्न रहो॥८॥ व्यग्र.॥

संस्कार बिना सुविधायें पतन का कारण हैं।

न्याय से कमाओ, विवेक से खर्च करो, सन्तोष से रहो।

परमार्थ-शरण

अशरण जग में शरण एक शुद्धातम ही भाई।
धरो विवेक हृदय में आशा पर की दुखदाई॥१॥

सुख दुख कोई न बाँट सके यह परम सत्य जानो।
कर्मोदय अनुसार अवस्था संयोगी मानो॥२॥

कर्म न कोई देवे-लेवे प्रत्यक्ष ही देखो।
जन्मे-मरे अकेला चेतन तत्त्वज्ञान लेखो॥३॥

पापोदय में नहीं सहाय का निमित्त बने कोई।
पुण्योदय में नहीं दण्ड का भी निमित्त होई॥४॥

इष्ट-अनिष्ट कल्पना त्यागो हर्ष-विषाद तजो।
समता धर महिमामय अपना आतम आप भजो॥५॥

शाश्वत सुखसागर अन्तर में देखो लहरावे।
दुर्विकल्प में जो उलझे वह लेश न सुख पावे॥६॥

मत देखो संयोगों को कर्मोदय मत देखो।
मत देखो पर्यायों को गुणभेद नहीं देखो॥७॥

अहो देखने योग्य एक ध्रुव ज्ञायक प्रभु देखो।
हो अन्तर्मुख सहज दीखता अपना प्रभु देखो॥८॥

देखत होउ निहाल अहो निज परम प्रभू देखो।
पाया लोकोत्तम जिनशासन आतमप्रभु देखो॥९॥

निश्चय नित्यानन्दमयी अक्षय पद पाओगे।
दुखमय आवागमन मिटे भगवान कहाओगे॥१०॥

सफाई नहीं दो, साफ रहो।

समता षोडसी

समता रस का पान करो, अनुभव रस का पान करो।
शान्त रहो शान्त रहो, सहज सदा ही शान्त रहो॥टेक॥

नहीं अशान्ति का कुछ कारण, ज्ञान दृष्टि से देख अहो।
क्यों पर लक्ष करे रे मूरख, तेरे से सब भिन्न अहो॥१॥

देह भिन्न है कर्म भिन्न हैं, उदय आदि भी भिन्न अहो।
नहीं अधीन हैं तेरे कोई, सब स्वाधीन परिणमित हो॥२॥

पर नहीं तुझसे कहता कुछ भी, सुख दुख का कारण नहीं हो।
करके मूढ़ कल्पना मिथ्या, तू ही व्यर्थ आकुलित हो॥३॥

इष्ट अनिष्ट न कोई जग में, मात्र ज्ञान के ज्ञेय अहो।
हो निरपेक्ष करो निज अनुभव, बाधक तुमको कोई न हो॥४॥

तुम स्वभाव से ही आनंद मय, पर से सुख तो लेश न हो।
झूठी आशा तृष्णा छोड़ो, जिन वचनों में चित्त धरो॥५॥

पर द्रव्यों का दोष न देखो, क्रोध अग्नि में नहीं जलो।
नहीं चाहो अनुरूप प्रवर्तन, भेदज्ञान ध्रुव दृष्टि धरो॥६॥

जो होता है वह होने दो, होनी को स्वीकार करो।
कर्त्तापन का भाव न लाओ, निज हित का पुरुषार्थ करो॥७॥

दया करो पहले अपने पर, आराधन से नहीं चिगो।
कुछ विकल्प यदि आवे तो भी, सम्बोधन समतामय हो॥८॥

यदि माने तो सहज योग्यता, अहंकार का भाव न हो।
नहीं माने भवितव्य विचारो, जिससे किंचित् खेद न हो॥९॥

हीनभाव जीवों के लखकर, ग्लानिभाव नहीं मन में हो।
कर्मोदय की अति विचित्रता, समझो स्थितिकरण करो॥१०॥

अरे कलुषता पाप बंध का, कारण लखकर त्याग करो।
आलस छोड़ो बनो उद्यमी, पर सहाय की चाह न हो॥११॥

पापोदय में चाह व्यर्थ है, नहीं चाहने पर भी हो।
पुण्योदय में चाह व्यर्थ है, सहजपने मन वांछित हो॥१२॥

आर्तध्यान कर बीज दुख के, बोना तो अविवेक अहो।
धर्म ध्यान में चित्त लगाओ, होय निर्जरा बंध न हो॥१३॥

करो नहीं कल्पना असम्भव, अब यथार्थ स्वीकार करो।
उदासीन हो पर भावों से सम्यक् तत्त्व विचार करो॥१४॥

तजो संग लौकिक जीवों का, भोगों के अधीन न हो।
सुविधाओं की दुविधा त्यागो, एकाकी शिवपंथ चलो॥१५॥

अति दुर्लभ अवसर पाया है, जग प्रपंच में नहीं पड़ो।
करो साधना जैसे भी हो, यह नर भव अब सफल करो॥१६॥

कर्त्तव्याष्टक

आतम हित ही करने योग्य, वीतराग प्रभु भजने योग्य।
सिद्ध स्वरूप ही ध्याने योग्य, गुरु निर्ग्रन्थ ही वंदन योग्य॥१॥

साधर्मी ही संगति योग्य, ज्ञानी साधक सेवा योग्य।
जिनवाणी ही पढ़ने योग्य, सुनने योग्य समझने योग्य॥२॥

तत्त्व प्रयोजन निर्णय योग्य, भेद-ज्ञान ही चिन्तन योग्य।
सब व्यवहार हैं जानन योग्य, परमारथ प्रगटावन योग्य॥३॥

वस्तुस्वरूप विचारन योग्य, निज वैभव अवलोकन योग्य।
चित्स्वरूप ही अनुभव योग्य, निजानंद ही वेदन योग्य॥४॥

अध्यातम ही समझने योग्य, शुद्धातम ही रमने योग्य।
धर्म अहिंसा धारण योग्य, दुर्विकल्प सब तजने योग्य ॥५॥

श्री जिनधर्म प्रभावन योग्य, ध्रुव आतम ही भावन योग्य।
सकल परीषह सहने योग्य, सर्व कर्म मल दहने योग्य॥६॥

भव का भ्रमण मिटाने योग्य, क्षपक श्रेणी चढ़ जाने योग्य।
तजो अयोग्य करो अब योग्य, मुक्तिदशा प्रगटाने योग्य॥७॥

आया अवसर सबविधि योग्य, निमित्त अनेक मिले हैं योग्य।
हो पुरुषार्थ तुम्हारा योग्य, सिद्धि सहज ही होवे योग्य॥८॥

जिनमार्ग

कितना सुन्दर, कितना सुखमय, अहो सहज जिनपंथ है।
धन्य धन्य स्वाधीन निराकुल, मार्ग परम निर्ग्रन्थ है।।टेक॥

श्री सर्वज्ञ प्रणेता जिसके, धर्म पिता अति उपकारी।
तत्त्वों का शुभ मर्म बताती, माँ जिनवाणी हितकारी।
अंगुली पकड़ सिखाते चलना, ज्ञानी गुरु निर्ग्रन्थ हैं॥धन्य.॥१॥

देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा ही, समकित का सोपान है।
महाभाग्य से अवसर आया, करो सही पहिचान है॥
पर की प्रीति महा दुखःदायी, कहा श्री भगवंत है॥धन्य.॥२॥

निर्णय में उपयोग लगाना ही, पहला पुरुषार्थ है।
तत्त्व विचार सहित प्राणी ही, समझ सके परमार्थ है॥
भेद ज्ञान कर करो स्वानुभव, विलसे सौख्य बसंत है॥धन्य.॥३॥

ज्ञानाभ्यास करो मनमाहीं, विषय-कषायों को त्यागो।
कोटि उपाय बनाय भव्य, संयम में ही नित चित पागो॥
ऐसे ही परमानन्द वेदें, देखो ज्ञानी संत हैं॥धन्य.॥४॥

रत्नत्रयमय अक्षय सम्पत्ति, जिनके प्रगटी सुखकारी।
अहो शुभाशुभ कर्मोदय में, परिणति रहती अविकारी॥
उनकी चरण शरण से ही हो, दुखमय भव का अंत है॥धन्य.॥५॥

क्षमाभाव हो दोषों के प्रति, क्षोभ नहीं किंचित् आवे।
समता भाव आराधन से निज, चित्त नहीं डिगने पावे॥
उर में सदा विराजें अब तो, मंगलमय भगवंत हैं॥धन्य.॥६॥

हो निशंक, निरपेक्ष परिणति, आराधन में लगी रहे।
क्लेशित हो नहीं पापोदय में, जिनभक्ति में पगी रहे॥
पुण्योदय में अटक न जावे, दीखे साध्य महंत है॥धन्य.॥७॥

परलक्षी वृत्ति ही आकर, शिवसाधन में विघ्न करे।
हो पुरुषार्थ अलौकिक ऐसा, सावधान हर समय रहे॥
नहीं दीनता, नहीं निराशा, आतम शक्ति अनंत है॥धन्य.॥८॥

चाहे जैसा जगत परिणमे, इष्टानिष्ट विकल्प न हो।
ऐसा सुन्दर मिला समागम, अब मिथ्या संकल्प न हो॥
शान्तभाव हो प्रत्यक्ष भासे, मिटे कषाय दुरन्त है॥धन्य.॥९॥

यही भावना प्रभो स्वप्न में भी, विराधना रंच न हो।
सत्य, सरल परिणाम रहें नित, मन में कोई प्रपंच न हो॥
विषय कषायारम्भ रहित, आनन्दमय पद निर्ग्रन्थ है॥ धन्य...॥१०॥

धन्य घड़ी हो जब प्रगटावे, मंगलकारी जिनदीक्षा।
प्रचुर स्वसंवेदनमय जीवन, होय सफल तब ही शिक्षा॥
अविरल निर्मल आत्मध्यान हो, होय भ्रमण का अंत है॥ धन्य.॥११॥

अहो जितेन्द्रिय जितमोही ही, सहज परम पद पाता है।
समता से सम्पन्न साधु ही, सिद्ध दशा प्रगटाता है॥
बुद्धि व्यवस्थित हुई सहज ही, यही सहज शिवपंथ है॥ धन्य.॥१२॥

आराधन में क्षण-क्षण बीते, हो प्रभावना सुखकारी।
इसी मार्ग में सब लग जावें, भाव यही मंगलकारी॥
सद्दृष्टि-सद्ज्ञान-चरणमय, लोकोत्तम यह पंथ है॥धन्य.॥१३॥

तीनलोक अरु तीनकाल में, शरण यही है भविजन को।
द्रव्य दृष्टि से निज में पाओ, व्यर्थ न भटकाओ मन को॥
इसी मार्ग में लगें-लगावें, वे ही सच्चे संत हैं॥धन्य.॥१४॥

है शाश्वत अकृत्रिम वस्तु, ज्ञानस्वभावी आत्मा।
जो आतम आराधन करते, बनें सहज परमात्मा॥
परभावों से भिन्न निहारो, आप स्वयं भगवंत है॥धन्य.॥१५॥

मेरा सहज जीवन

अहो चैतन्य आनन्दमय, सहज जीवन हमारा है।
अनादि अनंत पर निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है॥टेक॥

हमारे में न कुछ पर का, हमारा भी नहीं पर में।
द्रव्य-दृष्टि हुई सच्ची, आज प्रत्यक्ष निहारा है॥१॥

अनंतों शक्तियाँ उछलें, सहज सुख ज्ञानमय विलसें।
अहो प्रभुता परम पावन, वीर्य का भी न पारा है॥२॥

नहीं जन्मूँ नहीं मरता, नहीं घटता नहीं बढ़ता।
अगुरूलघु रूप ध्रुव ज्ञायक, सहज जीवन हमारा है॥३॥

सहज ऐश्वर्य मय मुक्ति, अनंतों गुण मयी ऋद्धि।
विलसती नित्य ही सिद्धि, सहज जीवन हमारा है॥४॥

किसी से कुछ नहीं लेना, किसी को कुछ नहीं देना।
अहो निश्चिंत परमानन्दमय जीवन हमारा है॥५॥

ज्ञानमय लोक है मेरा, ज्ञान ही रूप है मेरा।
परम निर्दोष समता मय, ज्ञान जीवन हमारा है॥६॥

मुक्ति में व्यक्त है जैसा, यहाँ अव्यक्त है वैसा।
अबद्धस्पृष्ट अनन्य, नियत जीवन हमारा है॥७॥

सदा ही है न होता है, न जिसमें कुछ भी होता है।
अहो उत्पाद व्यय निरपेक्ष, ध्रुव जीवन हमारा है॥८॥

विनाशी बाह्य जीवन की, आज ममता तजी झूठी।
रहे चाहे अभी जाये, सहज जीवन हमारा है॥९॥

नहीं परवाह अब जग की, नहीं है चाह शिवपद की।
अहो परिपूर्ण निष्पृह ज्ञानमय जीवन हमारा है॥१०॥

मंगल शृङ्गार

मस्तक का भूषण गुरु आज्ञा, चूड़ामणि तो रागी माने।
सत्-शास्त्र श्रवण है कर्णों का, कुण्डल तो अज्ञानी जाने॥१॥

हीरों का हार तो व्यर्थ कण्ठ में, सुगुणों की माला भूषण।
कर पात्र-दान से शोभित हो, कंगन हथफूल तो हैं दूषण॥२॥

जो घड़ी हाथ में बंधी हुई, वह घड़ी यहीं रह जायेगी।
जो घड़ी आत्म-हित में लागी, वह कर्म बंध विनशायेगी॥३॥

जो नाक में नथुनी पड़ी हुई, वह अन्तर राग बताती है।
श्वास-श्वास में प्रभु सुमिरन से, नासिका शोभा पाती है॥४॥

होठों की यह कृत्रिम लाली, पापों की लाली लायेगी।
जिसमें बँधकर तेरी आत्मा, भव-भव के दुःख उठायेगी॥५॥

होठों पर हँसी शुभ्र होवे, गुणियों को लखते ही भाई।
ये होठ तभी होते शोभित, तत्त्वों की चर्चा मुख आई॥६॥

क्रीम और पाउडर मुख को, उज्ज्वल नहिं मलिन बनाता है।
हो साम्यभाव जिस चेहरे पर, वह चेहरा शोभा पाता है॥७॥

आँखों में काजल शील का हो, अरु लज्जा पाप कर्म से हो।
स्वामी का रूप बसा होवे, अरु नाता केवल धर्म से हो॥८॥

जो कमर करधनी से सुन्दर, माने उस सम है मूढ़ नहीं।
जो कमर ध्यान में कसी गई, उससे सुन्दर है नहीं कहीं॥९॥

पैरों में पायल ध्वनि करतीं, वे अन्तर द्वन्द बताती हैं।
जो चरण चरण की ओर बढ़े, उनके सन्मुख शरमाती हैं॥१०॥

जड़ वस्त्रों से तो तन सुन्दर, रागी लोगों को दिखता है।
पर सच पूछो उनके अन्दर, आतम का रूप सिसकता है॥११॥

जब बाह्य मुमुक्षु रूप धार, ज्ञानाम्बर को धारण करता।
अत्यन्त मलिन रागाम्बर तज, सुन्दर शिवरूप प्रकट करता॥१२॥

एकत्व ज्ञानमय ध्रुव स्वभाव ही, एक मात्र सुन्दर जग में।
जिसकी परिणति उसमें ठहरे, वह स्वयं विचरती शिवमग में॥१३॥

वह समवसरण में सिंहासन पर, गगन मध्य शोभित होता।
रत्नत्रय के भूषण पहने, अपनी प्रभुता प्रगटाता॥१४॥

पर नहीं यहाँ भी इतिश्री, योगों को तज स्थिर होता।
अरु एक समय में सिद्ध हुआ, लोकाग्र जाय अविचल होता॥१५॥

ब्रह्मचर्य विंशतिका

है परम धर्म ब्रह्मचर्य धर्म, इसमें सब धर्म समाते हैं।
जितने लगते दोष यहाँ, वे सब कुशील में आते हैं॥

जो ब्रह्मचर्य पालन करते, दुःख पास न उनके आते हैं।
जो भोगों में आसक्त हुए, वे दुःख को स्वयं बुलाते हैं॥

भोगों की दाता स्त्री है, पंचेन्द्रिय भोग जुटाती है।
इक बूँद और की आशा में, भोले नर को अटकाती है॥

स्पर्शन में कोमल शैया, ठंडा-जल गरम-नरम भोजन।
रसना को सरस प्रदान करे, शुभ गंध घ्राण के हेतु सृजन॥

चक्षु को हाव-भाव दर्शन, अरु राग वचन दे कानों को।
हरती मन को बहु ढंगों से, संक्लेश करे अनजानों को॥

भोले जो विषयासक्त पुरुष, वे स्त्री में फंस जाते हैं।
मल माया की साक्षात् मूर्ति, अस्पृश्य जिसे मुनि गाते हैं॥

स्त्री की काँख नाभि योनि, अरु स्तन के स्थानों में।
सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंख्यात जीव प्रतिसमय मरें॥

श्री गुरु तो यहाँ तक कहते हैं, अच्छा नागिन का आलिंगन।
पर नहीं रागमय-दृष्टि से, नारी के तन का भी निरखन॥

संसार चक्र की धुरी अरे, बस नारी को बतलाया है।
आधे माँ आधे पत्नी से, नाते प्रत्यक्ष दिखाया है॥

यदि स्त्री से विमुक्त देखो, तो नहीं किसी से भी नाता।
भोगेच्छा भी नहीं रहने से, तन-पुष्टि राग भी भग जाता॥

जग में हैं पुरुष अनेक भरे, जो असि के तीक्षण वार सहें।
अति क्रूर केहरी वश करते, मतवाले गज से नहीं डरें॥

पर वे तो वीर नहीं भाई, स्त्री कटाक्ष से हार गये।
हैं महावीर वे ही जग में जो निर्विकार उस समय रहे॥

यह तो निमित्त का कथन मात्र, है दोष नहीं कुछ नारी का।
है दोष स्वयं की दृष्टि का, पुरुषार्थ शिथिलता भारी का॥

यदि ज्ञान दृष्टि से देखो तो, परद्रव्य नहीं कुछ करता है।
पर लक्ष्य करे खुद अज्ञानी, अरु व्यर्थ दुःख में पड़ता है॥

पर को अपना स्वामी माने, खुद को आधीन समझता है।
सुख हेतु प्रतिसमय क्लेशित हो, अनुकूल प्रतीक्षा करता है॥

प्रतिकूलों के प्रति क्षोभ करें, नित आर्तध्यान में लीन रहें।
दुःखदाई ऐसे क्रूर भाव को, ज्ञानी स्त्रीपना कहे॥

इन परभावों को ही कुशील, जिन-आगम में बतलाया है।
पुण्यभाव भी निश्चय से, दुःखमय कुशील ही गाया है॥

है ब्रह्म नाम आतम स्वभाव, उसमें रहना ब्रह्मचर्य कहा।
व्यवहार भेद अठारह हजार निश्चय अभेद सुखकार महा॥

अतएव भ्रात ब्रह्मचर्य धरो, नव-बाढ़ शील की पालो तुम।
अतिचार पंच भी तजकर के, अनुप्रेक्षा पंच विचारो तुम॥

निश्चय ही जीवन सफल होय, आकुलता दूर सभी होगी।
विश्राम मिले निज में निश्चय, अक्षय-पद की प्राप्ति होगी॥

(दोहा)

ब्रह्मचर्य सुखमय सदा, निश्चय आत्मस्वभाव।
पावनता स्वयमेव हो, मिटते सभी विभाव॥

ब्रह्मचर्य द्वादशी

ब्रह्मचर्य की अद्भुत महिमा, आज बताऊँ भली-भली।
ब्रह्मचर्य बिन जीवन निष्फल, बात कहूँ मैं खरी-खरी॥टेक॥

निज सुख शान्ति निज में ही है, बाहर कहीं न पाओगे।
व्यर्थ भ्रमे हो और भ्रमोगे, समय चूक पछताओगे॥
भोगों में तो फँस कर भाई, तुमने भारी विपद भरी॥ब्रह्म.॥१॥

जैसे बड़ी-बड़ी नदियों पर, बाँध बँधे देखे होंगे।
सोचो बाँध टूट जावे तो, क्यों नहीं नगर नष्ट होंगे॥
ब्रह्मचर्य का बाँध टूटने से, बरबादी घड़ी-घड़ी॥ब्रह्म.॥२॥

भोगों का घेरा ऐसा है, बाहर वाले ललचावें।
फँसने वाले भी पछतावें, सुख नहीं कोई पावें॥
धोखे में आवे नहीं ज्ञानी, शुद्धातम की प्रीति धरी॥ब्रह्म.॥३॥

पहले तो मिलना ही दुर्लभ, मिल जावें तो भोग कठिन।
भोगों से तृष्णा ही बढ़ती, इनसे होना तृप्ति कठिन॥
पाप कमावे धर्म गमावे, घूमे भव की गली-गली॥ब्रह्म.॥४॥

बत्ती तेल प्रकाश नाश ज्यों, दीपक धुआँ उगलता है।
रत्नत्रय को नाश मूढ, भोगों में फँसकर हँसता है॥
सन्निपात का ही यह हँसना, सन्मुख जिसके मौत खड़ी॥ब्रह्म.॥५॥

सर्वव्रतों में चक्रवर्ती अरु, सब धर्मों में सार कहा।
अनुपम महिमा ब्रह्मचर्य की, शिवमारग शिवरूप अहा॥
ब्रह्मचर्य धारी ज्ञानी के, निजानन्द की झरे झड़ी॥ब्रह्म.॥६॥

पर-स्त्री संग त्याग मात्र से, ब्रह्मचर्य नहिं होता है।
पंचेन्द्रिय के विषय छूट कर, निज में होय लीनता है॥
अतीचार जहाँ लगे न कोई, ब्रह्म भावना घड़ी-घड़ी॥ब्रह्म.॥७॥

सर्व कषायें अब्रह्म जानो, राग कुशील कहा दुखकार।
सर्व विकारों की उत्पादक, पर-दृष्टि ही महा विकार॥
द्रव्यदृष्टि शुद्धात्म लीनता, ब्रह्मचर्य सुखकार यही॥ब्रह्म.॥८॥

सबसे पहले तत्त्वज्ञान कर, स्वपर भेद-विज्ञान करो।
निजानन्द का अनुभव करके, भोगों में सुखबुद्धि तजो॥
कोमल पौधे की रक्षा हित, शील बाढ़ नौ करो खड़ी॥ब्रह्म.॥९॥

समता रस से उसे सींचना, सादा जीवन तत्त्व विचार।
सत्संगति अरु ब्रह्म भावना, लगे नहिं किंचित् अतिचार॥
कमजोरी किंचित् नहीं लाना, बाधायें हों बड़ी-बड़ी॥ब्रह्म.॥१०॥

मर्यादा का करें उल्लंघन, जग में भी संकट पावें।
निज मर्यादा में आते ही, संकट सारे मिट जावें॥
निजस्वभाव सीमा में आओ, पाओ अविचल मुक्ति मही॥ब्रह्म.॥११॥

चिंता छोड़ो स्वाश्रय से ही, सर्व विकल्प नशायेंगे।
कर्म छोड़ खुद ही भागेंगे, गुण अनन्त प्रगटायेंगे॥
'आत्मन्' निज में ही रम जाओ, आई मंगल आज घड़ी॥ब्रह्म.॥१२॥

नारी स्वरूप

यदि द्रव्यदृष्टि से देखो तो नारी तो कोई द्रव्य नहीं।
असमान जाति का नाम मात्र, उसमें तो सुख है नहीं कहीं॥१॥

जिस तन पर रीझ रहा मोही, वह तो पुद्गल का पिण्ड अरे।
परिणति में आस्रव बंध चले, उसमें भीतर चैतन्य रहे॥२॥

वह तो तेरे सम ही भाई, किंचित् विकार अस्तित्व नहीं।
उसको निरखे भागे विकार, समता से होवे मुक्ति-मही॥३॥

पर्यायमूढ़ मिथ्यात्वी को, निज भोग योग्य वह है दिखती।
ज्यों रोग पीलिया होने पर, शुभ श्वेत वस्तु पीली दिखती॥४॥

पति को तो पत्नी रूप दिखे, भाई को भगिनी दिखती है।
सुत को माता, पुत्री पितु को, ज्यों दृष्टि है त्यों सृष्टि है॥५॥

केमरा वस्त्र अरु चर्म ग्रहे, अस्थि एक्स-रे का विषय बने।
त्यों अज्ञानी उपरोक्त लखे, पर ज्ञानी को चैतन्य दिखे॥६॥

व्यवहार चतुर आगम प्रवीण, भी उसको लख चिंतन करता।
चैतन्य विराधन कर माया से, आत्मा स्त्री तन धरता॥७॥

यदि इसके हाव-भाव लखकर, मैं अपना धर्म विसारूँगा।
तो पाप बंध होगा भारी, नरभव की बाजी हारूँगा॥८॥

यह भव तो भव के नाश हेतु, चिन्तामणि सम मैंने पाया।
नारी की माया से हटकर, पाऊँगा रत्नत्रय माया॥९॥

निज आत्मतत्त्व है निर्विकार, उसका अवलम्बन मुझे उचित।
इससे विकार करना न योग्य, बस रहना ज्ञायक मुझे उचित॥१०॥

स्त्री पर्याय को पाकर भी, जो ज्ञानरूप चेतन देखे।
तो सम्यक्त्वी होकर निश्चय, यह स्त्रीलिंग तत्क्षण छेदे॥११॥

ऐसा विचार कर यदि उर से, किंचित् करुणा का स्रोत बहे।
तो जम्बूस्वामी सम विरक्त उस उर में भी वैराग्य भरे॥१२॥

अरु ध्यान दशा में निर्विकल्प स्वाभाविक परिणति होती है।
निजज्ञायक में जागृति रहे, परिणति बाहर से सोती है॥१३॥

हैं धन्य-धन्य वे जीव सदा, जो हैं ऐसी परिणति धारी।
उनकी महिमा के वर्णन में, इन्द्रों की भी बुद्धि हारी॥१४॥

मैं बार-बार उनके चरणों में, सादर शीश नवाता हूँ।
उन सम ही होऊँ निर्विकार, बस यही भावना भाता हूँ॥१५॥

(दोहा)

परमब्रह्म लखता रहूँ, एक अचल निज-भाव।
पूर्ण अखण्डित शील हो, मेटूँ सकल-विभाव॥

ब्रह्मचर्य ध्रुव ब्रह्ममयी

ब्रह्मचर्य की अद्भुत महिमा, सुनो भव्य कल्याणमयी।
जिससे कटती भव की संतति दुःखमयी अज्ञानमयी॥टेक॥

परमब्रह्म शाश्वत परमातम नित्य निरंजन देव है।
सहजज्ञानमय सहजानन्दमय सहजमुक्त स्वयमेव है॥
निर्विकल्प आह्लादरूप हो स्वानुभूति आनन्दमयी॥१॥जिससे..

सहज तृप्त हो सहज तुष्ट हो सहज दृष्टि टिक जाती है।
सर्व समर्पण हो आतम प्रति, सहज मग्नता होती है॥
परिणति में यह ध्रुव प्रियतम का मिलन परम आनन्दमयी॥२॥जिससे.

ज्ञायक में अपनत्व हुआ फिर ज्ञेय भिन्न दिखलाते हैं।
चाहे जैसे सुन्दर होवें, मोह नहीं उपजाते हैं॥
जीवन निर्विकार हो जाता सहज शुद्ध चिद्रूपमयी॥३॥जिससे..

सतत् सदा ही स्वयं स्वयं में सहज ही अमृत झरता है।
शुद्ध चेतना का विलास ही सहज अनन्त पसरता है॥

भेद विकल्प भी नहीं उपजावे चर्या होवे ब्रह्ममयी॥४॥जिससे..

अक्षय अद्भुत प्रभुता प्रगटे, नशते सर्व विभाव हैं।
सहज अलौकिक शुद्ध चेतनामयी होंय सब भाव हैं॥
नित्य शुद्ध शाश्वत वैभव है साम्राज्य है ज्ञानमयी॥५॥जिससे..

धन्य धन्य निर्मोही हो निर्ग्रन्थ होय कर कल्याणी।
जीवराज को वरण किया है, परिणति हुई मुक्ति रानी॥
तिहुँ जगमाँहीं पूज्य हुई है स्वयं सहज ही मुक्तिमयी॥६॥जिससे..

आत्मविमुख हो पर को देखे, वह तो मूढ़ गंवार रे।
भोग-वासनाओं में फंसकर घूमे बहु संसार रे॥
सर्व समागम आज मिला है छोड़ो परिणति रागमयी॥७॥जिससे..

चेतो चेतन अब भी अवसर, पर का कोई दोष नहीं।
भूल तजो हठ छोड़ो भाई, मिले न पर में तोष कहीं॥
जानो मानो सदा आचरो, तत्त्व सहज आनन्दमयी॥८॥जिससे..

पड़े नहीं पीछे पछताना, इसीलिए पहले सोचो।
परमसत्य शिवमय सुन्दरतम परमब्रह्म अन्तर देखो॥
धारो-धारो सारभूत दृढ़, ब्रह्मचर्य ध्रुव ब्रह्ममयी॥९॥जिससे..

चेतो-चेतो आराधना में

देखो-देखो यह जीव की, विराधना का फल।
चेतो-चेतो आराधना में, मत बनो निर्बल॥टेक॥

पाषाण खण्ड कह रहे, कठोरता त्यागो।
विनम्र हो उत्साह से, शिवमार्ग में लागो॥
बहते हुए झरने कहें, धोओ मिथ्यात्व मल॥देखो-देखो..॥१॥

ईर्ष्या त्यागो जलती हुई, अग्नि है कह रही।
मत चाह दाह में जलो, सुख अन्तर में सही॥

वायु कहे भ्रमना वृथा, होओ निज में निश्चल ॥देखो-देखो..॥२॥

जड़ता छोड़ो प्रमाद को नाशो कहें तरुवर।
शुद्धातमा ही सार है, उपदेश दें गुरुवर॥
समझो-समझो निजात्मा, अवसर बीते पल-पल ॥देखो-देखो..॥३॥

मायाचारी संक्लेशता का, फल कहें तिर्यंच।
जागो अब मोह नींद से, छोड़ो झूठे प्रपःा॥
जिनधर्म पाया भाग्य से, दृष्टि करो निर्मल ॥॥देखो-देखो..॥४॥

शृंगार अरु भोगों की रुचि का, फल कहती नारी।
कंजूसी पूर्वक संचय का, फल कहते भिखारी॥
बहु आरम्भ परिग्रह फल में, नारकी व्याकुल ॥देखो-देखो.. ॥५॥

असहाय शक्ति हीन, देखो दरिद्री रोगी।
कोइ इष्ट वियोगी, कोई अनिष्ट संयोगी॥
घिनावना तन रूप, अंगोपांग है शिथिल ॥देखो-देखो..॥६॥

यदि ये दु:ख इष्ट नहीं हैं, तो निज भाव सुधारो।
निवृत्त हो विषय कषायों से, निजतत्त्व विचारो॥
चक्री के वैभव भोग भी, सुख देने में असफल ॥देखो-देखो..॥७॥

पाकर किःित् अनुकुलताएँ, व्यर्थ मत फूलो।
हैं पराधीन आकुलतामय, नहीं मोह में भूलो॥
ध्रुव चिदानन्दमय आत्मा, लक्ष्य करो अविरल ॥देखो-देखो..॥८॥

पुण्यों की भी तृष्णायतनता, अबाधित जानो।
बन्धन तो बन्धन ही, उसे शिवमार्ग मत मानो॥
ज्यों अंक बिन बिन्दी त्यों स्वानुभव बिन जीवन निष्फल ॥देखो-देखो..॥९॥

अब योग तो सब ही मिले, पुरुषार्थ जगाओ।
अन्तर्मुख हो बस मात्र, जाननहार जनाओ॥

सन्तुष्ट निज में ही रहो, ब्रह्मचर्य हो सफल ॥देखो-देखो..॥१०॥

सब प्राप्य निज में ही अहो, स्थिरता उर लाओ।
तुम नाम पर व्यवहार के, बाहर न भरमाओ॥
निर्ग्रन्थ हो निर्द्वन्द हो ध्याओ, निजपद अविचल ॥देखो-देखो..॥११॥

निज में ही सावधान ज्ञानी, साधु जो रहते।
वे ही जग के कल्याण में, निमित्त हैं होते॥
ध्याओ ध्याओ शुद्धात्मा, पर की चिन्ता निष्फल ॥देखो-देखो..॥१२॥

निर्बन्ध के इस पंथ में, जोड़ो नहीं सम्बन्ध।
विचरो एकाकी निष्पृही, निर्भय सहज निशंक॥
निर्मूढ़ हो निर्मोही हो, पाओ शिवपद अविचल ॥देखो-देखो..॥१३॥

अपनी वैभव गाथा

(मरहठा-माधवी)

आत्मन् अपनी वैभव गाथा, सुनो परम आनन्दमय।
स्वानुभूति से कर प्रमाण, प्रगटाओ सहज सौख्य अक्षय ॥टेक॥

स्वयं-सिद्ध सत् रूप प्रभु, नहिं आदि मध्य अवसान है।
तीन लोक चूड़ामणि आतम, प्रभुता सिद्ध समान है॥
सिद्ध प्रभू ज्यों ज्ञाता त्यों ही, तुम ज्ञाता भगवान हो।
करो विकल्प न पूर्ण अपूर्ण का निर्विकल्प अम्लान[१] हो॥
निश्चय ही परमानन्द विलसे, सर्व दुखों का होवे क्षय ॥१॥

हों संयोग भले ही कितने, संयोगों से भिन्न सदा।
नहीं तजे निजरूप कदाचित्, होवे नहीं पररूप कदा॥
कर्मबंध यद्यपि अनादि से, तदपि रहे निर्बन्ध सदा।
वैभाविक परिणमन होय, फिर भी तो है निर्द्वन्द अहा॥
देखो-देखो द्रव्यदृष्टि से, चित्स्वरूप अनुपम सुखमय ॥२॥

१. निर्मल

एक-एक शक्ति की महिमा, वचनों में नाहिं आवे।
शक्ति अनंतों उछलें शाश्वत, चिन्तन पार नहीं पावे॥
प्रभु स्वाधीन अखण्ड प्रतापी, अकृत्रिम भगवान अहो।
जो भी ध्यावे शिवपद पावे, ध्रुव परमेष्ठी रूप विभो॥
भ्रम को छोड़ो करो प्रतीति, हो निशंक निश्चल निर्भय॥३॥

केवलज्ञान अनंता प्रगटे, ऐसा ज्ञान स्वरूप अहो।
काल अनंत-अनंतसुख विलसे, है अव्ययसुख सिंधु अहो॥
अनंत ज्ञान में भी अनंत ही, निज स्वरूप दर्शाया है।
पूर्णपने तो दिव्यध्वनि में भी, न ध्वनित हो पाया है॥
देखो प्रभुता इक मुहूर्त में, सब कर्मों पर लहे विजय॥४॥

आत्मज्ञान बिन चक्री इन्द्रादिक भी, तृप्ति नहीं पावें।
सम्यक् ज्ञानी नरकादिक में भी अपूर्व शान्ति पावें॥
इसीलिये चक्री तीर्थंकर, बाह्य विभूति को तजते।
हो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिवर, चिदानन्द पद में रमते॥
धन्य-धन्य वे ज्ञानी ध्यावें, समयसार निज समय-समय॥५॥

चक्रवर्ती की नवनिधियाँ पर, निज निधियों का पार नहीं।
चौदह रत्न चक्रवर्ती के, आतम गुण भण्डार सही॥
चक्रवर्ती का वैभव नश्वर, आत्म-विभूति अविनाशी।
जो पावे सो होय अयाची, कट जाये आशापाशी[१]॥
झूठी दैन्य निराशा तजकर, पाओ वैभव मंगलमय॥६॥

चंचल विपुल विकल्पों को तो, एक स्फुलिंग ही नाशे।
आतम तेजपुञ्ज सर्वोत्तम, कौन मुमुक्षु न अभिलाषे॥
चिंतामणि तो पुण्य प्रमाणे, जग इच्छाओं को पूरे।
धन्य-धन्य चेतन चिंतामणि, क्षण में वांछायें चूरे॥
निर्वांछक हो अहो अनुभवो, अविनश्वर कल्याण मय॥७॥

१. आशा रूपी जाल

जिनधर्मों की पूजा करते, उनका धर्मी शुद्धातम।
परमपूज्य जानो पहिचानो, शुद्ध चिदम्बर परमातम॥
परमपारिणामिक ध्रुवज्ञायक, लोकोत्तम अनुपम अभिराम।
नित्यनिरंजन परमज्योतिमय, परमब्रह्म अविचल गुणधाम॥
करो प्रतीति अनुभव परिणति, निज में ही हो जाय विलय॥८॥

गुरु की गुरुता, प्रभु की प्रभुता, आत्माश्रय से ही प्रगटे।
भव-भव के दुखदायी बंधन, स्वाश्रय से क्षण में विघटे॥
आत्मध्यान ही उत्तम औषधि, भव का रोग मिटाने को।
आत्मध्यान ही एक मात्र साधन है, शिवसुख पाने को।
झूठे अहंकार को छोड़ो, शुद्धातम की करो विनय॥९॥

रुचि न लगे यदि कहीं तुम्हारी, एक बार निज को देखो।
खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु से निज महिमा को देखो॥
भ्रांति मिटेगी, शांति मिलेगी, सहज प्रतीति आयेगी।
समाधान निज में ही होगा, आकुलता मिट जायेगी॥
चूक न जाना स्वर्णिम अवसर, करो निजातम का निश्चय॥१०॥

समाधिमरण पाठ

सहज समाधिस्वरूप सु ध्याऊँ, ध्रुव ज्ञायक प्रभु अपना।
सहज ही भाऊँ सहज ही ध्याऊँ, ध्रुव ज्ञायक प्रभु अपना॥१॥

आधि व्याधि उपाधि रहित हूँ, नित्य निरंजन ज्ञायक।
जन्म मरण से रहित अनादिनिधन ज्ञानमय ज्ञायक॥२॥

भावकलंक[१] से भ्रमता भव-भव, क्षण नहीं साता आयी।
पहिचाने बिन निज ज्ञायक को, असह्य वेदना पायी॥३॥

मिला भाग्य से श्री जिनधर्म, सुतत्त्व ज्ञान उपजाया।
देहादिक से भिन्न ज्ञानमय, ज्ञायक प्रत्यक्ष दिखाया॥४॥

१. मोह-राग-द्वेष

कर्मादिक सब पुद्गल भासे, मिथ्या मोह नशाया।
धन्य-धन्य कृतकृत्य हुआ, प्रभु जाननहार जनाया॥५॥

उपजे-विनसे जो यह परिणति, स्वांग समान दिखावे।
हुआ सहज माध्यस्थ भाव, नहीं हर्ष विषाद उपजावे॥६॥

स्वयं, स्वयं में तृप्त सदा ही, चित्स्वरूप विलसाऊँ।
हानि-वृद्धि नहीं होय कदाचित्, ज्ञायक सहज रहाऊँ॥७॥

पूर्ण स्वयं मैं स्वयं प्रभु हूँ, पर की नहीं अपेक्षा।
शक्ति अनन्त सदैव उछलती, परिणमती निरपेक्षा॥८॥

अक्षय स्वयं सिद्ध परमातम, मंगलमय अविकारी।
स्वानुभूति विलसे अन्तर में, भागें भाव विकारी॥९॥

निरुपम ज्ञानानन्दमय जीवन, स्वाश्रय से प्रगटाया।
इन्द्रिय विषय असार दिखे, आनन्द स्वयं में पाया॥१०॥

नहीं प्रयोजन रहा शेष कुछ, देह रहे या जावे।
भिन्न सर्वथा दिखे अभी ही, नहीं अपनत्व दिखावे॥११॥

द्रव्यप्राण तो पुद्गलमय हैं, मुझसे अति ही न्यारे।
शाश्वत चैतन्यमय अन्तर में, भावप्राण सुखकारे॥१२॥

उनही से ध्रुव जीवन मेरा, नाश कभी नहिं होवे।
अहो महोत्सव के अवसर में, कौन मूढ़जन रोवे?॥१३॥

खेद न किञ्चित् मन में मेरे, निर्ममता हितकारी।
ज्ञाता-द्रष्टा रहूँ सहज ही, भाव हुए अविकारी॥१४॥

आनन्द मेरे उर न समावे, निर्ग्रन्थ रूप सु धारूँ।
तोरि सकल जगद्वन्द्व-फन्द, निज ज्ञायकभाव सम्हारूँ॥१५॥

धन्य सुकौशल आदि मुनीश्वर हैं, आदर्श हमारे।
हो उपसर्गजयी समता से, कर्मशत्रु निरवारे॥१६॥

ज्ञानशरीरी अशरीरी प्रभु शाश्वत् शिव में राजें।
भावसहित तिनके सुमरण तैं, भव-भव के अघ भाजें॥१७॥

उन समान ही निजपद ध्याऊँ, जाननहार रहाऊँ।
काल अनन्त रहूँ आनन्द में, निज में ही रम जाऊँ॥१८॥

क्षणभंगुरता पर्यायों की, लखकर मोह निवारो।
अरे! जगतजन द्रव्यदृष्टि धर, अपना रूप सम्हारो॥१९॥

क्षमाभाव है सबके ही प्रति, सावधान हूँ निज में।
पाने योग्य स्वयं में पाया, सहज तृप्त हूँ निज में॥२०॥

साम्यभाव धरि कर्म विडारूँ, अपने गुण प्रगटाऊँ॥
अनुपम शाश्वत प्रभुता पाऊँ, आवागमन मिटाऊँ॥२१॥

(दोहा)

शान्त हुआ कृतकृत्य हुआ, निर्विकल्प निज माँहिं।
तिष्ठूँ परमानन्दमय, अविनाशी शिव माँहिं ॥२२॥

बारह भावना

(दोहा)

निज स्वभाव की दृष्टि धर, बारह भावन भाय।
माता है वैराग्य की, चिन्तत सुख प्रकटाय॥

अनित्य भावना

मैं आत्मा नित्य स्वभावी हूँ, ना क्षणिक पदार्थों से नाता।
संयोग शरीर कर्म रागादिक, क्षणभंगुर जानो भ्राता॥
इनका विश्वास नहीं चेतन, अब तो निज की पहिचान करो।
निज ध्रुव स्वभाव के आश्रय से ही, जन्मजरामृत रोग हरो॥

अशरण भावना

जो पाप बन्ध के हैं निमित्त, वे लौकिक जन तो शरण नहीं।
पर सच्चे देव-शास्त्र-गुरु भी, अवलम्बन हैं व्यवहार सही॥

निश्चय से वे भी भिन्न अहो ! उन सम निज लक्ष्य करो आत्मन्।
निज शाश्वत ज्ञायक ध्रुव स्वभाव ही, एक मात्र है अवलम्बन॥

संसार भावना

ये बाह्य लोक संसार नहीं, ये तो मुझ सम सत् द्रव्य अरे।
नहिं किसी ने मुझको दुःख दिया, नहिं कोई मुझको सुखी करे॥
निज मोह राग अरु द्वेष भाव से, दुख अनुभूति की अबतक।
अतएव भाव संसार तजूँ, अरु भोगूँ सच्चा सुख अविचल॥

एकत्व भावना

मैं एक शुद्ध निर्मल अखण्ड, पर से न हुआ एकत्व कभी।
जिनको निज मान लिया मैंने, वे भी तो पर प्रत्यक्ष सभी॥
नहीं स्व-स्वामी सम्बन्ध बने, माना वह भूल रही मेरी।
निज में एकत्व मान कर के, अब मेटूँगा भव-भव फेरी॥

अन्यत्व भावना

जो भिन्न चतुष्टय वाले हैं, अत्यन्ताभाव सदा उनमें।
गुण पर्यय में अन्यत्व अरे, प्रदेशभेद नहिं है जिनमें॥
इस सम्बन्धी विपरीत मान्यता से, संसार बढ़ाया है।
निज तत्त्व समझ में आने से, समरस निज में ही पाया है॥

अशुचि भावना

है ज्ञानदेह पावन मेरी, जड़देह राग के योग्य नहीं।
यह तो मलमय मल से उपजी, मल तो सुखदायी कभी नहीं॥
भो आत्मन् श्री गुरु ने, रागादिक को अशुचि अपवित्र कहा।
अब इनसे भिन्न परम पावन, निज ज्ञानस्वरूप निहार अहा॥

आस्रव भावना

मिथ्यात्व कषाय योग द्वारा, कर्मों को नित्य बुलाया है।
शुभ-अशुभभाव क्रिया द्वारा, नित दुख का जाल बिछाया है॥
पिछले कर्मोदय में जुड़कर, कर्मों को ही छोड़ा बाँधा।
ना ज्ञाता-दृष्टा मात्र रहा, अब तक शिवमार्ग नहीं साधा॥

संवर भावना

मिथ्यात्व अभी सत् श्रद्धा से, व्रत से अविरति का नाश करूँ।
मैं सावधान निज में रहकर, निःकषाय भाव उद्योत करूँ॥
शुभ-अशुभ योग से भिन्न, आत्म में निष्कम्पित हो जाऊँगा।
संवरमय ज्ञायक आश्रय कर, नव कर्म नहीं अपनाऊँगा॥

निर्जरा भावना

नव आस्रव पूर्वक कर्म तजे, इससे बन्धन न नष्ट हुआ।
अब कर्मोदय को ना देखूँ, ज्ञानी से यही विवेक मिला॥
इच्छा उत्पन्न नहीं होवें, बस कर्म स्वयं झड़ जावेंगे।
जब किंचित् नहीं विभाव रहें, गुण स्वयं प्रगट हो जावेंगे॥

लोक भावना

परिवर्तन पंच अनेक किये, सम्पूर्ण लोक में भ्रमण किया।
ना कोई क्षेत्र रहा ऐसा, जिस पर ना हमने जन्म लिया॥
नरकों स्वर्गों में घूम चुका, अतएव आश सबकी छोड़ूँ।
लोकाग्र शिखर पर थिर होऊँ, बस निज में ही निज को जोड़ूँ॥

बोधिदुर्लभ भावना

सामग्री सभी सुलभ जग में, बहुबार मिली छूटी मुझसे।
कल्याणमूल रत्नत्रय परिणति, अब तक दूर रही मुझसे॥
इसलिए न सुख का लेश मिला, पर में चिरकाल गँवाया है।
सद्बोधिहेतु पुरुषार्थ करूँ, अब उत्तम अवसर पाया है॥

धर्म भावना

शुभ-अशुभ कषायों रहित होय, सम्यक्चारित्र प्रगटाऊँगा।
बस निज स्वभाव साधन द्वारा, निर्मल अनर्घ्यपद पाऊँगा॥
माला तो बहुत जपी अबतक, अब निज में निज का ध्यान धरूँ।
कारण परमात्मा अब भी हूँ, पर्यय में प्रभुता प्रकट करूँ॥

(दोहा)

ध्रुव स्वभाव सुखरूप है, उसको ध्याऊँ आज।
दुखमय राग विनष्ट हो, पाऊँ सिद्ध समाज॥

बारह भावना

(दोहा)

ज्ञानमात्र शाश्वत प्रभो, समयसार अविकार।
जनम-मरण जामें नहीं, निर्भय तत्त्व विचार ॥१॥

जग में कोई नहीं शरण, सोच तजो दुखकार।
चिन्मय ध्रुव निज शरण ले, जावे भव से पार ॥२॥

कहूँ न सुख संसार में, आतम सुख की खान।
निज आतम में लीन हो, भोगो सुख अमलान ॥३॥

उपजे विनशे परिणति, आतम है ध्रुव रूप।
विलसे प्रतिक्षण एक सम, यह एकत्व स्वरूप ॥४॥

जहाँ न भेद विकल्प है, पर्यायें भी भिन्न।
कर्मादिक में मोहकर, तू क्यों होवे खिन्न ॥५॥

अशुचि देह सों ममत तज, पावन आतम जान।
निज स्वभाव साधन करे, पहुँचे शिवपुर थान ॥६॥

(सोरठा)

सत्गुरु रहे जगाय, मूढ़ जीव तोहू न जगे।
करे नहीं पुरुषार्थ, दोष देय नित कर्म को ॥७॥

ज्ञान सूर्य के जोर, ज्ञानी जन जागे सदा।
जिनका ओर न छोर, शक्ति अनन्तों उछलती ॥८॥

(दोहा)

निज चैतन्य प्रकाश में, कर्म दिखे अति दूर।
शुद्ध परिणति में रहे, बहता समता नीर ॥९॥

अतीन्द्रिय की शरण ही, इन्द्रिय जय कहलाय।
व्रत समिति गुप्ति सभी, साम्यभाव पर्याय ॥१०॥

आलोकित निज लोक हो, लोकालोक दिखाय।
तब लोकान्त सुथिर बने, चहुँगति भ्रमण मिटाय ॥११॥

धन-कन-कंचन राजसुख, पराधीन सब जान।
सहज प्राप्त स्वाधीन नित, सुखमय आतमज्ञान ॥१२॥

आत्मस्वभाव ही धर्म है, सम्यग्दर्शन मूल।
बाहर में क्यों ढूढ़ते, निजस्वभाव को भूल ॥

निर्ग्रन्थ भाव स्तवन

पर से अति निरपेक्ष है, प्रभुता अपरम्पार।
अहो अकिंचननाथ को, वंदन अगणित बार ॥

(रोला)

तजा अनादि मोह सजा निजपद अविकारी,
समयसारमय हुए सहज चैतन्य विहारी।
परम इष्ट ज्ञायक स्वभाव में तृप्त हुए थे,
वीतराग-विज्ञान रूप परिणमित हुए थे ॥१॥

कुछ अनिष्ट नहीं दिखा कल्पना मिथ्या छूटी,
क्रोध भाव की संतति भी फिर सहजहि टूटी।
हीनाधिक नहीं दिखें सभी भगवान दिखावें,
अरे मान के भाव सहज ही नहिं उपजावें ॥२॥

पूर्ण सिद्ध सम आतम जब दृष्टि में आया,
गुप्त पापमय माया का तब भाव नशाया।
छल प्रपंच सब भगे सरलता हुई संगिनी,
मुक्ति-मार्ग में यही परिणति स्व-पर नंदनी ॥३॥

अक्षय आत्मविभव पाया तब लोभ नशाया,
अनंत चतुष्टय सहजपने प्रभुवर प्रगटाया।

परम पवित्र हुए निर्दोष निरामय स्वामी,
अहो पतित-पावन कहलाते त्रिभुवन नामी॥४॥

सहजसुखी हो प्रभो हास्य का काम नहीं है,
निज में ही संतुष्ट न रति का नाम कहीं है।
निजानन्द में नहीं अरति या खेद सु आवे,
होवे नहीं वियोग शोक फिर क्यों उपजावे॥५॥

लौकिक जन ही अरे हास्य में समय गँवावें,
रत होवें सुख मान अरति कर फिर दुख पावें।
अहो निशंकित आप स्वयं में निर्भय रहते,
करें आपका जाप सर्व भय उनके भगते॥६॥

निर्मल आत्मस्वभाव ज्ञान भी निर्मल रहता,
लोकालोक विलोक जुगुप्सा कहीं न लहता।
फैली धर्म सुवास वासना दूर भगावें,
स्त्री पुरुष नपुंसक वेद नहीं उपजावें॥७॥

परम ब्रह्ममय मंगलचर्या प्रभो आपकी,
नहीं वेदना होवे किंचित् त्रिविध ताप की।
भान हुआ जब निज स्वभाव का मूर्छा टूटी,
बाह्य परिग्रह की वृत्ति भी सहजहि छूटी॥८॥

पर केवल पर दिखे ग्रहण का भाव न आया,
निस्पृह निज में तृप्त अलौकिक है प्रभु माया।
चेतन मिश्र अचेतन परिग्रह सब ठुकराया,
हुए अकिंचन आप पंथ निर्ग्रन्थ सुभाया॥९॥

शुद्ध जीवास्तिकाय अलौकिक महल आपका,
सहज ज्ञान साम्राज्य प्रगट है विभो आपका।

नित्य शुद्ध सम्पदा खान है अन्तर माँहीं,
पर से कुछ भी कभी प्रयोजन दीखे नाहीं॥१०॥

स्वानुभूति रमणी है नित ही तृप्ति प्रदायी,
ध्रुवस्वभाव ही सिंहासन है आनन्ददायी।
निरावरण निर्लेप अनाहारी हो स्वामी,
अनुभव-अमृत भोजी नित्य निराकुल नामी॥११॥

अहो आप सम आप कहाँ तक महिमा गाऊँ,
यही भावना सहज अकिंचन पद प्रगटाऊँ।
चरणों में है भक्ति भाव से नमन जिनेश्वर,
निज प्रभुता में मग्न रहूँ तुम सम परमेश्वर॥१२॥

(दोहा)

जग से आप उदास हो, जगत आपका दास।
यही भावना है प्रभो ! रहूँ आपके पास॥

निर्ग्रन्थ भावना

निर्ग्रन्थता की भावना अब हो सफल मेरी।
बीते अहो आराधना में हर घड़ी मेरी॥टेक.......॥

करके विराधन तत्त्व का, बहु दुःख उठाया।
आराधना का यह समय, अतिपुण्य से पाया॥
मिथ्या प्रपंचों में उलझ अब, क्यों करूँ देरी ? निर्ग्रन्थता...॥

जब से लिया चैतन्य के, आनन्द का आस्वाद।
रमणीक भोग भी लगें, मुझको सभी निःस्वाद॥
ध्रुवधाम की ही ओर दौड़े, परिणति मेरी॥ निर्ग्रन्थता...

पर में नहीं कर्त्तव्य मुझको, भासता कुछ भी।
अधिकार भी दीखे नहीं, जग में अरे कुछ भी॥
निज अंतरंग में ही दिखे, प्रभुता मुझे मेरी॥ निर्ग्रन्थता...

क्षण-क्षण कषायों के प्रसंग, ही बनें जहाँ।
मोही जनों के संग में, सुख शान्ति हो कहाँ॥
जग-संगति से तो बढ़े, दुखमय भ्रमण फेरी॥ निर्ग्रन्थता...

अब तो रहूँ निर्जन वनों में, गुरुजनों के संग।
शुद्धात्मा के ध्यानमय हो, परिणति असंग॥
निजभाव में ही लीन हो, मेटूँ जगत-फेरी॥ निर्ग्रन्थता...

कोई अपेक्षा हो नहीं, निर्द्वन्द्व हो जीवन।
संतुष्ट निज में ही रहूँ, नित आप सम भगवन्॥
हो आप सम निर्मुक्त, मंगलमय दशा मेरी॥ निर्ग्रन्थता...

अब तो सहा जाता नहीं, बोझा परिग्रह का।
विग्रह[१] का मूल लगता है, विकल्प विग्रह[२] का॥
स्वाधीन स्वाभाविक सहज हो, परिणति मेरी॥ निर्ग्रन्थता...

षोडश कारण विंशतिका

भावना सहज होय स्वामी, भावना सहज होय स्वामी।
स्वयं स्वयं में मग्न रहूँ, तुम-सम त्रिभुवन नामी॥

नहीं स्वप्न में भी अपना, परमाणुमात्र भासे,
सदा सहज अनुभूतिरूप, आतम ही प्रतिभासे।
एक शुद्ध ज्ञायक स्वरूप परमानन्दमय आतम,
स्वयंसिद्ध शाश्वत परमातम जाना शुद्धातम॥१॥

निरतिचार निर्मल सम्यग्दर्शन वर्ते सुखमय,
निजस्वभाव में सहज निशंकित निर्वांछक निर्भय।
ज्ञेयमात्र ही रहें ज्ञेय, नहीं ग्लानि उपजावे,
तत्त्वदृष्टि हो उपगूहन जीवन में बर्तावे॥२॥

१. क्लेश, २. शरीर

चित्त-चंचलता मिटे स्वयं में ही थिरता पाऊँ,
वात्सल्य से आतम ही उत्कृष्टपने भाऊँ।
भेदज्ञान हो मद नहीं उपजे महाक्लेश कारी,
दैन्य और अभिमान रहित हो जीवन हितकारी॥३॥

तीन मूढ़ता षट् अनायतन नहिं आयें मन में,
प्रभु निर्मूढ़ प्रवृत्ति होवे, चिदानन्द घन में।
नहीं वृत्ति हो लोकनिंद्य या धर्मनिंद्य प्रभुवर,
धर्मप्रभावक मंगलदायक हो वृत्ति जिनवर॥४॥

विनयवंत भगवंत कहावें, नहीं पर माँहिं झुकें,
वे ही हैं आदर्श जगत में सब दुख द्वन्द्व मिटें।
अविनय नहीं हो पाय किसी की, विनय योग्य होवे,
आत्मविनतता रूप विनय निश्चय सब दुख खोवे॥५॥

दृष्टा-ज्ञाता रहूँ शील अंतर में प्रगटावे,
भोगूँ निजानन्दरस अविरल नहिं विकल्प आवे।
अपनी मर्यादा में रहकर ध्रुव प्रभुता पाऊँ,
ब्रह्मचर्य की होय पूर्णता निजपद प्रगटाऊँ॥६॥

भेदज्ञान की रहे भावना तब तक हे स्वामी,
ज्ञान-ज्ञान में होय प्रतिष्ठित शाश्वत सुखदानी।
हो अविच्छिन्न ज्ञानानुभूति दुर्वार मोह नाशे,
शुद्ध चेतना का प्रकाश स्वाभाविक परकाशे॥७॥

रहा नहीं उत्साह शेष किंचित् पर-भावन में,
हौंस जगी है एक मात्र निज शिवपद साधन में।
सब संसार असार दुःखमय दुःखों का कारण,
धन्य घड़ी आतम आराधूँ, कर मुनिपद धारण॥८॥

अपनी शक्ति अपने में ही सहज प्रत्यक्ष दिखी,
वैभाविक परिणति अति दुःखमय सहजपने छूटी।
जीवन का क्षण-क्षण सार्थक हो धर्माराधन में,
सर्व समर्पण हो जावे जिनधर्म प्रभावन में॥९॥

समझ न पाया व्यर्थहि चिर से पर में भरमाया,
धन्य हुआ अपने में ही विश्राम सहज पाया।
चाह नहीं कुछ शेष नाथ, निज में ही रम जाऊँ,
कर्म जलाऊँ तप-अग्नि में मुक्त दशा पाऊँ॥१०॥

सहयोगी होऊँ समाधि में साधु साधकों की,
रही नहीं परवाह प्रभो अब मुझे बाधकों की।
अखण्ड ज्ञानमय सहज भावना रूप समाधि को,
आनन्दपूर्वक धारण करके तजूँ उपाधि को॥११॥

ज्ञानी गुरुओं की सेवा में ही तत्पर निशि-दिन,
उन-सम ही वैराग्य बढ़ाऊँ मैं अपना क्षण-क्षण।
शुद्धातम की सेवा करते खेद नहीं पाऊँ,
हर्ष सहित धारूँ रत्नत्रय भव से तिर जाऊँ॥१२॥

धर्म पिता अरहंत जिनेश्वर साँची भक्ति करूँ,
झूठे विषय-कषाय त्याग कर क्षण-क्षण ध्यान धरूँ।
स्वानूभूति ही निश्चय भक्ति द्वैत विकल्प नहीं,
संकट-त्राता शिवसुख-दाता जाना सार यहीं॥१३॥

अहो संघनायक आचारज विज्ञानी-ध्यानी,
स्वयं आचरण करें-करायें सबको शिवदानी।
उनकी चरण शरण से हो निर्दोष चरण सुखमय,
बढ़ती जावे वीतरागता पाऊँ पद अक्षय॥१४॥

उपाध्याय गुरु पढ़ें-पढ़ावें संघ में जिनवाणी,
अनेकान्तमय तत्त्व-प्रकाशें मोह-तिमिर हानी।
तज एकान्त-पक्ष दुःखमय पक्षातिक्रान्त पावें,
फैले धर्म अहिंसा जग में आनन्द विलसावें॥१५॥

मंगलदायक श्री जिन-प्रवचन नित जग में गूँजें,
तत्त्वभावना के प्रसाद से सर्व पाप धूजें।
समयसार ही जिन-प्रवचन का सार सहज पाया,
ज्ञायक की ज्ञायकता लख परमानन्द विलसाया॥१६॥

यथायोग्य हों षट्-आवश्यक पापों का हारक,
किन्तु अवश का कर्म ज्ञानमय निश्चय आवश्यक।
निर्विकल्प आनन्दरूप मैं उपादेय जाना,
रागादिक से भिन्न अहो मेरा चेतन वाना॥१७॥

नित प्रभावना योग्य आत्मा भाऊँ अन्तर में,
ज्ञान, दान, व्रत, संयम, पूजा से हो बाहर में।
जैनधर्म की नित प्रभावना दिन दूनी स्वामी,
लहें भव्य सन्मार्ग अहो मंगलमय अभिरामी॥१८॥

शुद्धातम ही तीर्थ है शाश्वत सब जग पहिचानें,
आत्मज्ञान प्रगटाकर सब ही मोह-तिमिर हानें।
सम्यग्चारित्र धारण करके अक्षय सुख पावें,
कर्म नशावें शिवपद पावें नहीं भव भरमावें॥१९॥

ये ही भावना सोलह कारण ज्ञानी को होवें,
वे बिन चाहे तीर्थंकर हो जग के दुःख खोवें।
धर्मतीर्थ प्रगटावें जिसमें भवि स्नान करें,
आप तरें औरन को तारें शिव साम्राज्य लहें॥२०॥

धन्य हुआ जिनशासन पाया आत्मरुचि लागी,
परभावों से भिन्न स्वाभाविक निज महिमा जागी।
स्वर्णिम अवसर मिला व्यर्थ नहीं पर में भरमाऊँ,
तोड़ सकल जगद्वन्द्व-फंद निज शुद्धातम ध्याऊँ॥२१॥

दशधर्म द्वादशी

अहो दशलक्षण धर्म महान, अहो दशलक्षण धर्म महान।
धर्म नहीं दशरूप एक, वीतराग-भावमय जान।
सम्यग्दर्शन सहित परम आनन्दमय उत्तम मान॥टेक॥

तत्त्वदृष्टि से देखें जग में इष्ट-अनिष्ट न कोई,
सुख-दुख-दाता-मित्र-शत्रु की व्यर्थ कल्पना खोई।
स्वयं-स्वयं में सहज प्रगट हो क्षमाभाव अम्लान॥अहो...॥

जो दीखे सब ही क्षणभंगुर किसका मान करे,
पल में छोड़ हमें चल देता अपना जिसे कहे।
ज्ञानमात्र आतम-अनुभवमय प्रगटे मार्दव आन॥अहो...॥

कौन किसे ठगता इस जग में अरे स्वयं ठग जाय,
पर्ययमूढ़ हुआ मूरख विषयों में काल गँवाय।
भेदज्ञान कर अंतरंग में हो आर्जव सुखखान॥अहो...॥

अशुचिरूप मिथ्यात्व कषायें तज, विवेक उर लावें,
व्यसन, पाप, अन्याय, अभक्ष को त्याग पात्रता पावें।
परमशुद्ध आतम-अनुभव ही शौचधर्म पहिचान॥अहो...॥

गर्हित निंद्य और हिंसामय भाव वचन परिहार,
परम सत्य ध्रुव ज्ञायक जानो अभूतार्थ व्यवहार।
ज्ञायकमय अनुभूति लीनता सत्यधर्म अभिराम॥अहो...॥

अहो अतीन्द्रिय शुद्धातम सुख ज्ञान अतीन्द्रिय जान,
इन्द्रिय विषय-कषायें जीतो हो हिंसा की हानि।
आत्मलीनतामय संयम से ही पावें शिवधाम॥
अहो दशलक्षण धर्म महान, अहो दशलक्षण धर्म महान॥

अनशनादि बहिरंग प्रायश्चित आदि अंतरंग जान,
निजस्वरूप में विश्रान्ति इच्छानिरोध तप मान।
तप अग्नि प्रज्वलित होय तब जले कर्म दुःखखान॥अहो...॥

सर्प काँचली मात्र तजे से ज्यों निर्विष नहीं होय।
केवल बाह्य-त्याग से त्यों ही सुख शान्ति नहीं होय॥
मिथ्या राग-द्वेष को त्यागें शुद्धभावमय दान॥अहो...॥

नहिं परमाणु मात्र भी अपना, सम्यक् श्रद्धा लावें,
मूर्च्छा भाव परिग्रह दुःखमय तज शाश्वत सुख पावें।
स्वयं-स्वयं में पूर्ण अनुभवन आकिंचन अम्लान॥अहो...॥

ब्रह्मस्वरूप सहज आनन्दमय अकृत्रिम भगवान,
दूर रहे जहँ पुण्य-पापमय भाव कुशीली म्लान।
ब्रह्मभावमय मंगलचर्या ब्रह्मचर्य सुखखान॥अहो...॥

धर्मी शुद्धातम को जाने बिना धर्म नहीं होय,
अरे अटक कर विषय-कषायों में मत अवसर खोय।
कोटि उपाय बनाय भव्य अब करले आतमज्ञान॥अहो...॥

भावें नित वैराग्य भावना धरें भेद-विज्ञान,
त्याग अडम्बर होय दिगम्बर ठानें निर्मल ध्यान।
धर्ममयी श्रेणी चढ़ जावें बनें सिद्ध भगवान॥अहो...॥

असंयमित जीवन बिना ब्रेक की गाड़ी के समान है।

बाईस परीषह

(चौपाई)

विषयारम्भ परिग्रह त्यागी, ज्ञान-ध्यान में परिणति पागी।
वे मुनिवर सबको सुखदाई, परिषहजय की करूँ बड़ाई॥

१. क्षुधा परीषह

भूख लगे आहार न पाय, अनाहारी चिद्रूप लखाय।
ज्ञानामृत भोजी मुनिराय, सहें परीषह शिवसुखदाय॥

२. तृषा परीषह

तृषा सतावे कोपे पित्त, नहीं दीनता लावें चित्त।
भेदज्ञान करते मुनिराय, समता रस से तृप्त रहाय॥

३. शीत परीषह

अस्पर्शी ज्ञायक भगवान, ध्यावें साधु परम सुखदान।
शीत परीषह से नहीं डरें, निरावरण निर्भय नित रहें॥

४. उष्ण परीषह

रहते आत्म गुफा के माँहिं, मोह ताप जिनके उर नाहिं।
सहज शान्त समता के धनी, उष्ण परीषह जीतें मुनी॥

५. डंसमशक परीषह

डंसमशक जब तन में लगें, ज्ञानरूप में मुनिवर पगें।
बहे ज्ञानधारा उर माँहिं, परीषह में उपयोग सु नाहिं॥

६. नग्न परीषह

निर्विकार शोभे परिणाम, यथाजात तनरूप ललाम।
ध्यावें अपने को अशरीर, नग्न परीषह जीतें वीर॥

७. अरति परीषह

पापोदय का कार्य विचार, वर्ते सहजहि जाननहार।
अरति तजैं संयम दृढ़ रहैं, ते मुनि कर्म कालिमा दहैं॥

८. स्त्री परीषह

स्वानुभूति रमणी में तृप्त, करे न नारी चित संतप्त।
ब्रह्मचर्य से चिगें न लेश, परमधीर मुनिवर जगतेश॥

९. चर्या परीषह

अनियत वासी करैं विहार, ईर्या समिति सहित अविकार।
चर्या परीषह सों नहिं डरें, मुक्ति मार्ग जग में विस्तरें॥

१०. आसन परीषह

अंतर समता से नहिं चिगें, बाहर आसन से नहिं डिगें।
धनि मर्यादा पालन-हार, धर्मतीर्थ विस्तारन-हार॥

११. शयन परीषह

भूमि काष्ठ पाषाण पै सोवें, सावधान नहिं गाफिल होवें।
निद्रा अल्प न करवट फेरें, अन्तर्मुख हो निजपद हेरें॥

१२. आक्रोश परीषह

सुन दुर्वचन क्षमा उर लावें, ज्ञानी मुनि आक्रोश न आवें।
धन्य-धन्य सबके उपकारी, वन्दनीय चैतन्य-विहारी॥

१३. बध-बंधन परीषह

पापोदय में कोई मारे, बांधे अग्नि में परजारे।
तहाँ तपोधन क्षोभ न करते, ध्यान विपाकविचय वे करते॥

१४. याचना परीषह

निज में ही संतुष्ट यतीश्वर, पर की चाह न करते गुरुवर।
नहीं औषधि भी वे याचें, परम विरक्त शान्त रस राचें॥

१५. अलाभ परीषह

पर से लाभ न हानि मानें, सहज पूर्ण प्रभुता पहिचानें।
पर-अलाभ प्रति सहज उपेक्षा, भावें वे द्वादश अनुप्रेक्षा॥

१६. रोग परीषह

रोगादिक देहाश्रित जानें, कायर होकर दुःख नहिं मानें।
तप से कर्म निर्जरित करते, क्लेश जगत के भी वे हरते॥

१७. तृणस्पर्श परीषह

काँटे आदि पैर में लगते, उड़कर, आँखों में भी चुभते।
फिर भी पर-सहाय नहीं चाहें, सहज ज्ञानसिन्धु अवगाहें॥

१८. मल परीषह

आजीवन स्नान न करते, मलिन देह को भिन्न सु लखते।
निर्मल आतम सदा निहारें, निर्मल सहज परिणति धारें॥

१९. सत्कार-पुरस्कार परीषह

नहीं सत्कार चाहें मुनि-ज्ञानी, निजपर रीति भिन्न पहिचानी।
तिरस्कार नहिं करें किसी का, प्रभुतारूप लखें सबही का॥

२०. प्रज्ञा परीषह

ज्ञान विशिष्ट उग्र तप धारें, वादी देख हार स्वीकारें।
महाविनय मुनि तदपि सु धारें, निजरत्नत्रय निधि विस्तारें॥

२१. अज्ञान परीषह

जब क्षयोपशम मंद जु होवे, शक्ति ज्ञान विशेष न होवे।
भेदज्ञान से सुतप बढ़ावें, सहज पूर्ण शुद्धातम ध्यावें॥

२२. अदर्शन परीषह

जो ऋद्धि अतिशय नहीं होवें, तो भी निजश्रद्धा नहीं खोवें।
तत्त्व विचार सहज ही करते, शुद्ध स्वरूप चित्त में धरते॥
ऐसे मुनिवर को शिर नावें, साक्षात् दर्शन कब पावें।
यही भाव मन माँहीं आवें, धनि निर्ग्रन्थ दशा प्रगटावें॥
विषयों की अब नहीं कामना, शाश्वत पद की करूँ साधना।
निजानन्द में तृप्त रहूँ मैं, अक्षय प्रभुता प्रगट करूँ मैं॥

वैराग्य द्वादशी

ध्याऊँ परम आनन्दमय, चैतन्य प्रभु अम्लान।
एक ही है शरण जग में हुआ अब श्रद्धान॥
नित्य अविकारी प्रभु पक्षातिक्रान्त निहार।
कह सकूँ नहीं हुआ मोहि आनन्द अपरम्पार॥टेक॥

देवदर्शन का अलौकिक फल मिला सुखकार।
ज्ञान में प्रत्यक्ष जनावे सहज जाननहार॥
उछलती हैं शक्तियाँ चैतन्य माँहिं अपार॥ कह सकूँ नहीं....॥

भ्रान्तिवश भ्रमता रहा परमाँहिं सुख विचार।
जाना-देखा नहीं शुद्धात्मा, आनन्द का भण्डार॥
धनि मिली प्रभु देशना, पाया समय का सार॥कह सकूँ नहीं....॥

चाह नहीं चिंता नहीं, परिपूर्ण तत्त्व दिखाय।
अतीन्द्रिय स्वाधीन सुखसागर सहज लहराय॥
अविरल निमग्न रहूँ अहो, दीखे नहीं संसार॥ कह सकूँ नहीं....॥

आत्मीक वैभव अलौकिक दिखे अखय अनन्त।
जयवन्त होवे स्वानुभूति सत्य मुक्तिपंथ॥
स्वानुभव में ही दिखे शिवरूप मंगलकार॥ कह सकूँ नहीं....॥

ज्ञानमय निज स्वाद पाया और कुछ न सुहाय।
संकल्प और विकल्प मिथ्या लगे सब दुखदाय॥
प्रगट हो निर्ग्रन्थ पद आनन्दमय अविकार॥ कह सकूँ नहीं....॥

वन माँहिं नित निर्विघ्न, आराधूँ सहज परमात्म।
स्वप्न में भी ध्यान में वर्ते अहो शुद्धात्म॥
खिन्नता किंचित् न हो गर मिले नहीं आहार॥ कह सकूँ नहीं....॥

सहज समताभाव हो ज्ञाता रहूँ निरपेक्ष।
देवांगनाएँ भी न चित्त में कर सकें विक्षेप॥
निर्दोष ज्ञान-विरागमय चर्या हो निरतिचार॥ कह सकूँ नहीं....॥

रंचमात्र न पापमय होवे प्रवृत्ति कदापि।
पदयोग्य हों शुभ भाव भी उनसे विरक्ति तथापि॥
शुद्धोपयोगी सहज परिणति होय मंगलकार॥ कह सकूँ नहीं....॥

सातिशय अप्रमत्त सप्तम अधःकरण निवार।
हो अपूर्वकरण तथा अनिवृत्तिकरण सुखकार॥
सूक्ष्मलोभ भी नष्ट हो वीतरागता अविकार॥ कह सकूँ नहीं....॥

नशि जाय त्रेसठ प्रकृति हो अरहंत पद अविकार।
तीर्थ का होवे प्रवर्तन, जगत में सुखकार॥
पुनि घाति शेष अघातिया हो लहूँ शिवपद सार॥ कह सकूँ नहीं....॥

नहीं अपेक्षा अब किसी की सहज मिलि हैं योग।
सहज-जीवन सहज-साधन सहज-भाव मनोग॥
मुक्ति ही मानो मिली जब मिला जाननहार॥ कह सकूँ नहीं....॥

प्रभावना

जिनशासन की प्रभावना निर्दोष हो स्वामी।
रे अन्तर्मन की भावना निर्दोष हो स्वामी॥टेक॥

श्रद्धान हो सम्यक् सहज अभिप्राय निर्मल हो,
आराधनामय साधनामय भाव निश्छल हो।
जगख्याति पूजा लाभ की नहीं चाह हो स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

नहीं करके पक्ष निश्चय का स्वच्छन्द हो जीवन,
नहीं पक्षवश व्यवहार के हो ज्ञान-विराधन।
हो मैत्री ज्ञान-विराग की आनन्दमय स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

पक्षातिक्रान्त समयसार प्राप्त हो सबको,
चैतन्यमय शुद्धात्मा अनुभूत हो सबको।
अतीन्द्रिय ज्ञानानन्दमय परिणाम हो स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

परद्रव्यों में नहीं कल्पना अच्छे बुरे की हो,
पीवें अतीन्द्रिय ज्ञानरस जिनवर जितेन्द्रिय हो।
इन्द्रिय विषयों से हो विरक्ति स्वभाविक स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

समझें निमित्त अकिंचित्कर हो निरवलम्बी,
निरपेक्ष हों निश्चिंत हों निर्द्वन्द्व स्वस्थ भी।
नित ही रहें निज में ही निज से तृप्त हे स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

नहीं पुण्य-पाप के उदय में हर्ष-खेद हो,
अरि-मित्र निन्दा-स्तुति में कुछ न भेद हो।
हो मोह-क्षोभ-शून्य शुद्ध आचरण स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

नहीं जन्म जयन्ती में ही हम हो जावें मगन,
समझें स्वयं को स्वयं-सिद्ध अनादिनिधन।
निर्लिप्त उदासीन ज्ञातारूप हों स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

मोही जनों की ममता से नित सावधान हों,
धनि-धनि सिर ऊपर ज्ञानी गुरु विराजमान हों।
उनके अनुशासन में रहकर स्वतंत्र हों स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

अबद्धस्पृष्ट अनन्य नियत और असंयुक्त,
अविशेष देखें आत्मा होवें सहज ही मुक्त।
परमार्थ ही हो स्वार्थ, हो निस्वार्थ हे स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

सब जीव सिद्ध सम दिखें नहिं राग-द्वेष हो,
ज्ञेयों से भिन्न ज्ञायक की महिमा विशेष हो।
हो उपादेय आत्मा को आत्मा स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

जाने निज परमब्रह्म ब्रह्मरूप में रमे,
निर्दोष ब्रह्मचर्य हो दुर्वासना भगे।
आदर्श प्रेरणा स्वरूप हो चरण स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

होते जावें विज्ञानघन, रागादि क्षीण हों,
नहीं दीन हों स्वाधीन पर से उदासीन हों।
निकलंक हों निष्पाप हों निर्ग्रन्थ हों स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

एकाकी निर्भय निज में ही संतुष्ट रहेंगे,
शुद्धात्मा के ध्यान से सब कर्म भगेंगे।
प्रगटे सहज अक्षय परम प्रभुता अहो स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

रहकर भी मौन सहज मुक्ति मार्ग कहेंगे,
धनि-धनि अनुभूत मार्ग के प्रणेता बनेंगे।
होगी प्रभावना अहो परिपूर्ण हो स्वामी॥ रे अन्तर्मन...॥

स्वाधीन-मार्ग

स्वाधीनता का मार्ग तो निर्ग्रन्थ मार्ग है।
आराधना का मार्ग ही स्वाधीन मार्ग है॥टेक॥

स्वाधीनता पर से नहीं स्व से सदा आती।
निज में ही तृप्त परिणति स्वाधीन हो जाती॥
संतुष्ट है निज में अहो स्वाधीन है वह ही।
इच्छाओं के वशवर्ती भोगाधीन है वह ही॥
जो भोगों का है दास वह सब जग का दास है।
जो भोगों से उदास प्रभुता उसके पास है॥
भोगों से सुख की कल्पना संसारमार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

प्रभु वीतरागी का अहो स्वाधीन नाम है।
रागादि ही जिसके नहीं पर से क्या काम है ?

मुनिराज हैं स्वाधीन बाह्य साधन के बिना।
एकाकी जंगल में विचरते आकुलता बिना॥
देखो सुरक्षा का नहीं कुछ भी वहाँ साधन।
फिर भी निर्भय रह कर करें शुद्धातम आराधन॥
अस्त्रों-शस्त्रों का संग्रह तो भय का ही मार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

धन के बिना निर्धन अरे अधीन सा दीखे।
तृष्णा के वशवर्ती धनवान भी दुःखी दीखे॥
भोगों को पाने के लिए मूरख रहे रोता।
पर भोगों को पाकर भी कौन तृप्त है होता ?
ज्यों-ज्यों भोगे त्यों-त्यों तृष्णा ही बढ़ती है भाई।
अग्नि की ईंधन से तृप्ति किसने है कर पाई ?
निवृत्ति का ही मार्ग भवि स्वाधीन मार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

गोरखधन्धे की इक कड़ी को हाथ लगावे।
फिर सुलझाना मुश्किल उलझता चक्र ही जावे॥
त्यों ही समस्यायें अनन्त जीवन है थोड़ा।
सुलझाने की आकुलता में जीवन होवे पूरा॥
संक्लेश से मर कर अरे दुर्गति ही पाता है।
सारा विकल्प उसका देखो व्यर्थ जाता है॥
मुक्ति का मार्ग तो अरे अन्तर का मार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

जैसे वाँसों के वृक्षों से छाया नहीं मिलती।
स्त्री-पुत्रादिक से सुख की त्यों कल्पना झूठी॥
कितने खोजे देखो भौतिक विज्ञान ने साधन ?
पर हो सके उनसे कभी क्या शान्ति का वेदन ?
बाहर की दुनिया में नहीं भवि होड़ लगाओ।
समझो चेतो आराधना के मार्ग में आओ॥

जिनमार्ग ही कल्याण का सत्यार्थ मार्ग है।
स्वाधीनता का मार्ग तो निर्ग्रन्थ मार्ग है॥

आत्मन् ! निराशा अन्त में बाहर से मिलेगी।
पछताने पर भी यह घड़ी नहीं हाथ लगेगी॥
पुण्योदय भी क्षणभंगुर है मत लखकर ललचाओ।
पापोदय की प्रतिकूलताओं से न घबराओ॥
दुनिया की बातों में आकर नहीं चित्त भ्रमाना।
नित तत्त्वों के अभ्यास में ही मन को लगाना॥
नहीं विवाद का अहो निर्णय का मार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

है धैर्य ही अवलम्बन और धर्म सहायक।
संयोग तो कोई नहीं विश्वास के लायक॥
खुद ही विचारो सत्-असत् का ज्ञान तुम करो।
है सर्व समाधान कर्ता ज्ञान ही अहो॥
भवरोग की औषधि अरे विवेक मात्र है।
रे आत्मज्ञानी ही सहज मुक्ति का पात्र है॥
जितेन्द्रियता का मार्ग ही मुक्तिका मार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

पहले गये शिव जो उन्हें आदर्श बनाना।
निश्चिंतता के नाम पर परिग्रह न जुटाना॥
ध्रुवफण्ड नहिं ध्रुवदृष्टि ही आदेय तुम जानो।
निर्वांछकता सम्यक्त्वी साधक का सुगुण मानो॥
जीवराज का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करना।
इस मार्ग से ही एक दिन भवसिन्धु हो तरना॥
रत्नत्रय मार्ग ही अहो परमार्थ मार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

करके विराधन संयम का अति दुःख सहोगे।
संयम का साधन करके ही आनन्द लहोगे॥

आनन्द का अवसर मिला है चूक मत जाना।
रे स्वप्न में भी भोगों का कुछ भाव नहीं लाना॥
औदयिक भाव आ जावें तो प्रायश्चित करना।
डरना नहीं पुरुषार्थ से आगे सदा बढ़ना॥
निःशंकता से शोभित ध्रुव कल्याणमार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

कोई सहारा है नहीं यों सोच मत लाना।
चत्तारि शरणं पाठ पढ़ निज की शरण आना॥
निजभावना भाते हुए वैराग्य बढ़ाओ।
सर्वत्र सुन्दर एक की ही भावना भाओ॥
देखो अहो एकत्व ही है सत्य शिव सुन्दर।
प्रभु पंच भी देखो अहो इक आत्म के अन्दर॥
आत्मानुभव का मार्ग ही शिवपद का मार्ग है॥ स्वाधीनता...॥

अपूर्व कार्य करूँगा

नरभव मिला है, मैं अपूर्व कार्य करूँगा।
पाया जिनशासन, अब भव का अभाव करूँगा॥
है मेरा निश्चय, है सम्यक् निश्चय। नरभव..........॥१॥

मिथ्यात्व वश अनादि काल से ही रुल रहा।
गति-गति में खाते ठोकरें मैं अब तो थक गया॥
जिनदर्शन से निजदर्शन करके मोह तजूँगा। नरभव.....॥२॥

भव से रहित भगवान अंतर मांहिं दिखाया।
भगवान होने का सहज विश्वास जगाया॥
निज के आनंद से ही निज में तृप्त रहूँगा। नरभव............॥३॥

इन्द्रिय सुखों की कामना अब है नहीं मन में।
उपसर्गों की परवाह नहीं जाकर बसूँ वन में॥
निर्द्वन्द्व हूँ स्वभाव से निर्द्वन्द्व रहूँगा। नरभव...........॥४॥

देहादि से अति भिन्न हूँ न्यारा विभावों से।
गुण भेद से भी भिन्न हूँ न्यारा पर्यायों से।
स्वाधीन निर्भय एकाकी अतितृप्त रहूँगा।
नरभव मिला है, मैं अपूर्व कार्य करूँगा॥५॥

चैतन्य की अद्भुत शोभा ही भाई है मुझे।
अक्षय विभूति सिद्ध सम सुहाई है मुझे॥
झूठे प्रपंचों में फंस कर दुख अब न सहूँगा। नरभव........॥६॥

रे कर्म अपने ठाठ तूँ दिखाता है किसे।
प्रतिकूलताओं का भी भय बताता है किसे॥
निरपेक्ष ज्ञाता रूप हूँ ज्ञाता ही रहूँगा। नरभव........॥७॥

निज के लिये निज में भरा है सुख अतीन्द्रिय।
भोगूँगा अनंत काल तक बनूँगा जितेन्द्रिय॥
है द्वार मुक्ति का मिला अब मैं न रुलूँगा। नरभव.......॥८॥

जिनको अनंतों बार भोग-भोग कर छोड़ा।
हैं वे ही भोग, नहीं नवीन हैं, चित्त है मोड़ा॥
अज्ञान वश उच्छिष्ट भोगी अब न बनूँगा। नरभव.........॥९॥

दुख के पहाड़ बाह्य की प्रवृत्ति मार्ग में।
आनन्द की हिलोरें हैं निवृत्ति मार्ग में॥
उल्लास से निवृत्ति के मारग में बढ़ूँगा। नरभव.............॥१०॥

इस मार्ग में कुछ पाप तो होते ही नहीं हैं।
रे पूर्व बंध भी सहज खिरते ही सही हैं॥
कैसे कहो फिर दुख की कल्पना भी करूँगा। नरभव......॥११॥

निंदा करें वे ही जिन्हें कुछ ज्ञान नहीं है।
अनुमोदना करते जिन्हें निज ज्ञान सही है॥
कुछ हर्ष या विषाद अब मन में ना धरूँगा। नरभव.......॥१२॥

असहाय परिणमन है सर्व द्रव्यों का सदा।
बाँछा सहाय की नहीं मन में भी हो कदा॥
विश्वास निजाश्रय से ही शिवपद भी लहूँगा। नरभव.....॥१३॥

स्वभाव से निर्मुक्त हूँ स्वीकार है हुआ।
स्वभाव के सन्मुख सहज पुरुषार्थ है हुआ॥
ध्याऊँ सहज शुद्धात्मा सन्तुष्ट रहूँगा। नरभव.........॥१४॥

भवितव्य भली काललब्धि आई है अहो।
निमित्त भी मिले मिलेंगे योग्य ही अहो॥
हर हालत में आराधना में रत ही रहूँगा। नरभव........॥१५॥

विघ्नों के भय से मूढ ही निज लक्ष्य नहीं भजते।
विघ्नों के आने पर भी धीर मार्ग नहीं तजते॥
निश्चिंत निराकुल हुआ निज साध्य लहूँगा। नरभव.....॥१६॥

सब जीवों के प्रति मेरे सहज क्षमाभाव है।
करना क्षमा, मुझको, क्षमा आतम स्वभाव है॥
त्यागा है मोह, राग-आग में न जलूँगा। नरभव........॥१७॥

पाया है ऐसा मार्ग जिसके बाद मार्ग ना।
पाऊँगा ऐसा सुख जिसके बाद दुःख ना॥
जिसका न हो अभाव वह प्रभुत्व लहूँगा। नरभव.......॥१८॥

पाया स्वरूप झूठे स्वांग अब मैं न धरूँगा।
चैतन्य महल मिला अब भव में न भ्रमूँगा॥
दारिद्र फिर जिसमें न हो वह वैभव लहूँगा। नरभव.......॥१९॥

संयोगों को मैंने वरण किया अनंत बार।
वियोग के दुख के जहाँ टूटे सदा पहाड़॥
निश्चय किया अतएव ध्रुवस्वभाव वरूँगा नरभव........॥२०॥

तज करके मोह देखो यह आनंदमय है मार्ग।
निशंक हो आओ सभी आनंदमय है मार्ग॥
आनंदमय जिनमार्ग का प्रभाव करूँगा। नरभव.........॥२१॥

इस मार्ग से ही पाया है भगवंत ने भव अंत।
इस मार्ग में विचरें अभी भी ज्ञानी साधु संत॥
उनका ही अनुशरण कर निजानुभव करूँगा। नरभव......॥२२॥

चिंता नहीं विभावों की नसेंगे वे स्वयं।
निर्ग्रंथ हो निज भाव में ही रमण हो स्वयं॥
होता हुआ शिव होगा, सहज ज्ञाता रहूँगा। नरभव....॥२३॥

शुद्धात्म-आराधना

आराधना की शुभ घड़ी यह भाग्य से पायी।
आराधना शुद्धात्मा की ही मुझे भायी॥टेक॥

करके विराधन तत्त्व का बहु क्लेश हैं पाये।
सौभाग्य से नरभव मिला जिननाथ ढिंग आये॥
वाणी सुनी जिनराज की कुछ होश हुआ है।
उपयोग निर्णय में लगा अवबोध हुआ है॥
जागा विवेक अंतरंग में जागृति आयी॥ आराधना...॥१॥

शुद्धात्मा अपना परम आदेय है भासा।
मंगलस्वरूप चित्स्वरूप सहज प्रतिभासा॥
संयोग देह कर्म आदि भिन्न लखाये।
मोहादि सब दुर्भाव दुःख के हेतु दिखाये॥
आह्लादमयी आत्मानुभूति आज है आयी॥आराधना...॥२॥

निर्भान्त[1] हूँ, निःशंक हूँ, शुद्धात्मा प्रभु है।
स्वभाव से ही ज्ञान आनन्दमय सदा विभु है॥

१. भ्रान्ति रहित

सत्रूप अहेतुक नहीं जन्में नहीं मरता।
सामर्थ्य से अपनी सदा ही परिणमन करता॥
समझा स्वरूप स्वावलम्बी वृत्ति जगायी॥ आराधना...॥३॥

स्वाधीन अखण्ड प्रतापवान है प्रभु सदा।
निर्बन्ध है पर से नहीं सम्बन्ध हो कदा॥
पर से नहीं आता कभी कुछ भ्रान्ति मिट गयी।
निज में ही निज की पूर्णता स्वयमेव दिख गयी॥
स्वाश्रय से पराश्रय की बुद्धि सहज नशायी॥ आराधना...॥४॥

रे अग्नि में से शीतता आती नहीं जैसे।
और अग्नि भी घृत से नहीं बुझती कभी जैसे॥
त्यों इन्द्रिय भोगों से नहीं होता सुखी कभी।
अरु कार्य भी विकल्प से होता नहीं कभी॥
परभावों की असारता प्रत्यक्ष दिखायी। आराधना...॥५॥

जीवन का ठिकाना नहीं, संयोग हैं अशरण।
परमार्थ से देखें तो मात्र आत्मा शरण॥
आत्मा का विस्मरण ही है संसार का कारक।
आत्मा का अनुभवन ही सर्वक्लेश निवारक॥
जिनदेव की यह देशना आनन्द प्रदायी॥ आराधना...॥६॥

चिन्ता चिता से भी अधिक है घात का कारण।
चिन्ता से कभी होता नहीं कष्ट निवारण॥
चिन्ता को छोड़ तत्त्व का चिन्तन सहज करूँ।
अनुकूल अरु प्रतिकूल में समता सदा धरूँ॥
निरपेक्ष भावना हृदय में आज है आयी॥ आराधना...॥७॥

होती न अनहोनी कभी होनी नहीं टलती।
सुख शान्ति तो आराधना से ही सदा मिलती॥

शिवमार्ग के साधक कभी कुछ भार नहिं लेते।
ज्ञाता स्वयं में तृप्त नित निर्भार ही रहते॥
विमुक्त होने की यह युक्ती आज सुहायी।
आराधना शुद्धात्मा की ही मुझे भायी॥८॥

भवितव्य को स्वीकार कर निश्चिंत रहूँगा।
तजकर पराई आश अब निरपेक्ष रहूँगा॥
संयोगों की चिन्ता में दुख के बीज नहीं बोऊँ।
फँसकर विकल्पों में नहीं यह शुभ समय खोऊँ॥
वस्तु स्वरूप जानकर दृढ़ता सहज आयी॥आराधना...॥९॥

लौकिक जनों की चर्चायें अब मैं न सुनूँगा।
मोही जनों के आँसुओं पर ध्यान नहीं दूँगा॥
मिथ्या भविष्य की भी चिन्ता अब न करूँगा।
मानापमान में भी मैं तो सहज रहूँगा॥
अब भेदज्ञान की कला अन्तर में प्रगटाई॥
आराधना की शुभ घड़ी यह भाग्य से पायी॥आराधना...॥१०॥

करके स्वांग हितैषी का नहीं मुझको बहकाओ।
देके प्रलोभन अथवा भय न मुझको फँसाओ॥
तजकर तुम मिथ्या मोह कुछ विवेक जगाओ।
होकर आनन्दित संयम की अनुमोदना लाओ॥
संयम की अमृतधारा तो सभी को सुखदायी॥आराधना...॥११॥

सुनकर विरागमय वचन आनन्द छा गया।
दुर्मोह का वातावरण सब दूर हो गया॥
आसन्न भव्य भी सहज ही साथ चल दिए।
निर्ग्रन्थता के मार्ग का संकल्प शुभ किए॥
धनि-धनि कहें जयवंत हो जिनधर्म सुखदायी॥आराधना.॥१२॥

बृहत् साधु स्तवन

(दोहा)

इस अशरण संसार में, शरण रूप व्यवहार।
नमहुँ दिगम्बर गुरु चरण, गुण गाऊँ सुखकार॥१॥
विषय कषायारम्भ बिन, ज्ञान-ध्यान-तप लीन।
निर्विकार मुद्रा सहज, करे मोहमल छीन॥२॥

निज निर्ग्रन्थ रूप का ध्यान, प्रचुर स्वसंवेदन सुखदान।
नग्न बाह्य में भी अविकार, साधुदशा जग में सुखकार॥३॥

तीन कषाय चौकड़ी नाशी, भव तन भोग विरक्ति विकासी।
तृप्त रहें अपने में आप, चर्या सहज होय निष्पाप॥४॥

उपजें नहिं रागादि विकार, जीव विराधन नहीं दुःखकार।
वर्ते सहज ही यत्नाचार, पले अहिंसा व्रत सुखकार॥५॥

निज में मग्न मौन अविकार, मृषा कथन होवे न लगार।
क्वचित् कदाचित् सत्योपदेश, नहिं आसक्ति वहाँ भी लेश॥६॥

अपना वैभव लखा अपार, पर पदार्थ लख जगे न प्यार।
सहज अचौर्य महाव्रत होय, वंदनीय है मुनिपद सोय॥७॥

ध्यावें सदा शुद्ध चिद्रूप, परम ब्रह्म परमात्म स्वरूप।
ब्रह्मचर्य वर्ते अविकार, लगें नहीं किंचित् अतिचार॥८॥

अपनी निधि अपने में धार, भये अकिंचन मुनि सुखकार।
तिल तुष मात्र परिग्रह नाहिं, तुष्ट रहें निज आतम माँहिं॥९॥

नहिं आकुलता नहीं प्रमाद, नहिं अनुबन्ध रूप अवसाद।
सहज गमन लागे नहीं दोष, ईर्या समिति पले निर्दोष॥१०॥

प्राणि मात्र प्रति मैत्री भाव, हित-मित-प्रिय वच हो सुखदाय।
भाषा समिति सहज ही होय, तारण-तरण ऋषीश्वर सोय॥११॥

अनाहारी शुद्धातम ध्यावें, स्वयं स्वयं में तृप्त रहावें।
दोष छियालिस लगे न कोय, धनि युक्ताहारी मुनि सोय॥१२॥

त्योगोपादानशून्य स्वभाव, भिन्न सभी भासें परभाव।
तहँ किंचित् ममत्व नहीं जान, हो सयत्न निक्षेप आदान॥१३॥

जानत सब जीवन की जात, होवे नाहीं उनका घात।
प्रासुक भूमि माँहिं मल डारें, निर्मल आत्म स्वरूप संभारें॥१४॥

नाना इन्द्रिय विषय निहार, हर्ष-विषाद न जिन्हें लगार।
परम जितेन्द्रिय श्री मुनिराय, सहज नमन होवे सुखदाय॥१५॥

चेतनपद परस्यो अविकार, उपज्यो आनन्द अपरम्पार।
जड़ स्पर्श में राग या द्वेष, होवे नहीं सहज लवलेश॥१६॥

स्वाद निजानन्द रस को पाय, बाह्य स्वाद फीके दिखलाय।
नीरस तो नीरस ही रहे, सरस स्वाद भी नीरस भये॥१७॥

अहा अगंध स्वरूप अनूप, परमानन्दमय शुद्ध चिद्रूप।
नहीं सुगन्ध लगे सुखरूप, भासे नहिं दुर्गन्ध दुःखरूप॥१८॥

सुन्दरतम शुद्धात्म स्वरूप, शाश्वत शोभा लखी अनूप।
बाह्यरूप नहिं मन को मोहें, अविकारी मुनि जग में सोहें॥१९॥

राग-रागिनी शब्द कुशब्द, सुनते भी मुनि हो नहीं क्षुब्ध।
अंतर आत्मप्रसिद्धि जगाय, सहज उदास रहे मुनिराय॥२०॥

ध्यावें आत्मरूप अविकार, साम्यभाव वर्ते सुखकार।
ज्ञायकपने स्वयं को जोय, भिन्न ज्ञेय भासे सब लोय॥२१॥

इष्ट-अनिष्ट विकल्प न आय, नहीं विषमता हो दुखदाय।
सामायिक यह मंगलरूप, होय सहज मुनि को शिवरूप॥२२॥

दर्शायो आतम उत्कृष्ट, जग में पूज्य पंच पद इष्ट।
हो स्तुति वंदन बहुमान, वर्ते सहज भेद विज्ञान॥२३॥

नहीं अतिक्रमे शुद्ध चिद्रूप, सहज होय प्रतिक्रमण अनूप।
क्रिया ज्ञानमय नित अविकार, दुखदायक अतिचार विडार॥२४॥

निमित्त रूप आगम अभ्यास, आप आप जाने सुखरास।
कायोत्सर्ग मुद्रा धरि नित्य, देखे आत्मस्वरूप पवित्र॥२५॥

नहीं स्नान नहीं शृंगार, नग्न देह शोभे अविकार।
अन्तर बाहर सहज पवित्र, रहित वासना निर्मल चित्त॥२६॥

देहाश्रित निद्रा भी अल्प, जागृत सहज रहे अविकल्प।
स्वाश्रय से लुँचे सु कषाय, केशलोंच बाहर सुखदाय॥२७॥

खड़े-खड़े हो अल्पाहार, एकबार संयम चित्त धार।
न हो दन्तवन हिंसारूप, धन्य जैन मुनि मंगलरूप॥२८॥

नभ समान निर्लेप असंग, ध्यावें शुद्ध चिद्रूप अनंग।
दर्शावें जग में सुखकार, ध्रुव मंगल शुद्धातम सार॥२९॥

परम शान्त मुनिवर आदर्श, मोह विनाशक मुनि का दर्श।
धन्य भाग्य जब दर्शन पाऊँ, हो निर्ग्रन्थ स्वरूप सु ध्याऊँ॥३०॥

रत्नत्रय शोभित अहो, धन्य साधु निर्ग्रन्थ।
साधें आत्मस्वरूप निज, दर्शावें शिवपंथ॥

शुद्धात्म-चिन्तवन (परमार्थ स्तवन)

(दोहा)

सहज शुद्ध ज्ञायक अमल, नित्यमुक्त भगवान।
शोभित निज अनुभूति युत, परमानन्दमय जान॥१॥

(चौपाई)

जय जय चिदानन्द भगवान। ध्येयरूप ध्याऊँ अम्लान॥
जय जय सहज चतुष्टयवन्त। शाश्वत प्रभु अंतर विलसंत॥२॥

निष्कलंक निर्द्वन्द्व स्वरूप। निर्विकल्प चिद्रूप अनूप॥
बिन्मूरति चिन्मूरति आप। जाकी धुन में पुण्य न पाप॥३॥

जय जय परम धरम दातार। जय जय बंध विनाशनहार॥
मुक्तिदशा प्रगटावनहार। सहज अकर्ता जाननहार॥४॥

ग्रहण-त्याग का जहाँ न काम। सहज पूर्ण नित आतमराम॥
जय जय परमब्रह्म निष्काम। प्रगटे ब्रह्मचर्य सुखधाम॥५॥

आधि व्याधि उपाधि विहीन। सहज समाधिस्वरूप प्रवीन॥
शाश्वत तीर्थरूप अविकार। सहजपने ही तारणहार॥६॥

अनन्तज्ञान में भी सु अनन्त। महिमा का दीखे नहिं अन्त॥
दर्शन तें उपजे आनन्द। प्रभु अविनाशी अमृतचन्द्र॥७॥

ज्ञान सुधारस पिये जु कोय। अजर अमर पद पावे सोय॥
नित्य निरंजन परम पवित्र। स्वानुभव गोचर सहज विचित्र॥८॥

लोकोत्तम ध्रुव मंगल रूप। अनन्य शरण आराध्य स्वरूप॥
जय जय सहज तृप्त निर्दोष। गुण अनन्तमय माणिक कोष॥९॥

यद्यपि कर्म संयोग अनादि, हो रागादिक हर्ष-विषाद॥
भ्रमता फिरे चतुर्गति माँहिं, लहे एक क्षण साता नाहिं॥१०॥

वर्ते तदपि सदा निर्बन्ध, सहज ज्ञानमय ज्योति अमंद॥
निष्कल निर्विकार अभिराम। एकरूप नित आतमराम॥११॥

नाहीं उपजे नाहीं विनशे। बंध मुक्ति को कदा न परसे॥
भिन्न सदैव रहें ये स्वाँग। ज्ञायक तो ज्ञायक ही जान॥१२॥

परम पारिणामिक अविकार। धीर वीर गम्भीर उदार॥
स्वयंसिद्ध शाश्वत परमात्म। अद्भुत प्रभुतामय शुद्धात्म॥१३॥

द्रव्यदृष्टि से प्रत्यक्ष देख। उपज्यो उर आनन्द विशेष॥
मिटी भ्रान्ति प्रगटी सुख शान्ति। निज में ही पाई विश्रान्ति॥१४॥

मिथ्या कर्तृत्व भाव पलाय। राग-द्वेष सब गये विलाय॥
सहजहिं जाननहार जनाय। अद्भुत चिद्विलास विलसाय॥१५॥

स्वतः स्वयं में तृप्त हूँ, विनशें सर्व विभाव।
रहूँ सहज निर्ग्रन्थ नित, भाऊँ शुद्ध स्वभाव॥

नित्य-भावना

मैं एक ज्ञायकभाव भाऊँ अन्य वांछा कुछ नहीं।
अनुभूति ज्ञायकभावमय वर्ते सुकाल अनन्त ही॥

सविकल्पता में हे प्रभो ! पुरुषार्थ ऐसा ही करूँ।
चैतन्य प्राप्ति का निमित्त अरहंत का दर्शन करूँ॥

चिन्तन सुसिद्ध स्वरूप का कर भेदज्ञान हृदय धरूँ।
निष्कर्म ध्रुव अरु अचल अनुपम स्वयं सिद्धस्वरूप हूँ॥

कर वंदना आचार्य की नित द्रव्य एवं भाव से।
निर्ग्रन्थ दीक्षा की अहो हो भावना अतिचाव से॥

उपाध्याय गुरुवर के समीप सुज्ञान का अभ्यास हो।
संतुष्टि हो आराधना में नहीं पर की आस हो॥

हो साधुजन की संगति अरु असंगपद की दृष्टि हो।
जग से उदासी हो सहज वैराग्यमय मम सृष्टि हो॥

जिन चैत्य-चैत्यालय अकृत्रिम-कृत्रिम भी अति भा रहे।
अशरण जगत में शरण सुखमय ये ही प्रभु दर्शा रहे॥

जग में न कोई दूसरी जिनवाणी माँ व्यवहार है।
इस दुःषम भीषण काल में जिनवाणी ही आधार है॥

जिनधर्म ही सत्यार्थ भासे सहज वस्तु स्वभाव है।
जो है अहिंसा रूप जिसमें नहिं विराधक भाव है॥

है मूल सम्यक्‌दर्श जिसका ज्ञानमय जो धर्म है।
अवकाश नहिं है रूढ़ियों का साम्य जिसका मर्म है॥

लक्षण कहे दश धर्म के सब ही को मंगलरूप है।
व्याधि-उपाधि नहीं जिनमें सहज आत्मस्वरूप है॥

इस धर्म की ही हो सदा जगमाँहिं परम प्रभावना।
स्वप्न में भी हो नहीं किंचित् कभी दुर्भावना॥

मैत्री रहे सब प्राणियों से गुणीजनों में मोद हो।
दीन-दुःखियों पर दया, विपरीत पर नहीं क्षोभ हो॥

संवेग अरु वैराग्य वृद्धिंगत सदा होते रहें।
उर-भूमि में नित धर्म के ही बीज शुभ बोते रहे॥

हो धर्मपर्वों प्रति सहज उत्साह अन्तर में सदा।
समभाव मंगलमय रहे कुछ पाप नहीं लागे कदा॥

मूर्छा न हो परभाव में एकान्त का सेवन करूँ।
नित तीर्थक्षेत्रों में अहो आनन्द का वेदन करूँ॥

निरपेक्ष हो स्वाधीन हो मम वृत्ति हो चिद् ब्रह्ममय।
हो ब्रह्मचर्य परमार्थ पूर्ण स्वपद लहूँ अक्षय अभय॥

अक्षय-तृतीया

अक्षय तृतीया पर्व है मंगलमय अविकार।
ऋषभदेव मुनिराज का हुआ प्रथम आहार॥

दीक्षा लेकर ऋषभ मुनीश्वर छह महीने उपवास किया।
फिर आहार निमित्त ऋषीश्वर जगह जगह परिभ्रमण किया॥

कोई हाथी घोड़े वस्त्राभूषण रत्नों के भर थाल।
ले सन्मुख आदर से आवें, देख साधु लौटें तत्काल॥

नहीं जाने आहार-विधि, इससे सब ही लाचार हुए।
अन्तराय का उदय रहा, तेरह महीने नौ दिवस हुए॥

धन्य मुनीश्वर धन्य आत्मबल आकुलता का लेश नहीं।
तृप्त स्वयं में मग्न स्वयं में किंचित् भी संक्लेश नहीं॥

उदय नहीं हो दुःख का कारण, यदि स्वभाव का आश्रय हो।
निज से च्युत हो दुःखी रहे, तो फिर उपचार उदय पर हो॥

दोष देखना किन्तु उदय का, कही अनीति जिनागम में।
उदय उदय में ही रहता है, नहिं प्रविष्ट हो आतम में॥

भेदज्ञान कर द्रव्यदृष्टि धर, स्वयं स्वयं में मग्न रहो।
स्वाश्रय से ही शान्ति मिलेगी, आकुलता नहिं व्यर्थ करो॥

अशरण जग में अरे आत्मन् ! नहीं कोई हो अवलम्बन।
तजकर झूठी आस पराई, अपने प्रभु का करो भजन॥

इन्द्रादिक से सेवक चक्री कामदेव से सुत जिनके।
देखो एक समय पहले भी नहिं आहार हुए उनके॥

हुई योग्यता सहजपने ही सर्व निमित्त मिले तत्क्षण।
मंगल स्वप्नों का फल सुनकर श्री श्रेयांस थे हर्ष मगन॥

देखा आते ऋषभ मुनि को जातिस्मरण हुआ सुखकार।
नवधा भक्ति पूर्वक नृप ने दिया इक्षुरस का आहार॥

पंचाश्चर्य किये देवों ने रत्न पुष्प थे बरसाए।
पवन सुगंधित शीतल चलती, जय जय से नभ गुंजाए॥

धन्य पात्र हैं धन्य हैं दाता, धन्य दिवस धनि हैं आहार।
दानतीर्थ का हुआ प्रवर्तन, घर-घर होवे मंगलाचार॥

तिथि वैशाख सुदी तृतीया थी अक्षय तृतीया पर्व चला।
आदीश्वर की स्तुति करते सहजहि मुक्ति मार्ग मिला॥

ऋषभदेव सम रहे धीरता आराधन निर्विघ्न खिले।
भोजन भी न मिले फिर भी नहिं आराधन से चित्त चले॥
थकित हुआ हूँ भव भोगों से लेश मात्र नहिं सुख पाया।
हो निराश सब जग से स्वामिन् चरण शरण में हूँ आया॥
यही भावना स्वयं स्वयं में तृप्त रहूँ प्रभु तुष्ट रहूँ।
ध्येय रूप निज पद को ध्याते ध्याते शिवपद प्रगट करूँ॥

निर्मुक्ति-भावना

जिनधर्म पाया है परम निर्मुक्त बनूँगा।
निर्मुक्त हूँ स्वभाव से निर्मुक्त रहूँगा॥टेक॥

परभावों से अति भिन्न है शुद्धात्मा अपना।
निज वैभव से आपूर्ण है ध्रुव आत्मा अपना॥
हो निर्विकल्प आत्मा हूँ अनुभव करूँगा ॥ जिनधर्म...॥१॥

जब देह ही अपनी नहीं परिवार फिर कैसा ?
कर्तृत्व ही पर का नहीं फिर भार हो कैसा ?
निर्भार ज्ञातारूप हूँ ज्ञाता ही रहूँगा॥
मैं झौंक भार को भार में निर्भार रहूँगा॥ जिनधर्म...॥२॥

स्वामित्व कुछ पर का नहीं, सम्बन्ध नहिं पर से।
निर्बन्ध एक शुद्ध हूँ नहीं बन्ध हो पर से॥
निज शान्त रस को वेदता निर्द्वन्द्व रहूँगा॥ जिनधर्म...॥३॥

विपरीतता या न्यूनता नहिं निज स्वभाव में।
पर की अपेक्षा है नहीं आतम स्वभाव में॥
हो निर्मोही सम्यक्त्वादिक से पुष्ट रहूँगा॥जिनधर्म...॥४॥

है रूप निज एकत्व-विभक्त सहज जाना।
भोगों से अति निरपेक्ष निज स्वाधीन सुख माना॥
नहीं चाह कुछ पर की रही निष्काम रहूँगा॥जिनधर्म...॥५॥

अक्षय विभव निज का परम उत्कृष्ट है देखा।
अब तो लगे जग का सभी मिथ्या असत् लेखा॥
निर्ग्रन्थ पद भाता हुआ निर्ग्रन्थ रहूँगा॥जिनधर्म...॥६॥

शक्ति अनन्त देखते सन्तुष्ट हो गया।
प्रभुता अलौकिक देखते अति तृप्त हो गया॥
नहिं और कुछ सुहाय निज में मग्न रहूँगा॥ जिनधर्म...॥७॥

उत्साह निवृत्त हो गया पर जानने का भी।
फिर भाव कैसे आयेगा दुर्भोगों का सही॥
निशल्य शान्त चित्त हुआ निकलंक रहूँगा॥ जिनधर्म... ॥८॥

शुभभाव रूप ब्रह्मचर्य में तोष नहिं आवे।
परमार्थता परिपूर्णता को चित्त ललचावे॥
निजब्रह्म पाया है परम ब्रह्मचर्य धरूँगा। जिनधर्म... ॥९॥

कुछ भय नहीं शंका नहीं भगवान हैं पाये।
ज्ञानी गुरु पाकर परम आनन्द विलसाये॥
जिनवाणी सी माता पाई भव में ना भ्रमूँगा॥ जिनधर्म...॥१०॥

सब कर्मफल संन्यास की अब भावना भाऊँ।
निष्कर्म ज्ञायकभाव में ही सहज रम जाऊँ॥
बोधिसमाधि को पाकर निज साध्य लहूँगा॥ जिनधर्म...॥११॥

आराधना का फल

आराधना का फल देखो जिनवर दिखा रहे।
अपना सर्वस्व अपने में प्रभुवर बता रहे॥टेक॥

देखो तुम ज्ञानदृष्टि से प्रभु तृप्त निज में ही।
नाशा दृष्टि दर्शा रही सुख शान्ति निज में ही॥
निस्सार जग के वैभव अरु पंचेन्द्रिय भोग रे॥ आराधना. ॥१॥

क्रमरूप सहज होता है सब ही का परिणमन।
कर्तृत्व मिथ्या क्यों करे किंचित् न हो फिरण॥
ज्ञातृत्व का आनन्द तो प्रभुवर दर्शा रहे।
आराधना का फल देखो जिनवर दिखा रहे॥२॥

अतीन्द्रिय यह अनन्त दर्शन ज्ञान सुख वीरज।
निर्मुक्त अक्षय प्रभुतामय छूती न कर्म रज॥
ऐसी महिमा अपने में ही अपने से प्रगटे रे॥ आराधना.॥३॥

चैतन्य रत्नाकर में अपने रत्न हैं अनन्त।
नहिं केवलज्ञान में भी आया आदि अरु अन्त॥
है सहज प्राप्त उनको अपने में जो गहरे उतरे॥ आराधना.॥४॥

सोचो चिर से भ्रमते-भ्रमते क्या तुमने है पाया ?
स्व के जीवन में पाई है क्या सच्चे सुख की छाया॥
चंचलता छोड़ो स्थिरता में ही सुख विलसे रे॥ आराधना.॥५॥

उसकी तो चाह नहीं होती जो अपने में नहीं हो।
दुःख दारिद्र बंधन रोगादिक को इच्छे कौन कहो ?
प्रभुता सुख ज्ञान विभव मुक्ति निज में ही प्रगटे रे॥ आराधना.॥६॥

कुछ कमी नहीं शुद्धातम है परिपूर्ण निज में ही।
है अपने में ही साध्य और साधन भी निज में ही॥
अनुभव में प्रत्यक्ष देखे तब निज महिमा आवे रे॥ आराधना.॥७॥

है परमब्रह्म परमात्मा स्वयमेव आनन्दमय।
अपनाओ पावन ब्रह्मचर्य होकर तुम निर्भय॥
एकाकी रह एकान्त में निज ध्रुवपद ध्याओ रे॥ आराधना.॥८॥

इस मार्ग में दुःख की नहीं कुछ कल्पना करना।
आदर्श हैं जिनराज अरु शुद्धात्मा शरणा॥
शक्ति सामर्थ्य भी निज में ही सहज विकसे रे आराधना.॥९॥

निष्कंटक मुक्तीमार्ग में कंटक नहीं बोओ
सब योग तो सहज ही मिले पुरुषार्थ सम्यक् हो।
स्वप्नों में खिसक-खिसक कर मत भवकूप पड़ो रे॥ आराधना.॥१०॥

सोचो नलिनी के तोते को आधार ही क्या है ?
आकाश में तो उड़ने का उसका स्वभाव है।
पर आश्रय बुद्धि छोड़ो निज में तृप्त रहो रे॥ आराधना.॥११॥

तत्त्वज्ञान के अभ्यास से जीतो विभावों को।
हो शान्तचित्त धीरज धरो एकाग्रता खुद हो॥
नहिं दीनता लाओ कभी प्रभुता निहारो रे॥ आराधना.॥१२॥

आरम्भ अरु परिग्रह रहित निर्भार हो जीवन।
आराधना से हो सरस आनन्दमय जीवन॥
संतुष्ट निज में ही अहिंसामय आचरण रे॥ आराधना.॥१३॥

दर्शन आराधना अहो निज नाथ का दर्शन।
है ज्ञान आराधन अहो निज का ही अनुभवन॥
थिरता चारित्र विश्रान्ति है तप आराधन रे॥ आराधना.॥१४॥

आराध्य ध्रुव शुद्धात्मा चिन्मात्र चित्स्वरूप।
आराधक सम्यग्ज्ञानी जानो फल मुक्ति स्वरूप॥
निर्मोही हो आराधना में बढ़ते चलो रे॥ आराधना.॥१५॥

आत्म-भावना

(तर्ज-मेरी भावना)

निजस्वभाव में लीन हुए, तब वीतराग सर्वज्ञ हुए।
भव्य भाग्य अरु कुछ नियोग से, जिनके वचन प्रसिद्ध हुए॥१॥
मुक्तिमार्ग मिला भव्यों को, वे भी बंधन मुक्त रहें।
उनमें निजस्वभाव दर्शकता, देख भक्ति से विनत रहें॥२॥

वीतराग सर्वज्ञ ध्वनित जो, सप्त तत्त्व परकाशक है।
अविरोधी जो न्याय तर्क से, मिथ्यामति का नाशक है॥३॥

नहीं उल्लंघ सके प्रतिवादी, धर्म अहिंसा है जिसमें।
आत्मोन्नति की मार्ग विधायक, जिनवाणी हम नित्य नमें॥४॥

विषय कषाय आरम्भ न जिनके, रत्नत्रय निधि रखते हैं।
मुख्य रूप से निज स्वभाव, साधन में तत्पर रहते हैं॥५॥

अट्ठाईस मूलगुण जिनके सहजरूप से पलते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु गुरु का, हम अभिनन्दन करते हैं॥६॥

उन सम निज का हो अवलम्बन, उनका ही अनुकरण करूँ।
उन्हीं जैसी परिचर्या से, आत्मभाव को प्रकट करूँ॥७॥

अष्ट मूलगुण धारण कर, अन्याय अनीति त्यागूँ मैं।
छोड़ अभक्ष्य सप्त व्यसनों, को पंच पाप परिहारूँ मैं॥८॥

सदा करूँ स्वाध्याय तत्त्वनिर्णय सामायिक आराधन।
विनय युक्ति और ज्ञानदान से, राग घटाऊँ मैं पावन॥९॥

जितनी मंद कषाय होय, उसका न करूँ अभिमान कभी।
लक्ष्य पूर्णता का अपनाकर, सहूँ परीषह दुःख सभी॥१०॥

गुणीजनों पर हो श्रद्धा, व्यवहार और निश्चय सेवा।
उनकी करें दुःखी प्रति करुणा, हमको होवे सुख देवा॥११॥

शत्रु न जग में दीखे कोई, उन पर भी नहिं क्षोभ करूँ।
यदि संभव हो किसी युक्ति से, उनमें भी सद्ज्ञान भरूँ॥१२॥

राग नहीं हो लक्ष्मी का, नहीं लोकजनों की किंचित् लाज।
प्रभु वचनों से जो प्रशस्त पथ, उसमें ही होवे अनुराग॥१३॥

होय प्रशंसा अथवा निंदा कितने हों उपसर्ग कदा।
उन पर दृष्टि भी नहिं जावे, परिणति में हो साम्य सदा॥१४॥

होवे मौत अभी ही चाहे, कभी न पथ से विचलित हो।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सदा मेरु से अचलित हो॥१५॥

चाह नहीं हो परद्रव्यों की, विषयों की तृष्णा जावे।
क्षण-क्षण चिन्तन रहे तत्त्व का, खोटे भाव नहीं आवे॥१६॥

समय-समय निज अनुभव होवे, आतम में थिरता आवे।
सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरण से, शिवसुख स्वयं निकट आवे॥१७॥

प्रगट होय निर्ग्रन्थ अवस्था, निश्चय आतम ध्यान धरूँ।
स्वाभाविक आतम गुण प्रगटें, सकल कर्ममल नाश करूँ॥१८॥

होवे अन्त भावनाओं का, यही भावना भाता हूँ।
भेद दृष्टि के सब विकल्प तज, निज स्वभाव में रहता हूँ॥१९॥

(दोहा)

सुखमय आत्मस्वभाव है, ज्ञाता-दृष्टा ग्राह्य।
लीन आत्मा में रहे, स्वयं सिद्ध पद पाय॥२०॥

सम्बोधनाष्टक

झूठे सर्व विकल्प, शरण है एक ही शुद्धातम।
निर्विकल्प आनन्दमयी, प्रभु शाश्वत परमातम॥१॥

है अत्यन्ताभाव सदा फिर कोई क्या कर सकता।
व्यर्थ विकल्पों से उपजी क्या पीड़ा हर सकता॥२॥

द्रव्यदृष्टि से देखो तुम तो सदाकाल सुखरूप।
परभावों से शून्य सहज चिन्मात्र चिदानन्द रूप॥३॥

नहीं सूर्य में अंधकार त्यों दुःख नहिं ज्ञायक में।
दुःख का ज्ञाता कहो भले, पर ज्ञायक नहीं दुःख में॥४॥

ज्ञायक तो ज्ञायक में रहता, ज्ञायक ज्ञायक ही।
गल्प नहीं यह परम सत्य है, अनुभव योग्य यही॥५॥

भूल स्वयं को व्यर्थ आकुलित हुए फिरो भव में।
जानो जाननहार स्वयं आनन्द प्रगटे निज में॥६॥

हुआ न होगा कोई सहाई झूठी आस तजो।
नहीं जरूरत भी तुमको अब अपनी ओर लखो॥७॥

पूर्ण स्वयं में तृप्त स्वयं में आप ही आप प्रभो।
सहज मुक्त हो, स्वयं सिद्ध हो, जाननहार रहो॥८॥

जिनधर्म

जिनधर्म ही भ्रममूल नाशक अहो मंगल जगत में।
जिनधर्म ही शिवपथ प्रकाशक अहो उत्तम जगत में॥

सम्यक् अहिंसामय धरम ही शरणभूत सु जानियो।
निजभाव भासक कर्म नाशक जिनधरम पहिचानियो॥

रत्नत्रयमय यह धर्म उत्तम क्षमादि स्वरूप है।
निरपेक्ष पर से सहज स्वाश्रित परम आनन्दरूप है॥

जिनधर्म धारे तृप्ति हो निज माँहिं निज से सहज ही।
निर्वृत्त आस्रव से सहज विज्ञानघन हो सहज ही॥

भवताप नाशे गुण प्रकाशे मुक्ति पद दातार है।
स्वानुभवमय जिनधरम ही सर्व मंगलकार है॥

महाभाग्य सु पाइयो मैंने अलौकिक जिनधरम।
निशंक हो निर्ग्रन्थ हो प्रभुवर प्रभावूँ जिनधरम॥

भो सुखार्थी सहज समझो तत्त्व मंगलमय अहो।
भो मुमुक्षु सहज धारो धर्म मंगलमय अहो॥

स्वार्थमय संसार में निज स्वार्थसिद्धि सु कीजिए।
मध्यस्थ हो चारित्र गहो, परभाव सब तज दीजिए॥

नहीं चूक जाना मोहवश अवसर मिला दुर्लभ अहो।
निजभाव की आराधना से है सुलभ निजपद अहो॥

वीर शासन दशक

वीरनाथ का मंगल शासन, जग में नित जयवंत रहे।
स्वानुभूतिमय श्री जिनशासन, जग में नित जयवंत रहे॥टेक॥

श्री जिनशासन के आधार, भव सागर से तारणहार।
वीतराग सर्वज्ञ जिनेश्वर, जग में नित जयवंत रहें॥१॥

वस्तु स्वरूप दिखावनहार, हेयाहेय बतावनहार।
नित्य-बोधिनी माँ जिनवाणी, जग में नित जयवंत रहे॥२॥

मुक्तिमार्ग विस्तारनहार, धर्ममूर्ति जीवन अविकार।
रत्नत्रय धारक मुनिराज, जग में नित जयवंत रहें॥३॥

चैत्य चैत्यालय मंगलकार, धर्म संस्कृति के आधार।
सहज शान्तिमय धर्मतीर्थ सब, जग में नित जयवंत रहें॥४॥

देव गुरु की मंगल अर्चा, आनंदमयी धर्म की चर्चा।
स्याद्वादमय ध्वजा हमारी, जग में नित जयवंत रहे॥५॥

अष्ट-अंगमय सम्यग्दर्शन, अनेकांतमय जीवन दर्शन।
सहज अहिंसामयी आचरण, जग में नित जयवंत रहे॥६॥

रहें सहज ही ज्ञाता-दृष्टा, हो विवेकमय निर्मल चेष्टा।
वीतराग-विज्ञान परिणति, जग में नित जयवंत रहे॥७॥

तत्त्वज्ञान को सब ही पावें, मुक्तिमार्ग सब ही प्रगटावें।
सुखी रहें सब जीव भावना, जग में नित जयवंत रहे॥८॥

जिनशासन है प्राण हमारा, मंगलोत्तम शरण सहारा।
नमन सहज अविकारी सुखमय, जग में नित जयवंत रहे॥९॥

सेवें जिनशासन सुखकारी, शान बढावें मंगलकारी।
सत्यपन्थ निर्ग्रन्थ दिगम्बर, जग में नित जयवंत रहे॥१०॥

दशलक्षण धर्म का मर्म

(सोरठा)

क्षमा भाव अविकार, स्वाश्रय से प्रकटे सुखद।
आनन्द अपरम्पार, शत्रु न दीखे जगत में॥१॥
मार्दव भाव सुधार, निज रस ज्ञानानंदमय।
वेदूँ निज अविकार, नहीं मान नहीं दीनता॥२॥
सरल स्वभावी होय, अविनाशी वैभव लहूँ।
वांछा रहे न कोय, माया शल्य विनष्ट हो॥३॥
परम पवित्र स्वभाव, अविरल वर्ते ध्यान में।
नाशे सर्व विभाव, सहजहि उत्तम शौच हो॥४॥
सत्स्वरूप शुद्धात्म, जानूँ मानूँ आचरूँ।
प्रकटे पद परमात्म, सत्य धर्म सुखकार हो॥५॥
संयम हो सुखकार, अहो अतीन्द्रिय ज्ञानमय।
उपजे नहीं विकार, परम अहिंसा विस्तरे॥६॥
निज में ही विश्राम, जहाँ कोई इच्छा नहीं।
ध्याऊँ आतमराम, उत्तम तप मंगलमयी॥७॥
परभावों का त्याग, सहज होय आनन्दमय।
निज स्वभाव में पाग, रहूँ निराकुल मुक्त प्रभु॥८॥
सहज अकिंचन् रूप, नहीं परमाणु मात्र मम।
भाऊँ शुद्ध चिद्रूप, होय सहज निर्ग्रंथ पद॥९॥
परम ब्रह्म अम्लान, ध्याऊँ नित निर्द्वन्द्व हो।
ब्रह्मचर्य सुख खान, पूर्ण होय आनंदमय॥१०॥
एक रूप निज धर्म, दशलक्षण व्यवहार से।
स्वाश्रय से यह मर्म, जाना ज्ञान विरागमय॥११॥

अपना स्वरूप

रे जीव ! तू अपना स्वरूप देख तो अहा।
दृग-ज्ञान-सुख-वीर्य का भण्डार है भरा॥टेक॥
नहिं जन्मता मरता नहीं, शाश्वत प्रभु कहा।
उत्पाद व्यय होते हुये भी ध्रौव्य ही रहा॥१॥
पर से नहीं लेता नहीं देता तनिक पर को।
निरपेक्ष है पर से स्वयं में पूर्ण ही अहा॥२॥
कर्ता नहीं भोक्ता नहीं स्वामी नहीं पर का।
अत्यंताभाव रूप से ज्ञायक ही प्रभु सदा॥३॥
पर को नहीं मेरी कभी मुझको नहीं पर की।
जरूरत पड़े सब परिणमन स्वतंत्र ही अहा॥४॥
पर दृष्टि झूठी छोड़कर निज दृष्टि तू करे।
निज में ही मग्न होय तो आनन्द हो महा॥५॥
बस मुक्तिमार्ग है यही निज दृष्टि अनुभवन।
निज में ही होवे लीनता शिव पद स्वयं लहा॥६॥
आत्मन् कहूँ महिमा कहाँ तक आत्म भाव की।
जिससे बने परमात्मा शुद्धात्म वह कहा॥७॥

सच्चा जैन

ज्ञानी जैन उन्हीं को कहते, आतम तत्त्व निहारें जो।
ज्यों का त्यों जानें तत्त्वों को, ज्ञायक में चित धारें जो॥१॥

सच्चे देव-शास्त्र-गुरुवर की, परम प्रतीति लावें जो।
वीतराग-विज्ञान-परिणति, सुख का मूल विचारें जो॥२॥

नहीं मिथ्यात्व अन्याय अनीति, सप्त व्यसन के त्यागी जो।
पूर्ण प्रमाणिक सहज अहिंसक, निर्मल जीवन धारें जो॥३॥

पापों में तो लिप्त न होवें, पुण्य भलो नहीं मानें जो।
पर्याय को ही स्वभाव न जानें, नहिं ध्रुव दृष्टि विसारें जो॥४॥

भेद-ज्ञान की निर्मल धारा, अन्तर माँहिं बहावें जो ।
इष्ट-अनिष्ट न कोई जग में, निज मन माँहिं विचारें जो ॥५॥

स्वानुभूति बिन परिणति सूनी, राग जहर सम जानें जो ।
निज में ही स्थिरता का, सम्यक् पुरुषार्थ बढ़ावें जो॥६॥

कर्ता-भोक्ता भाव न मेरे, ज्ञान स्वभाव ही जानें जो।
स्वयं त्रिकाल शुद्ध आनंदमय, निष्क्रिय तत्त्व चितारें जो॥७॥

रहे अलिप्त जलज ज्यों जल में, नित्य निरंजन ध्यावें जो।
आत्मन् अल्पकाल में मंगलरूप, परमपद पावें जो॥८॥

संकल्प

हम एक हैं ...... हम एक हैं, संकल्प लें हम एक हैं।
देव हमारे एक हैं, गुरू हमारे एक हैं।
धर्म हमारा एक है, लक्ष्य हमारा एक है॥टेक॥

अरहंत देव हमारे हैं, निर्ग्रन्थ गुरुवर प्यारे हैं।
माँ हम सबकी है जिनवाणी, धर्म अहिंसा धारे हैं॥१॥

सत्ता सबकी न्यारी-न्यारी, किन्तु स्वरूप समान है।
सर्वोत्तम भगवान आत्मा, गुण अनन्त की खान है॥२॥

द्रव्यदृष्टि से भेद न किंचित्, हमने आज निहारा है।
राग-द्वेष अब नहीं किसी से, परम साम्य सुखकारा है॥३॥

सबका होवे स्वयं परिणमन, कोई न कर्ता हरता है ।
अपने-अपने भावों का यह, जीव स्वयं फल भरता है॥४॥

इष्ट-अनिष्ट कहें हम पर को, झूठी मन की वृत्ति है।
करें भेद-विज्ञान स्व-पर का, होवे सुख की सृष्टि है॥५॥

श्री नेमिकुमार निष्क्रमण

श्री नेमि प्रभु की वंदना कर, भक्ति भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥टेक॥

देखा पशुओं को रुका हुआ प्रभु हो गये गम्भीर।
धिक्-धिक् ऐसी विषयांधता, दीखे न पराई पीर॥
इन भोगों की अग्नि में कितने जीव हैं जलते।
और भोगी भी परिपाक में, भव-भव में दुख सहते॥
पीड़ा है विषय-कषायों की, मृत्यु से भयंकर।
हों सहने में असमर्थ तब फिर मूढ़ जन फँसकर॥
दोई भव नाशें, मोही व्यर्थ मोह भाव से॥ प्रभु...॥१॥

ऐसी शोभा से क्या जिसमें, निज-पर का पीड़न हो।
ऐसी शादी से क्या जिसमें, दुखमय भव बंधन हो॥
स्वतंत्रता का हो हनन, आराधना का घात।
परिग्रह के ग्रहण में होते, अगणित दुखमय उत्पात॥
रहता है चंचल चित्त सदा, ही परिग्रहवान का।
विषयों में जो आसक्त उनके, नित ही मलिनता॥
सुख लेश भी पावे नहीं, अज्ञानभाव से॥ प्रभु....॥२॥

पापों के बीज इन्द्रिय सुख, तो दुखमय ही अरे।
परलक्षी इन्द्रिय ज्ञान भी अज्ञान जान रे॥
अतीन्द्रिय सुख ही सुख जो पाते हैं जितेन्द्रिय।
वे ही शिवसाधक हैं, जिन्हें हो ज्ञान अतीन्द्रिय॥
अतीन्द्रिय ज्ञानानंदमय, शुद्धातम ही है सार।
है सहज ज्ञेय-ध्येय रूप, मुक्ति का आधार॥
शुद्धात्मा प्रभु नित्य निरंजन स्वभाव से॥ प्रभु....॥३॥

तृप्ति सहज ही प्राप्य निज में निज से ही सदा।
है झूठी कल्पना भोगों से तृप्ति न कदा॥
रहते अतृप्त, मूढ़ आत्मज्ञान के बिना।
कितने भव यूँ ही वीत जावें संयम के बिना॥
होते हैं हास्य पात्र जो ले दीप भी गिरते।
पाकर भी आत्मज्ञान फिर जग-जाल में फँसते॥
कल्याण का अवसर गँवावे मूढ़ भाव से॥
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥४॥

संयममय जीवन ही अहो, ज्ञानी को शोभता।
बढ़ती प्रभावना सहज होती है पूज्यता॥
जो त्यागने के योग्य ही, फिर क्यों करूँ स्वीकार।
इससे अधिक क्या कायरता, नरभव की जिसमें हार॥
क्षण भी विलम्ब योग्य नहीं, कल्याणमार्ग में।
निरपेक्ष हो बढ़ना मुझे अब मुक्तिमार्ग में॥
निर्ग्रन्थ हो आराधूँ निज पद सहजभाव से॥ प्रभु....॥५॥

तोड़े कंगन के बंधन, सिर का मौर उतारा।
धनि-धनि प्रभुवर का भाव, जिससे काम था हारा॥
जिन-भावना भाते हुए गिरनार चल दिए।
आसन्नभव्य दीक्षा लेने साथ चल दिए॥
गूँजा था जय-जयकार उत्सव धर्ममय हुआ।
तपकल्याणक का शुभ नियोग देवों ने किया॥
साक्षात् दिगम्बर हुए अत्यन्त चाव से॥ प्रभु....॥६॥

ज्यों ही जाना यह हाल, राजुल हो गयी विह्वल।
होकर सचेत शीघ्र ही, जागृत किया निज बल॥
परिवारी जन तो रागवश, अति खिन्न चित्त थे।
शादी करें किसी और से, समझावते यों थे॥

बोली राजुल मत गालियाँ, मम शील को तुम दो।
सतवंती नारियों का केवल, एक पति ही हो॥
नाता जोड़ा मैंने अब केवल, ज्ञायकभाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥७॥

व्यवहार में भी भाव से श्री नेमि स्वीकारे।
दर्शाकर श्रेयो मार्ग वे, गिरनार पधारे॥
उनका ही पावन मार्ग, अंगीकार है मुझे।
उनके द्वारा त्यागे भोगों, की चाह नहीं मुझे॥
आनंदित हो मोदन करो, मैं होऊँ आर्यिका।
छोडूँ स्त्रीलिंग नाशूँ, दुखमय बीज पाप का॥
धारूँ निवृत्तिमय दीक्षा अति हर्षभाव से॥ प्रभु....॥८॥

मंगलमय ऐसे अवसर में, आँसू ना बहाओ।
आनंदमय जिनमार्ग, कुछ विकल्प मत लाओ॥
आदर्श रूप नेमि प्रभु का अनुसरण करो।
परभावों से है भिन्न आतम अनुभवन करो॥
होता नहीं स्त्री-पुरुष व क्लीव आत्मा।
ध्रुव एक रूप ज्ञानमय है शुद्ध आत्मा॥
परमार्थ प्रतिक्रमण करो, सहज भाव से॥ प्रभु....॥९॥

कुछ मोहवश संकोचवश, भवि चूक ना जाना।
साधो परम उत्साह से, शंका नहीं लाना॥
उत्कृष्ट समयसार से, कुछ अन्य नहीं है।
अनुभव प्रमाण स्वयं करो, धोखा नहीं है॥
शुद्धात्मा के ध्यान में, सब कर्म नशायें।
आत्मा बने परमात्मा गुण सर्व विलसायें॥
अनुभूत-मग दर्शाया प्रभु, वीतरागभाव से॥ प्रभु...॥१०॥

सम्बोधन करके यों राजुल, गिरनार को गई।
वन्दन कर नेमिनाथ को, वह आर्यिका हुई॥
नेमीश्वर तो मुक्ति गये, वह स्वर्ग को गई।
पावन गाथा वैराग्यमय, विख्यात है हुई॥
प्रेरित करे भव्यों को, सम्यक् निवृत्ति मार्ग में।
मैं भी विचरूँ साक्षात् प्रभु निर्ग्रन्थ मार्ग में॥
हो सहज सफल, भावना अंतरंग भाव से।
प्रभु सम ही भाऊँ भावना, छूटूँ विभाव से॥११॥

श्री यशोधर गाथा

धन्य यशोधर मुनि-सी समता, मम परिणति में प्रगटावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावे॥टेक॥

एक दिवस जंगल में मुनिवर, आतम ध्यान लगाया है।
जैन धर्म प्रति द्वेष धरे, श्रेणिक मृगया[1] को आया है॥
किन्तु यत्न सब व्यर्थ हुये, कोई शिकार नहिं पाता है।
तभी शिला पर श्री मुनिवर का, पावन रूप दिखाता है॥
जिनकी वीतरागमुद्रा लख, भव-भव के दुःख नश जावें॥ ज्ञाता....॥१॥

जान चेलना के गुरु हैं, तो बदला लेने की ठानी।
क्रूर शिकारी कुत्ते छोड़े, किंचित् दया न उर आनी॥
उन ऋषिवर का साम्यभाव लख, वे कुत्ते तो शान्त हुये।
किन्तु समझ कीलित कुत्तों को, भाव नृपति के क्रुद्ध हुये॥
जैसी होनहार हो जिसकी, वैसी परिणति हो जावे॥ ज्ञाता....॥२॥

देखो सबका स्वयं परिणमन, निमित्त नहीं कुछ करता है।
नहीं प्रेरणा, मदद, प्रभावित कोई किसी को करता है॥
वस्तु स्वभाव न जाने मूरख, व्यर्थ खेद अभिमान करे।
ठाने उद्यम झूठे जग में, सदाकाल आकुलित रहे॥

१. शिकार

छोड़ निमित्ताधीन दृष्टि निज भाव लखे सुख ही पावे।
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावे॥३॥

तत्क्षण सर्प भयंकर देखा, मार गले में डाल दिया।
क्रूर रौद्र परिणामों से, तब नरक सातवाँ बंध किया॥
अट्टहास कर घर आया, पर तीन दिनों तक व्यस्त रहा।
समाचार देने चौथे दिन, सती चेलना पास गया॥
मोही पाप बंध करके भी देखो कैसा हरषावे॥ ज्ञाता....॥४॥

सुनकर दुखद भयानक घटना, भक्ति उर में उमड़ानी।
त्याग अन्न जल उसी समय, उपसर्ग निवारण की ठानी॥
श्रेणिक बोला अरे प्रिये ! क्यों मुनि ने कष्ट सहा होगा।
मेरे आने के तत्क्षण ही, सर्प दूर फैंका होगा॥
अज्ञानी क्या ज्ञानीजन का, अन्तर रूप समझ पावे॥ ज्ञाता.... ॥५॥

बोली तुरन्त चेलना राजन्! यदि वे सच्चे गुरु होंगे।
उसी अवस्था में अविचल, निजध्यान लीन बैठे होंगे॥
तुमने द्वेष भाव से भूपति, घोर पाप का बंध किया।
मुनि पर कर उपसर्ग, स्वयं को स्वयं दुःख में डाल दिया॥
व्यर्थ कषायें करके प्राणी, खुद ही भव-भव दुख पावे॥ ज्ञाता....॥६॥

आगे-आगे चले चेलना, उर दुख-सुख का मिश्रण था।
कौतूहलमय विस्मय पूरित, श्रेणिक का अन्तस्तल था॥
परमशान्त निजध्यान लीन, मुनिवर को ज्यों ही देखा था।
किया दूर उपसर्ग शीघ्र ही, श्रद्धा से नत श्रेणिक था॥
ज्ञानीजन तो पहले सोचे, मूरख पीछे पछतावे॥ ज्ञाता....॥७॥

धन्य मुनीश्वर साम्यभाव धर, धर्मवृद्धि दोनों को दी।
श्रेणिक और चेलना में नहिं, इष्ट-अनिष्ट कल्पना की॥

पश्चाताप नृपति को भारी, कैसे मुँह दिखलाऊँ मैं।
अश्रुपूर्ण हो गये नेत्र अरु, आत्मघात आया मन में॥
निज दुष्कृत्यों पर अब नृप को, बार-बार ग्लानि आवे॥
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावे॥८॥

मन की बात ऋषीश्वर जानी, बोले नृप क्या सोच रहे।
पाप नहीं पापों से धुलते, आत्मघात क्यों सोच रहे॥
प्राग्भाव है भूतकाल में, ग्लानि चिंता दूर करो॥
धर्म नहीं पहिचाना अब तक, तो अब ही पुरुषार्थ करो॥
जागो तभी सवेरा राजन्! गया वक्त फिर नहिं आवे॥ ज्ञाता....॥९॥

पर्यायें तो प्रतिक्षण बदलें, मैं उन रूप नहीं होता।
आभूषण बहु भाँति बनें, स्वर्णत्व नहीं सोना खोता॥
मत पर्यायों को ही देखो, ध्रुवस्वभाव पर दृष्टि धरो।
परभावों से भिन्न ज्ञानमय, ही मैं हूँ श्रद्धान करो॥
ये ही निश्चय सम्यक् दर्शन, मुक्तिपुरी में ले जावे॥ ज्ञाता....॥१०॥

सच्चे सुख का मार्ग प्रदर्शक, जिनशासन ही सुखकारी।
भावी तीर्थंकर तुम होगे, सोच तजो सब दुखकारी॥
आनंदित होकर श्रेणिक तब, जैनधर्म स्वीकार किया।
अन्तर्दृष्टि धारण करके, सम्यग्दर्शन प्रगट किया॥
आयु बंध भी हीन हो गया, प्रथम नरक में ही जावे॥ ज्ञाता....॥११॥

देखो निमित्त न सुख-दुख देता, झूठी पर की आश तजो।
पर से भिन्न सहज सुख सागर में ही प्रतिक्षण केलि करो॥
दोष नहीं देना पर को, निज में सम्यक् पुरुषार्थ करो।
मोह हलाहल बहुत पिया है, साम्य सुधा अब पान करो॥
साम्यभाव ही उत्तम औषधि, भ्रमण रोग जासों जावे॥
ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ बस, राग-द्वेष विनश जावे॥१२॥

श्री अकलंक-निकलंक गाथा

अकलंक अरु निकलंक दो थे सहोदर भाई।
प्राणों पर खेल की, धर्म की रक्षा सुखदाई॥ टेक॥

धनि-धनि हैं भोगों को न अंगीकार ही किया।
बचपन में ही मुनिराज से ब्रह्मचर्य व्रत लिया॥
व्रत लेकर आनन्दमय जीवन की नींव धराई॥ प्राणों ...॥१॥

तत्त्वज्ञान के अभ्यास में ही चित्त लगाया।
दुर्वासनाओं की जिन्हें, नहीं छू सकी छाया॥
दुर्मोहतम हो कैसे ? ज्ञान ज्योति जगाई॥ प्राणों ...॥२॥

अज्ञान में ही कष्टमय, संयम अरे भासे।
संयम हो परमानन्दमय, जहाँ ज्ञान प्रकाशे॥
इससे ही भेदज्ञान कला मूल बताई ॥प्राणों पर...३॥

बोद्धों का बोलबाला था, जिनधर्म संकट में।
अत्याचारों से त्रस्त थे जिनधर्मी क्षण-क्षण में॥
जिनधर्म की प्रभावना की भावना आई ॥प्राणों पर...॥४॥

माता-पिता ने जब रखा, प्रस्ताव शादी का।
बोले बरवादी का है मूल, स्वांग शादी का॥
दिलवा कर ब्रह्मचर्य, तात ! क्या ये सुनाई ॥प्राणों पर...॥५॥

बोले पिता अष्टाह्निका, में मात्र व्रत दिया।
हे तात ! तुमने कब कहा, हम पूर्णव्रत लिया॥
मुक्ति के मार्ग में नहीं होती है हँसाई ॥प्राणों पर...॥६॥

आजीवन पालेंगे, हम तो ब्रह्मचर्य सुखकारी।
सौभाग्य से पाया है, रत्न ये मंगलकारी॥
भव रोग की इक मात्र ये ही साँची दवाई ॥प्राणों पर...॥७॥

मोदन करो सब ही अहो, हम ब्रह्मचर्य धारें।
जीवन तो धर्म के लिये, हम मौत स्वीकारें॥
आराधना ही सुख स्वरूप मन में समाई।
प्राणों पर खेल की, धर्म की रक्षा सुखदाई॥८॥

आशीष ले माता-पिता से, बौद्ध मठ गये।
प्रच्छन्न बौद्ध रूप में दर्शन सभी पढ़े।
जैनों को शिक्षा पाने की थी सख्त मनाई ॥प्राणों पर...॥९॥

स्याद्वाद पढ़ाते श्लोक एक अशुद्ध हुआ।
आचार्य थे बाहर गये, अकलंक शुद्ध किया॥
श्लोक शुद्ध करना हुआ, गजब दुखदाई॥प्राणों पर...॥१०॥

आचार्य को शंका हुई, कोई जैन होने की।
प्रतिमा दिगम्बर रखकर, आज्ञा दी थी लाँघने की॥
तब धागा ग्रीवा में लपेट, लाँघ गये भाई ॥प्राणों पर...॥११॥

फिर अर्द्ध रात्रि के समय, घनघोर स्वर हुआ।
अरहंत-सिद्ध कहते हुये, सैनिक पकड़ लिया॥
होकर निडर बोले थे हम, जिनधर्म अनुयायी ॥प्राणों पर...॥१२॥

लालच दिये और भय दिखाये, पर नहीं डिगे।
श्रद्धान से जिनधर्म के किंचित् नहीं चिगे॥
झुँझला कर निर्दय होकर, सजा मौत सुनाई ॥प्राणों पर...॥१३॥

पर रात्रि को ही भागे, कारागार से दोई।
टाले कभी टलती नहीं, भवितव्य जो होई॥
पीछे दौड़ाये सैनिक अति ही क्रूरता छाई ॥प्राणों पर...१४॥

निकलंक बोले देखो भाई, आ रही सेना।
हो धर्म की रक्षा, न कोई और कामना॥
छिप जाओ तुम तालाब में, मैं मरता हूँ भाई ॥प्राणों पर...॥१५॥

अकलंक कहा भाई तुम अपने को बचाओ।
निकलंक बोले भ्रात उर में मोह मत लाओ॥
तुम अति समर्थ धर्म की रक्षा में हे भाई ॥प्राणों पर...॥१६॥

जल्दी करो अब न समय, मैं भावना भाऊँ।
हो धर्म की प्रभावना, मैं शीश नवाऊँ॥
जबरन् छिपा दिया, अहो धनि युक्ति यह आई ॥प्राणों पर...॥१७॥

धोबी को लेकर साथ फिर निकलंक थे दौड़े।
आये निकट थे सैनिकों के शीघ्र ही घोड़े॥
आदर्श छोड़ गये अपना शीश कटाई॥प्राणों पर...॥१८॥

होकर विरक्त ली अहो, अकलंक मुनि दीक्षा।
शास्त्रार्थ में पाकर विजय, की धर्म की रक्षा॥
जिनधर्म की पावन पताका, फिर से फहराई॥ प्राणों पर...॥१९॥

राजा हिम शीतल की सभा, में था हुआ विवाद।
छह माह तक बाँटा था, श्री जिनधर्म का प्रसाद॥
परदा हटा घट फोड़ तारा देवी भगाई॥ प्राणों ...॥२०॥

निकलंक का उत्सर्ग तो, सोते से जगाये।
अकलंक का दर्शन अहो, सद्‌बोध कराये॥
जिनशासन के नभ मण्डल में रवि-शशि सम दो भाई॥ प्राणों पर.॥२१॥

अकलंक अरु निकलंक का आदर्श अपनायें।
युक्ति सद्‌ज्ञान, आचरण से धर्म दिपायें॥
मंगलमय ब्रह्मचर्य होवे हमको सहाई॥ प्राणों पर...॥२२॥

सर्वहितस्य शान्तमनसो नग्नान् जिनानां विदः। (वृहत्संहिता ६०/९)

प्राणीमात्र के लिए हितकारी प्रशान्तमूर्ति नग्न दिगम्बर मुद्रा जिनेन्द्र परमात्मा की जानना चाहिए।

सेठ सुदर्शन गाथा

धन्य धन्य हैं सेठ सुदर्शन, अद्भुत शील-व्रतधारी।
जिनकी पावन दृढ़ता से, कुटिला नारी भी हारी।।टेक।।

इक रोज महल में बैठे, दासी ने आय बताया।
तव मित्र बहुत घबड़ाये, इस क्षण ही तुम्हें बुलाया।।
कुछ छल को समझ न पाये, थे सरल परिणति धारी।
वैसे ही दौड़े पहुँचे, पर वहाँ थी लीला न्यारी।। जिनकी ...।।१।।

ज्यों सेठ गये थे अन्दर, दरवाजा बंद सु-कीना।
आसक्ति भरी नारी ने, निर्लज्ज प्रदर्शन कीना।।
वह मित्र गया था बाहर, कपिला ने चाल विचारी।
हो सेठ रूप पर मोहित, उसने की थी तैयारी।।जिनकी ...।।२।।

फँस गये धर्म संकट में, तब सेठ विचार सु-कीना।
इससे तो मरण भला है, निज शील बिना क्या जीना?
तब हँसे वचन यों बोले, वे अनेकांत के धारी।
मैं तो हूँ अरे नपुंसक, तूने पहिले न विचारी।। जिनकी ...।।३।।

तत्क्षण ही घृणाभाव कर, हट गयी स्वयं ही पतिता।
तब सेठ सहज घर आये, लेकर अपनी पावनता।
पुरुषत्व शीलधारी का, नहीं होय कदापि विकारी।
नहीं धर्म मार्ग से च्युत हो, रहते ज्ञानी अविकारी।। जिनकी ...।।४।।

ओ भव्य समझना यों ही, आत्मा में शक्ति अनंता।
पर ज्ञाता-दृष्टा ही है, नहीं होवे पर का कर्त्ता।।
आत्मन् अब भी तो चेतो, छोड़ो भ्रांति दुखकारी।
कर्त्तृत्व-विकल्प न लाओ, तब सुख पाओ अविकारी।।जिनकी ...।।५।।

इक रोज वसंतोत्सव में, जाते थे सब नर-नारी।
अभया रानी भी जावे, कपिला भी जाये बेचारी।।

तब रथ में आती देखी, सुत गोद लिये एक नारी।
अभया रानी ने पूछा, किसके सुत सुन्दर प्यारी।।
जिनकी पावन दृढ़ता से, कुटिला नारी भी हारी।।६।।

दासी ने तुरन्त बताया, जो सेठ सुदर्शन नामी।
उनके ही हैं सुत नारी, सुनकर कपिला मुस्कानी।।
है सेठ नपुंसक कैसे फिर वह नारी सुत धारी।
हँस कर रानी तब बोली, धनि सेठ शील व्रतधारी।। जिनकी ...।।७।।

चाहा था उन्हें फंसाना, ठग गयी स्वयं ही तू तो।
मूर्खा तू समझ न पाई, तत्काल सेठ युक्ति को।।
मैं तो मूर्खा ही ठहरी, बोली झुंझला बेचारी।
वश में करके दिखलाओ, तुम रूप बुद्धि बलधारी।। जिनकी ...।।८।।

रानी बातों में आयी, बुद्धि विवेक विसरानी।
दूती को लालच देकर, तब सेठ मिलन की ठानी।।
धर्मात्मा सेठ सुदर्शन, धर नग्न दशा अविकारी।
मरघट में ध्यान लगाते, चौदश निशि धीरज धारी।। जिनकी ...।।९।।

दूती ने जाल बिछाया, नर मूर्ति तुरत बनवायी।
कंधे पर रखकर उसको, महलों के द्वारे आयी।।
ज्यों द्वारपाल ने रोका, दूती ने मूर्ति गिरादी।
व्रत टूट गया रानी का, तोहि सजा दिलाऊँ भारी।। जिनकी ...।।१०।।

यों द्वारपाल वश कीने, तब उठा सेठ को लाई।
बैठाया जाय पलंग पर, रानी अति ही हरषाई।।
भारी चेष्टायें कीनी, यों रात गुजर गयी सारी।
पर ध्यान मग्न थे श्रेष्ठी, उपसर्ग समझ अतिभारी।। जिनकी ...।।११।।

ध्रुव का अवलम्बन जिनके, विचलित नहीं होते जग में।
उपसर्ग परीषह आवें, पर सतत बढ़ें शिवमग में।।

है आत्मज्ञान की महिमा, हो अद्भुत समता धारी।
उनकी गरिमा वर्णन में, इन्द्रों की बुद्धि हारी॥
जिनकी पावन दृढ़ता से, कुटिला नारी भी हारी॥१२॥

जब विफल स्वयं को जाना, रानी षडयंत्र रचाया।
बिखराकर वस्त्राभूषण, तब उसने शोर मचाया॥
तत्क्षण सब दौड़े आये, नृप क्रोध किया अतिभारी।
कुछ न्याय अन्याय न जाना, शूली की सजा सुना दी॥ जिनकी ...॥१३॥

शूली के तख्ते पर थे, बैठे वे धर्म धुरन्धर।
किंचित् घबड़ाहट नाहीं, डूबे समता के अन्दर॥
तब नभ से पुष्प बरसते, सिंहासन रच गया भारी।
इन्द्रादिक स्तुति करते, जय-जय बोलें नर-नारी॥ जिनकी ...॥१४॥

चम्पापुरि धन्य हुयी थी, अरु वृषभदत्त यश पाया।
जिनके सुत सेठ सुदर्शन, यह चमत्कार दिखलाया॥
पिछले ग्वाले के भव में, श्रद्धा जिनधर्म की धारी।
फिर श्रेष्ठी सुत होकर यों, महिमा पाई सुखकारी॥ जिनकी ...॥१५॥

चरणों में नत हो भूपति, पछताते क्षमा कराते।
तब सेठ सुदर्शन बोले, हम दीक्षा ले वन जाते॥
नहीं दोष किसी का कुछ भी, कर्मों की लीला न्यारी।
कर्मों का नाश करेंगे, निर्ग्रन्थ दशा धर प्यारी॥ जिनकी ...॥१६॥

उत्तम सुयोग पाकर भी, मैं समय न व्यर्थ गँवाऊँ।
भोगों के दुख बहु पाये, अब इनमें नाहिं फँसाऊँ॥
नश्वर अशरण जगभर में, शुद्धातम ही सुखकारी।
निज में ही तृप्ति पाऊँ, संकल्प जगा हितकारी॥ जिनकी ...॥१७॥

मुनि हो तप करते-करते, पटना नगरी में आये।
उपसर्ग वहाँ भी भारी, पर किंचित् नहीं चिगाये॥

फिर शुक्लध्यान के द्वारा, कर्मों की धूल उड़ा दी।
प्रभु पौष शुक्ल पंचमि को, निर्वाण गये सुखकारी॥ जिनकी ...॥१८॥

है निमित्त अकिंचित्कर ही, किंचित् नहिं सुख-दुख दाता।
निज की सम्यक् दृढ़ता से, मिटती है सर्व असाता॥
प्रभु यही भावना मेरी, तुमसा पुरुषार्थ सु-धारी।
होकर शिवपदवी पाऊँ, चरणों में ढोक हमारी॥ जिनकी ...॥१९॥
भवि पढ़े सुने यह गाथा, हो तत्त्वज्ञान के धारी।
निज सम नारी भगनी सम, लघु सुता, बड़ी महतारी॥
आत्मन् ज्ञानाराधन से, उपजें नहीं भाव विकारी।
सारे ही जग में फैले यह, शील धर्म सुखकारी॥ जिनकी ...॥२०॥

श्री देशभूषण-कुलभूषण गाथा

आओ अहो आराधना के मार्ग में आओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥टेक॥

श्री देशभूषण-कुलभूषण भगवान की गाथा।
हो सबको ज्ञान विरागमय, आनन्द प्रदाता॥
दोनों भाई बचपन में ही गुरुकुल चले गये।
सुध-बुध नहीं घर की कुछ अध्ययन में ही लग गये॥
गृह त्यागी लक्षण विद्यार्थी का चित्त में लाओ॥ आनन्द... ॥१॥

साहित्य धर्म शास्त्र न्याय आदि पढ़ लिये।
थोड़े समय में ही सहज विद्वान हो गये॥
पुरुषार्थ विशुद्धि विनय से ज्ञान विकसाता।
गुरु तो निमित्त मात्र ज्ञान अन्तर से आता॥
अन्तर्मुखी पुरुषार्थ से सद्ज्ञान को पाओ॥ आनन्द... ॥२॥

कितने भव यों ही खो दिए निज ज्ञान के बिना।
सुख लेश भी पाया नहीं, निज भान के बिना॥

पुण्योदय से वैभव पाये, अरु भोग भी कितने।
उलझाया तड़प-तड़प दुख पाया, मोहवश इसने॥
जिनवाणी का अभ्यास कर, अब होश में आओ॥
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥३॥

पढ़-लिख कर घर आने की थी तैयारी जिस समय।
रे इन्द्रपुरी सम नगरी की शोभा थी उस समय॥
उल्लास का वातावरण चारों तरफ छाया।
खो बैठे अपनी सुध-बुध ऐसा रंग वर्षाया॥
हो मूढ़ राग-रंग में, ना निज को भुलाओ॥ आनन्द... ॥४॥

निज कन्यायें लेकर, अनेक राजा आये थे।
देखा नहीं सुनकर ही वे, मन में हरषाये थे॥
सपने संजोये थीं कन्यायें, उनको वरने की।
उनमें भी होड़ लगी थी, उनके चित्त हरने की॥
पर होनहार सो ही होवे विकल्प मत लाओ॥ आनन्द... ॥५॥

आते हुए उन राजपुत्रों को दिखी कमला।
उल्लास से जिसकी दिखी तन कान्ति अति विमला॥
कर्मोदय वश दोनों ही उस पर लुब्ध थे हुए।
मन में विवाह की उससे ही लालसा लिए॥
लखकर विचित्रता अरे सचेत हो जाओ॥ आनन्द... ॥६॥

इक कन्या को दो चाहते, संघर्ष हो गया।
दोनों के भ्रातृप्रेम का भी हास हो गया॥
धिक्कार इन्द्रिय भोगों को जो सुख के हैं घातक।
रे भासते हैं मूढ़ को ही सुख प्रदायक॥
कर तत्त्व का विचार श्वानवृत्ति नशाओ॥ आनन्द... ॥७॥

इच्छाओं की तो पूर्ति सम्भव ही नहीं होती।
मिथ्या पर-लक्ष्यी वृत्ति तो निजज्ञान ही खोती॥

सुख का कारण इच्छाओं का अभाव ही जानो।
उसका उपाय आत्मसुख की भावना मानो॥
भवि भेदज्ञान करके आत्मभावना भाओ॥ आनन्द... ॥८॥

आते देखा भ्राताओं को वह कन्या हरषायी।
भाई-भाई कहती हुई, नजदीक में आयी॥
तब समझा यह तो बहिन है जिस पर ललचाये थे।
ग्लानि मन में ऐसी हुई, कुछ कह नहिं पाये थे॥
नाशा विकार ज्ञान से, प्रत्यक्ष लखाओ॥ आनन्द... ॥९॥

ज्यों ही जाना हम भाई हैं, यह तो पावन भगिनी।
फिर कैसे जागृत हो सकती है, वासना अग्नि॥
त्यों ही मैं ज्ञायक हूँ ऐसी अनुभूति जब होती।
तब ही रागादिक परिणति तो सहज ही खोती॥
अतएव स्वानुभूति का पुरुषार्थ जगाओ॥आनन्द... ॥१०॥

अज्ञान से उत्पन्न दुख तो ज्ञान से नाशे।
अस्थिरता जन्य विकार भी थिरता से विनाशे॥
भोगों के भोगने से इच्छा शान्त नहीं होती।
अग्नि में ईंधन डालने सम शक्ति ही खोती॥
अतएव सम्यग्ज्ञान कर, संयम को अपनाओ॥ आनन्द... ॥११॥

दोनों कुमार सोचते थे, प्रायश्चित सुखकर।
इसका यही होवेगा, हम तो होंय दिगम्बर॥
दुनिया की सारी स्त्रियाँ, हम बहिन सम जानी।
आराधें निज शुद्धात्मा दुर्वासना हानी॥
निष्काम आनंदमय परम जिनमार्ग में आओ॥ आनन्द... ॥१२॥

ऐसा विचार करते ही सब खेद मिट गया।
अक्षय मुक्ति के मार्ग का फिर, द्वार खुल गया॥

अज्ञानी पश्चात्ताप की अग्नि में जलते हैं।
ज्ञानी तो दोष लगने पर प्रायश्चित्त करते हैं॥
शुद्धात्म आश्रित भावमय प्रायश्चित्त प्रगटाओ।
आनन्द से उल्लास से शिवमार्ग में आओ॥१३॥

हम कर्म के प्रेरे बहिन, दुर्भाव कर बैठे।
अज्ञानवश निज शील का उपहास कर बैठे॥
करना क्षमा हम ज्ञानमय दीक्षा को धरेंगे।
अज्ञानमय दुष्कर्मों को निर्मूल करेंगे॥
समता का भाव धार कर कुछ खेद नहिं लाओ॥ आनन्द... ॥१४॥

रोको नहीं तुम भी बहिन, आओ इस मार्ग में।
दुर्मोह वश अब मत बढ़ो संसार मार्ग में॥
निस्सार है संसार बस शुद्धात्मा ही सार।
अक्षय प्रभुता का एक ही है आत्मा आधार॥
निर्द्वन्द निर्विकल्प हो निज आत्मा ध्याओ॥ आनन्द... ॥१५॥

ले के क्षमा करके क्षमा, गुरु ढिंग चले गये।
आया था राग घर का, ज्ञानी वन चले गये॥
संग में चले निर्मोही, रागी देखते रहे।
धारा था जैन तप, उपसर्ग घोर थे सहे॥
पाया अचल, ध्रुव सिद्धपद भक्ति से सिर नाओ॥ आनन्द... ॥१६॥

सती अनन्तमती गाथा

ब्रह्मचर्य की अद्भुत महिमा, सुनो भव्यजन ध्यान से।
सती शिरोमणि अनन्तमती, की गाथा जैन पुराण से॥टेक॥

बहुत समय पहले चम्पानगरी में, प्रियदत्त सेठ हुये।
न्यायवान गुणवान बड़े, धर्मात्मा अति धनवान थे वे॥

पुत्री एक अनन्तमती, इनकी प्राणों से प्यारी थी।
संस्कारों में पली परम विदुषी रुचिवंत दुलारी थी॥
सदाचरण की दिव्य मूर्ति निज उन्नति करती ज्ञान से॥सती...॥१॥

मंगलपर्व अठाई आया, श्री मुनिराज पधारे थे।
स्वानुभूति में मग्न रहे, अरु अद्भुत समता धारे थे॥
धर्मकीर्ति मुनिराज धर्म का, मंगल रूप सुनाया था।
श्रद्धा, ज्ञान, विवेक, जगा, वैराग्य रंग बरसाया था॥
धन्य-धन्य नर-नारी कहते, स्तुति करते तान से॥सती...॥२॥

प्रियदत्त सेठ ने धर्म पर्व में, ब्रह्मचर्य का नियम लिया।
सहज भाव से अनन्तमती ने, ब्रह्मचर्य स्वीकार किया॥
जब प्रसंग शादी का आया, बोली पितु क्या करते हो।
ब्रह्मचर्य-सा नियम छुड़ा, भोगों में प्रेरित करते हो॥
भोगों में सुख किसने पाया, फँसें व्यर्थ अज्ञान से॥सती...॥३॥

व्रत को लेना और छोड़ना, हँसी खेल का काम नहीं।
भोगों के दुख प्रत्यक्ष दीखें, अब तुम लेना नाम नहीं॥
गज मछली अलि पतंग हिरण, इक-इक विषयों में मरते हैं।
फिर भी विस्मय मूढ़, पंचेन्द्रिय भोगों में फँसते हैं॥
मिर्च भरा ताम्बूल चबाते, हँसते झूठी शान से॥सती...॥४॥

चिंतामणि सम दुर्लभ नरभव, नहिं इनमें फँस जाने को।
यह भव हमें सु-प्रेरित करता, निजानंद रस पाने को॥
भोगों की अग्नि में अब यह, जीवन हवन नहीं होगा।
क्षणिक सुखाभासों में शाश्वत सुख का दमन नहीं होगा॥
निज का सुख तो निज में ही है देखो सम्यग्ज्ञान से॥सती...॥५॥

अब मैं पीछे नहीं हटूँगी, ब्रह्मचर्य व्रत पालूँगी।
शील बाढ़ नौ धारण करके, अन्तर ब्रह्म निहारूँगी॥

नाहिं बालिका मुझको समझो, मैं भी तो प्रभु सम प्रभु हूँ।
भय शंका का लेश न मुझमें, अनन्त शक्तिधारी विभु हूँ॥
मूढ़ बनो मत, स्व-महिमा पहिचानो भेद-विज्ञान से॥सती...॥६॥

मिट्टी का टीला तो देखो, जल-धारा से बह जाता।
धारा ही मुड़ जाती, लेकिन अचल अडिग पर्वत रहता॥
ध्रुव कीली के पास रहें, वे दाने नहिं पिस पाते हैं।
छिन्न-भिन्न पिसते हैं वे ही, कीली छोड़ जो जाते हैं॥
निजस्वभाव को नहीं छोड़ना, सुनो भ्रात अब कान दे॥सती...॥७॥

अनन्तमती की दृढ़ता देखी, मात-पिता भी शांत हुये।
आनन्दित हो धर्मध्यान में, वे सब ही लवलीन हुये॥
झूला झूल रही थी इक दिन, कुण्डलमण्डित आया था।
कामासक्त हुआ विद्याधर, जबरन् उसे उठाया था॥
पर पत्नी के भय के कारण, छोड़ा उसे विमान से॥सती...॥८॥

एकाकी वन में प्रभु सुमरे, भीलों का राजा आया।
कामवासना पूरी करने को, वह भी था ललचाया॥
देवों द्वारा हुआ प्रताड़ित, सती तेज से काँप गया।
पुष्पक व्यापारी को दी, उसने वेश्या को बेच दिया॥
देखो सुर भी होंय सहाई, सम्यक् धर्मध्यान से॥सती...॥९॥

वेश्या ने बहु जाल विछाया, पर वह भी असमर्थ रही।
भेंट किया राजा को उसने, सती वहाँ भी अडिग रही॥
देखो कर्मोदय की लीला, कितनी आपत्ति आयी।
महिमा निजस्वभाव की निरखो, सती न किंचित् घबरायी॥
कर्म विकार करे नहीं जबरन्, व्यर्थ रुले अज्ञान से॥सती...॥१०॥

निकल संकटों से फिर पहुँची, पद्मश्री आर्यिका के पास।
निजस्वभाव साधन करने का, मन में था अपूर्व उल्लास॥
उधर दुखी प्रियदत्त मोहवश, यहीं अयोध्या में आये।

बिछुड़ी निज पुत्री को पाकर, मन में अति ही हरषाये॥
घर चलने को कहा तभी, दीक्षा ली हर्ष महान से॥सती...॥११॥

निजस्वरूप विश्रान्तिमयी, इच्छा निरोध तप धारा था।
रत्नत्रय की पावन गरिमामय, निजरूप सम्भाला था॥
मगन हुयी निज में ही ऐसी, मैं स्त्री हूँ भूल गयी।
छूटी देह समाधिसहित, द्वादशम स्वर्ग में देव हुयी॥
पढ़ो-सुनो ब्रह्मचर्य धरो, सुख पाओ आतमज्ञान से॥सती...॥१२॥

परभावशून्य चिद्भावपूर्ण में परमब्रह्म श्रद्धा जागे।
विषय-कषायें दूर रहें, मन निजानंद में ही पागे॥
ये ही निश्चय ब्रह्मचर्य, आनंदमयी मुक्ति का द्वार।
संकट त्राता आनन्द दाता, इससे ही होवे उद्धार॥
अतः आत्मन् उत्तम अवसर, बनो स्वयं भगवान-से।
सती शिरोमणि अनन्तमती की गाथा जैन पुराण से॥सती...॥१३॥

वस्तुतः आराध्य के गुणों में अनुरागी होकर उन्हें अपने में ही प्रगट करने के लिए उत्साहित होना पूजा है। अष्ट द्रव्यों का अवलम्बन तो मात्र चंचल उपयोग को एकाग्र करने का मात्र बाह्य साधन है।

निर्दोष एवं निर्वाहक होने से प्रभु को इन अष्ट द्रव्यों की किञ्चित् मात्र आवश्यकता नहीं है, तभी तो कहा है –

अष्ट द्रव्य ही फिर क्यों यों तो अनेक भेंटें हैं प्रभुवर।
किन्तु न तुमको आवश्यकता रही एक की भी जिनवर।
भक्ति भाव जोड़ने को यह मैंने उपक्रम ठाना है।
पाप मैल धोने को मैंने यह सब किया बहाना है॥

श्री चौबीस तीर्थंकर स्तुति (खण्ड-४)

श्री आदीश्वर स्तुति

आदीश्वर स्वामी, वन्दूँ मैं बारम्बार।
धन्य घड़ी प्रभु दर्शन पाये, वन्दूँ बारम्बार॥टेक॥

कर्मभूमि की आदि में, मुक्तिमार्ग अविकार।
दर्शायो आनन्दमय, कियो परम-उपकार॥१॥

परम-शान्तमुद्रा अहो, भेदज्ञान दर्शाय।
दिव्यध्वनि सुनि आपकी, विभ्रम सर्व पलाय॥२॥

भव्य अनेकों तिर गये, ले निजपद आधार।
इस अशरण संसार में, आपहि तारण हार॥३॥

मुक्ति मार्ग प्रभु आपका, हमें आज भी प्राप्त।
भेदज्ञानियों से अहो, निज में ही हे आप्त॥४॥

प्रभुता प्रभुवर आप सम, दीखे अन्तर माँहिं।
होय परम निर्ग्रन्थता, भाव सहज उमगाहिं॥५॥

नहीं प्रयोजन जगत से, चाह न रही लगार।
तृप्त स्वयं में ही रहूँ, सहजरूप सुखकार॥६॥

श्री आदिनाथ स्तवन

अहो आदि स्वामी शरण तेरी आया।
आनन्द मेरे उर न समाया॥टेक॥

पिता नाभिराजा, मरूदेवी माता।
करम भूमि की आदि में हे विधाता॥
सहज लोक जीवन भी तुमने सिखाया॥अहो..॥१॥

निधन देख नीलांजना का हे जिनवर।
अंतर से वैराग्य जागा था सुखकर॥
अहो देव निर्ग्रन्थ पद अपनाया॥अहो..॥२॥

इच्छा-निरोधमयी तप सु-कीना।
हने कर्म घाति, अर्हंत पद सु-लीना॥
धर्मतीर्थ भव्यों को प्रभु जी बताया॥अहो..॥३॥

यही भावना मैं भी जिनमार्ग पाऊँ।
परम ध्येय ध्रुवरूप ज्ञायक सु ध्याऊँ॥
सहज भक्ति से शीश चरणों में नाया॥ अहो..॥४॥

इन्द्रिय सुखों की न, प्रभु कामना है।
विनाशीक वैभव की, अब चाह ना है॥
शाश्वत विभव मैंने अन्तर में पाया॥ अहो..॥५॥

श्री अजितनाथ स्तुति

अजित जिनेश्वर साँचे ईश्वर, नमूँ नमूँ मैं अविकारी।
मोह तिमिर हर ज्ञान दिवाकर, शोभे मूरति अति प्यारी॥टेक॥

स्वाश्रय से ही मोह जीतकर, परम जितेन्द्रिय आप हुए।
ध्यान मग्न हो घातिकर्म तज, तीन लोक के नाथ हुए॥
धर्मतीर्थ का किया प्रवर्तन सब ही को आनन्दकारी॥१॥

हे स्वामिन् जो तुमको जाने द्रव्य और गुण-पर्यय से।
सो जाने अपना शुद्धातम मोह दूर भगता उससे॥
प्रभु समान ही हो जावे वह, सहज मुक्ति का अधिकारी॥२॥

कल्पवृक्ष अरु चिन्तामणि ये, पुण्य पदारथ इक भव में।
किंचित् कुछ सामग्री देते, नहीं सहायक शिवमग में॥
किन्तु जिनेश्वर भक्ति तेरी निश्चय शिवसुख दातारी॥३॥

हे परमेश्वर यही भावना, तुम सम जाननहार रहूँ।
नहीं प्रयोजन पर से किंचित्, सहज तृप्त अविकार रहूँ॥
परम अहिंसा धर्म जगत में, जयवन्तो मंगलकारी॥४॥

श्री सम्भवनाथ स्तुति

ज्ञानमात्र प्रभु हूँ यह श्रद्धा, अनुभव थिरता रत्नत्रय।
से पर्यय में प्रगटी प्रभुता, हुआ सकल कर्मों का क्षय॥१॥

तीन लोक में परमपूज्य, देवाधिदेव फिर कहलाये।
निरबाधित आनन्द सहज ही, प्रतिक्षण अनुभव में आये॥२॥

सम्यक् हुआ परिणमन प्रभुवर, वन्दनीय हे सम्भवजिन।
मुक्ति-मार्ग निज में ही सम्भव, मोह-द्वेष-रागादिक बिन॥३॥

आत्मविमुख रह कोटि उपायों, से भी शान्ति न पाई है।
मैं करूँ वन्दना सम्भवजिन, निज में ही शान्ति दिखाई है॥४॥

श्री अभिनन्दननाथ स्तुति

अभिनन्दन स्वामी यही भावना सार।
पर से अति निरपेक्ष निराकुल, हो परिणति अविकार॥टेक॥

पुण्योदय की लख सम्पत्ति, हो नहिं हर्ष लगार।
पापोदय की देख विपत्ति, हो न खेद दुखकार॥१॥

भेदज्ञान की धारा वर्ते, शिवस्वरूप शिवकार।
ज्ञाता-दृष्टा रहूँ सहज ही, निज में तृप्ति अपार॥२॥

पर का कुछ स्वामित्व न भासे, कर्तृत्व हो न लगार।
इष्ट-अनिष्ट कल्पना नाशे, हो समता सुखकार॥३॥

धैर्य विघ्न बाधाओं में धर, करूँ सु-तत्त्व विचार।
दोष नहीं पर का कुछ देखूँ, द्रव्यदृष्टि अवधार॥४॥

असफलता में नहिं अकुलाऊँ, पूरव कर्म निहार।
धर्मध्यान में चित्त लगाऊँ, ध्याऊँ निजपद सार॥५॥

संयम प्रति हों प्राण निछावर, लगे नहीं अतिचार।
हो निर्ग्रन्थ समाधि सु पाऊँ, सर्व प्रपंच विडार॥६॥

महाभाग्य से प्रभु को पाया, मन में हर्ष अपार।
चरण शरण में जीवन वीते, अभिनन्दन शत बार॥७॥

श्री सुमतिनाथ स्तुति

जिस मति का विषय स्व-तत्त्व अहो, वही सुमति कहलाती है।
हे सुमतिनाथ तव द्रव्यदृष्टि, अंतर में सुमति जगाती है॥

तव वीतराग सर्वज्ञ दशा, लख राग शून्य और ज्ञान पूर्ण।
निज भाव दृष्टि में आता है, आकुलता नहीं दिखाती है॥

हो नमन कोटिश: प्रभो आपको, अंतर निधि दर्शाते हो।
निधि पाने का भी अंतर में ही, सहज उपाय सुझाते हो॥

ज्यों मिश्री स्वयं मिठास पूर्ण, मैं भी स्वभावत: त्यों सुखमय।
सुख हेतु नहीं, कुछ भी करना, मंगल ध्वनि हृदय गुंजाती है॥

जितने भी करने के विकल्प, वे सब ही दुख उपजाते हैं।
निज पर स्वभाव को भूल मूढ़ कर्तृत्व धार अकुलाते हैं॥

हे नाथ आपका दर्शन कर, सम्यक् प्रतीति जागी उर में।
कर्तापन तज निज भाव लखा, आकुलता नहीं दिखाती है॥

अब यही भावना है जिनवर, उपयोग नहीं बाहर जावे।
बस परम पूज्य जिनवर तुम सम, ही निज स्वभाव में रम जावे॥

सर्वोत्कृष्ट मम परम भाव, चेतन वैभव परमाभिराम।
लखकर निरपेक्ष सहज सुखमय, आल्हाद लहर उमड़ाती है॥

श्री पद्मप्रभनाथ स्तुति

अहो प्रभु पद्म की मूरति, परम आनन्द दाता है।
ध्येय ध्रुवरूप शुद्धातम, सहज अनुभव में आता है॥टेक॥

नशे अविवेक दुखकारी, भगे दुर्मोह तम तत्क्षण।
सर्व दुर्वासना मिटती, ज्ञान सूरज उगाता है॥१॥

ज्यों दृष्टा ज्ञाता हैं जिनवर, त्यों मैं भी दृष्टा ज्ञाता हूँ।
सर्व दोषों से नित न्यारा, शुद्ध चिन्मय दिखाता है॥२॥

मिली सुख शान्ति निज में ही, अपरमित प्रभुता निज में ही।
तृप्त निज में रहूँ स्वामिन्, न बाहर कुछ सुहाता है॥३॥

नहीं अब भय रहा कुछ भी, प्रलोभन भी न कुछ प्रभुवर।
स्वयं सिद्ध सहज परमातम, पूर्ण शाश्वत सुहाता है॥४॥

सहज भाऊँ सहज ध्याऊँ, सहज रम जाऊँ निज में ही।
सहज कट जावें भव बन्धन, मुक्ति पद सहज आता है॥५॥

श्री सुपार्श्वनाथ स्तुति

भगवन सुपार्श्व प्रभुता स्व-पार्श्व, मुझको प्रतीति अब आई है।
है व्यर्थ भटकना बाहर में, प्रभु झूठी भ्रान्ति पलाई है॥१॥

प्रभुता आत्मा में नहिं होती, तो कैसे प्रगट हुई स्वामी।
पर, प्रगट हुई साक्षात् दिखे, तव परिणति में अन्तरयामी॥२॥

मैं भी अन्तर्बल द्वारा प्रभु, निज की महिमा प्रगटाऊँगा।
रागादि स्वयं उत्पन्न न हों, जब निज में ही रम जाऊँगा॥३॥

कर्मादिक भी खुद भग जावें, परमात्म दशा हो जायेगी।
मैं सविनय शीश झुकाता हूँ, कब धन्य घड़ी वह आयेगी॥४॥

श्री चन्द्रप्रभु स्तुति

अमृत झरे चन्द्र से त्यों ही, दिव्यध्वनि प्रभु बरसाई।
सुनकर भव्यजनों की जिनवर, मिथ्या दृष्टि विनसाई॥१॥

शुद्धातम अमृतचन्द्र अहो, रत्नत्रय ही परमामृत।
आधि-व्याधि-उपाधिरहित, आराध्य जगत में है निजपद॥२॥

निजस्वभाव ही एकमात्र, साधन है शिवपद पाने का।
सच पूछो तो निजपद ही, शिवपद है साध्य जमाने का॥३॥

तव दर्शन पाकर चन्द्र प्रभो, आनन्द हृदय में छाया है।
तुमसम ही निज में रम जाऊँ, प्रभु सविनय शीश नवाया है॥४॥

श्री चन्द्रप्रभ स्तवन

नमों नमों आनन्द सहित श्री चन्द्रप्रभु।
नमों नमों उल्लास सहित श्री चन्द्रप्रभु॥टेक॥

चन्द्र कलंकित प्रभो निकलंक, चित्स्वरूप जानो निःशंक।
परम वीतरागी अविकार, सकल विश्व के जाननहार॥१॥

चन्द्राधिक शीतल सुखकार, भव आताप विनाशनहार।
बिन शृंगार सहज मन मोहे, परम सौम्य मुद्रा अति सोहे॥२॥

रत्नत्रयधारी निर्ग्रन्थ, बिना राग दर्शायो पंथ।
द्वेष बिना सब कर्म नशाय, लहो सिद्ध पद शीश नवाय॥३॥

कर्ता-हर्ता प्रभुवर नाहीं, भक्ति से भव-दुख विनसाहीं।
अक्षय विभव मिले जगतेश, निमित्त-नैमित्तिक सहज जिनेश॥४॥

जग से उदासीन जगनाथ, दर्शन पाकर हुआ सनाथ।
आराधूँ निज आतमराम, निज में ही पाऊँ विश्राम॥५॥

श्री चन्द्रप्रभ स्तवन

अशरण जग में चन्द्रनाथ जिन, साँचे शरण तुम्हीं हो।
भवसागर से पार लगाओ, तारण-तरण तुम्हीं हो॥टेक॥

दर्शन पाकर अहो जिनेश्वर, मन में अति उल्लास हुआ।
देहादिक से भिन्न आत्मा, अन्तर में प्रत्यक्ष हुआ॥
आराधन में लगी लगन प्रभु, परमादर्श तुम्हीं हो॥भवसागर.॥१॥

अद्‌भुत प्रभुता झलक रही है, निरखत हुआ निहाल मैं।
रत्नत्रय की निधियाँ बरसे, हुआ सु मालामाल मैं॥
समतामय ही जीवन होवे, प्रभु अवलम्ब तुम्हीं हो॥भवसागर.॥२॥

मोह न आवे क्षोभ न आवे, ज्ञातामात्र रहूँ मैं।
अविरल ध्याऊँ चित्स्वरूप मैं, अक्षय सौख्य रहूँ मैं॥
हो निष्काम वंदना स्वामी, मेरे साथ तुम्हीं हो॥भवसागर.॥३॥

श्री पुष्पदन्त स्तुति

मुक्ति की युक्ति निज में ही, हे सुविधिनाथ दर्शायी है।
निज पूर्ण स्वभाव निरख प्रभुवर, कर्त्तृत्व बुद्धि विनशाई है॥१॥

सम्यक्-प्रतीति अनुभव-थिरता, निज परमभाव में हो जावे।
परभावों से निर्वृत्ति हो, अरु निज में ही थिरता आवे ॥२॥

परमातम खुद ही कहलाये, अरु अनन्त चतुष्टय प्रगटावे।
तब अल्पकाल में कर्म रहित, अविनाशी शिवपद को पावे॥३॥

हे शिवस्वरूप शिवकार अहो! निजज्ञायकतत्त्व दिखाया है।
वन्दन है पुष्पदन्त स्वामी, अनुपम आनन्द सु-पाया है॥४॥

श्री शीतलनाथ स्तुति

शीतलता का स्रोत आत्मा, आज दृष्टि में आया है।
मिथ्या तपन मिटी सब प्रभुवर, मुक्ति मार्ग प्रगटाया है॥

शीतलनाथ जिनेन्द्र आपको, शत-शत बार नमन हो।
अब पुरुषार्थ आप-सा प्रगटे, भव में नहीं भ्रमण हो॥

सर्व समागम मिला आज प्रभु, नहीं बहाने का कुछ काम।
तोड़ सकल जग द्वन्द फन्द, मैं निज में ही पाऊँ विश्राम॥

परम प्रतीति सु उर में जागी, हूँ स्वतन्त्र निश्चय निष्काम।
निज महिमा में मग्न होय प्रभु, पाऊँ शिवपद परम ललाम॥

श्री श्रेयांसनाथ स्तुति

यह श्रेय आपको ही स्वामी, मम परम श्रेय दर्शाया है।
अश्रेय रूप रागादि विकारों का, भ्रम जाल नशाया है॥

मंगलमय मंगलकरन प्रभो, बस वीतराग-विज्ञान कहा।
जिसका आश्रय रागादि शून्य, चिन्मात्र एक शुद्धात्म अहा॥

जग में वे सभी महान हुए, जिन वीतराग-विज्ञान गहा।
अज्ञान राग-द्वेषादि विकारों से चहुँगति में दुख लहा॥

हो गया आज निश्चय प्रभुवर, मुझमें रागादि क्लेश नहीं।
कल्याण धाम परमाभिराम, पाई मैं निर्मलदृष्टि यहीं॥

अब यावत रागादि आवें, मैं निज में नहीं मिलाऊँगा।
नव तत्त्वों से अति भिन्न एक, चिन्मात्र रूप निज ध्याऊँगा॥

मैं करूँ वन्दना यही भावना, निज में ही थिरता पाऊँ।
संकल्प-विकल्प मिटें झूठे, तुम सम ही प्रभुता प्रगटाऊँ॥

श्री वासुपूज्य स्तुति

हे बाल ब्रह्मचारी इन्द्रादिक पूजित वासुपूज्य स्वामी।
निज महिमा दर्शायी जग में सर्वोत्कृष्ट त्रिभुवन नामी॥

जाना मैं निज का निज से, बढ़कर जग में आराध्य नहीं।
व्यर्थ भटकता मूढ़ बना, निज से बाहर सुख साध्य नहीं॥

मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, अब अन्य नहीं कुछ भी चाहूँ।
अन्तर में सुख प्रत्यक्ष लखा, निज अन्तर में ही रम जाऊँ॥

मम ज्ञान मात्र चैतन्य भाव में, शक्ति अनन्त उछलती है।
प्रभु स्वयं शीश झुक जाता है, पाई निज में ही तृप्ति है॥

आत्मकल्याण के लिये ध्रुवफण्ड नहीं ध्रुवदृष्टि चाहिये।

श्री विमलनाथ स्तुति

हे विमलनाथ लख शान्तस्वरूप तुम्हारा।
स्वयमेव दिखावे चित्स्वरूप अविकारा...॥टेक॥

है सहज चतुष्टयमय शाश्वत परमातम।
है नित्य-निरंजन शुद्ध-बुद्ध शुद्धातम॥
ध्रुव अचल अनूपम ध्येय रूप है आतम।
मंगल स्वरूप है स्वयं सिद्ध शुद्धातम॥
अद्‌भुत महिमा मण्डित है जाननहारा। स्वयमेव दिखावे ...॥१॥

एकत्व-विभक्त सहज स्वाभाविक सोहे।
है वचनातीत अचिन्त्य सहज मन मोहे॥
पक्षातिक्रांत अनुभूति रूप सुखकारी।
बस चित्स्वरूप तो चित्स्वरूप अविकारी॥
होकर अन्तर्मुख नाथ प्रत्यक्ष निहारा। स्वयमेव दिखावे...॥२॥

धनि-घड़ी दिवस-धनि सहज प्रभु को पाया।
जिनवर दर्शन कर, फूला नहीं समाया॥
प्रभुवर तुम ही हो साँचे मम उपकारी।
हो भाव नमन चरणों में प्रभु बलिहारी॥
होवे तुम सम निर्मल पुरुषार्थ हमारा। स्वयमेव दिखावे...॥३॥

हे नाथ जगत के स्वाँग दिखें सब फीके।
अभिलाष नहीं कुछ शेष पूर्णता दीखे॥
निर्ग्रन्थ रहूँ निर्ग्रन्थ रूप निज भाऊँ।
स्वामिन्! अविरल निज में ही मग्न रहाऊँ॥
मुक्ति प्रगटे स्वयमेव स्वरूप सम्हारा। स्वयमेव दिखावे...॥४॥

धर्मकार्य का अर्थ है – रत्नत्रय

श्री अनन्तनाथ स्तुति

महाभाग्य से दर्शन पाया, प्रभु अनन्त अम्लान।
तुम्हें देखते दीखे अपना, आतम देव महान॥१॥

अमृतमय है परम अलौकिक, परमानन्द की खान।
परम पारिणामिक ध्रुव ज्ञायक, है शाश्वत भगवान॥२॥

ज्ञायक आश्रय से ही प्रगटे, रत्नत्रय अम्लान।
अकृत्रिम परमातम ज्ञायक, अक्षय प्रभुतावान॥३॥

अपने धर्मों में व्यापक विभु, अद्‌भुत वैभववान।
है समर्थ निज की रचना में, निज से वीरजवान॥४॥

ध्रुव मंगल है लोकोत्तम है, अनन्य शरण गुण खान।
सन्मुख आते अहो जिनेश्वर, हुआ सहज श्रद्धान॥५॥

अमृतमय है रूप आपका, अमृतमय परिणाम।
अमृतमय मुद्रा है जिनवर, वचनामृत सुखखान॥६॥

साँचे देव दिया है प्रभुवर, मुक्ति मार्ग का दान।
हम सम्यक् अनुगामी होकर, करें स्व-पर कल्याण॥७॥

श्री धर्मनाथ स्तुति

हे धर्मनाथ ! महिमा महान, शब्दों से कही न जाती है।
धर्मी शुद्धातम की, अनुभूति में प्रत्यक्ष दिखाती है॥१॥

है स्वानुभूति ही धर्म अहो, जो कर्म-बंध विनशाता है।
दुखमय भवसागर में गिरते, जीवों को शिवसुख दाता है॥२॥

धर्म-धर्म सब कहें परन्तु, धर्म न सच्चा पहिचानें।
ज्ञायकस्वभाव के भान बिना, रागादि भाव में अटकानें॥३॥

हे जिनवर तुमने एकमात्र, वीतरागभाव को धर्म कहा।
जो परम-अहिंसामय रत्नत्रय, अरु दशलक्षण रूप अहा॥४॥

यह पावन धर्म ही मंगलमय, अरु उत्तम शरणभूत स्वामी।
धर्मी है परम-पारिणामिक, ध्रुव चिन्मय ज्ञायक अभिरामी ॥५॥

निजधर्मी की दृष्टि वर्ते, उपयोग स्वयं में थिर होवे।
निष्काम वन्दना धर्मनाथ, मम धर्मरूप परिणति होवे ॥६॥

श्री शान्तिनाथ स्तुति

प्रभु शान्तछवि तेरी, अन्तर में है समाई।
प्रत्यक्ष देख मूरति, शान्ति हृदय में छाई ॥टेक॥

शुभ ज्ञानज्योति जागी, आतमस्वरूप जाना।
प्रत्यक्ष आज देखा, चैतन्य का खजाना॥
जो दृष्टि पर में भ्रमती, वह लौट निज में छाई।
प्रत्यक्ष देख मूरति, शान्ति हृदय में छाई ॥१॥

अक्षय निधी को पाने, चरणों में प्रभु के आया।
पर प्रभु ने मूक रहकर, मुझको भी प्रभु बताया॥
अन्तर में प्रभुता मेरे, निश्चय प्रतीति आई।
प्रत्यक्ष देख मूरति, शान्ति हृदय में आई ॥२॥

हे देव आपको लख, खुद ही हुआ अकामी।
है आश पर की झूठी, मैं पूर्ण निधि का स्वामी॥
पर्याय-हीनता से मुझमें, कमी न आई।
प्रत्यक्ष देख मूरति, शान्ति हृदय में छाई ॥३॥

मम भाव-अभाव शक्ति, पामरता मेंट देगी।
अभाव-भाव शक्ति, प्रभुता विकास देगी॥
निश्चिन्त होय दृष्टि, निज द्रव्य में रमाई।
प्रत्यक्ष देख मूरति, शान्ति हृदय में छाई ॥४॥

सर्वोत्कृष्ट निज प्रभु, तज कर कहीं न जाऊँ।
जिन ! बहुत धक्के खाये, विश्राम निज में पाऊँ॥

हो नमन कोटिशः प्रभु, शिवसुख डगर बताई।
प्रत्यक्ष देख मूरति, शान्ति हृदय में आई ॥५॥

श्री शान्तिनाथ स्तवन

आओ-आओ शान्तिनाथ, मेरे हृदय में आओ।
तिष्ठो तिष्ठो हे जिनेश्वर, मेरे हृदय तिष्ठाओ।
मेरे भावों में जिनेश्वर, एकमेक हो जाओ॥ टेक॥

दर्शन बिन था तड़फता, ज्यों पानी बिन मीन।
आज प्रत्यक्ष निहारकर, आनन्द भयो अक्षीण॥ आओ.॥

मंगलमय मंगलकरण, लोकोत्तम परधान।
दर्शाया शिवमग सहज, तुम्हीं शरण अम्लान॥ आओ.॥

सहज शान्त शुद्धात्मा, तुम प्रसाद से देव।
पाया अन्तर में अहो, नशे क्लेश स्वयमेव॥ आओ.॥

चाह मिटी चिन्ता मिटी, जागा तत्त्व विचार।
यही भावना है विभो, प्रगटें पंचाचार॥ आओ.॥

आज समाई चित्त में, मूरति शान्ति जिनेश।
करूँ वन्दना भावमय, होय कर्म निःशेष॥ आओ. ॥

श्री कुन्थुनाथ स्तुति

मात्र पूरें ही नहीं निर्मूल वांछाएँ करें।
कुछ नहीं देते तदपि, सुखधाम दर्शाते हमें ॥टेक॥

सुखरूप निज को भूल करके, भ्रान्तिवश सुख मानते।
धनि कुन्थु जिन तुम बिन कहें, मम सुख स्वरूप दिखावते ॥१॥

आत्मा स्वयं परमात्मा, तव दिव्यध्वनि का सार है।
आराधना निज की करे, हो जाये भव से पार है ॥२॥

प्रभु दर्श करके तुच्छता, निज रूप में नहिं भासती।
दृष्टि अंतर में टिकी, प्रभुता स्वयं प्रतिभासती ॥३॥

छूटें सभी पर-भाव प्रभुवर, भावना ये ही प्रबल।
विभु प्रगट होवे मुनिदशा, शुद्धात्म संवेदन सबल॥४॥

निज में ही होवे पूर्ण थिरता, पास बैठूँ आपके।
निष्काम सविनय भाव-वंदन, शीश चरणन नायके॥५॥

श्री अरनाथ स्तुति

छोड़ विभूति चक्रवर्ती की, निज वैभव प्रगटाया है।
सम्यक् चारित्र चक्र धार कर, कर्मचक्र विनशाया है॥१॥

धर्मचक्र का किया प्रवर्तन, सिद्धचक्र में जाय बसे।
वस्तुतत्त्व का ज्ञान कराता, श्री जिनवर नयचक्र लसे॥२॥

धर्मचक्र की मुख्य धुरा, सार्थक 'अर' नाम तुम्हारा है।
निजस्वभाव साधक-आराधक, सन्त जनों को प्यारा है॥३॥

दर्शन कर प्रभु भेदज्ञान, निज-पर का मैंने पाया है।
निज स्वभाव में ही रम जाऊँ, सविनय शीश नवाया है॥४॥

श्री मल्लिनाथ स्तुति

हे मल्लि जिनवर हो जितेन्द्रिय, आप सहज स्वभाव से।
यौवन समय जीता मदन, निज ब्रह्मचर्य प्रभाव से॥१॥

पाकर अतीन्द्रिय परमसुख, प्रभु तृप्त निज में ही हुए।
निजभाव घातक भोग-दुःख, स्वीकार ही प्रभु नहीं किए॥२॥

हा ! गर्त में गिरकर तड़पना, और पछताना अरे।
पीकर हलाहल कौन ज्ञानी, आश जीवन की करे॥३॥

निस्सार निज के शत्रु सम, लख भोग-इन्द्रिय परिहरूँ।
अरु इन्द्रियों से ज्ञान निज, बर्बाद नहीं प्रभुवर करूँ॥४॥

आनन्द भोगों में नहीं, निश्चय परमश्रद्धान है।
आनन्द का सागर स्वयं, शुद्धात्मा भगवान है॥५॥

बातों में जग की मैं न आऊँ, अब न धोखा खाऊँगा।
पावन परम पुरुषार्थ करके, शीघ्र निजपद पाऊँगा॥६॥

नवतत्त्व के भीतर निजात्मा, परम मंगलरूप है।
उपयोगरूप अमूर्त चिन्मय, त्रिजग में चिद्रूप है॥७॥

सर्वोत्कृष्ट अमल अबाधित, परमब्रह्म स्वरूप है।
निज में ही रम जाऊँ सुपाऊँ, ब्रह्मचर्य अनूप है॥८॥

आदर्श पथ दर्शक शरण विभु, एक तुम ही हो अहा।
तव दर्श करके नाथ मुझ में, शक्ति निज जागी महा॥९॥

अब न किंचित् भय अहो, आनन्द का नहिं पार है।
संकल्प एवंभूत हो, बस वन्दना अविकार है॥१०॥

श्री मुनिसुव्रतनाथ स्तुति

हे मुनिसुव्रत प्रभु हो सुव्रत, अब यही भावना जागी है।
अविरति लगती है दुखदाई, मिथ्यामति मेरी भागी है॥१॥

परिग्रह बोझासम लगता है, और भोग भुजंग समान लगे।
आनन्द-कन्द अभिराम परम, ज्ञायक में ही उपयोग पगे॥२॥

है धन्य-धन्य निर्ग्रन्थ दशा, आनन्दमय प्रचुर स्वसंवेदन।
विषयों की आशा भी न रही, आरम्भ-परिग्रह बिन जीवन॥३॥

प्रभु सम निज में ही तृप्त रहूँ, रागादि भाव पर जय पाऊँ।
हे निज प्रभुता दर्शक प्रभुवर, चरणों में बलिहारी जाऊँ॥४॥

(सोरठा)

मुनिसुव्रत जिनराज, मुनिव्रत धारूँ चाव सों।
अपने हित के काज, धन्य घड़ी कब आयेगी॥

पाप में भटकना नहीं, पुण्य में अटकना नहीं।

श्री नमिनाथ स्तुति

जय स्याद्वाद के नायक हो, जिन मुक्तिमार्ग विधायक हो।
नमिनाथ प्रभो मैं नमन करूँ, शुद्धात्म तत्त्व दर्शायक हो।।टेक।।
सकल द्रव्य के गुण अनन्त, पर्याय अनन्त सुजानत हो।
प्रभु धन्य धन्य निज में तन्मय, वहाँ इष्ट अनिष्ट न ठानत हो।।१।।
तुम सम ही निज में रम जाऊँ, बस यही भावना होती है।
समतामय शान्तिमयी जीवन प्रति, परम प्रतीति जगती है।।२।।
मैं स्वयं पूर्ण हूँ हे जिनवर, पर की न रही अब अभिलाषा।
चरणों में शत शत वंदन है, मेरा प्रभु मुझ में ही पाया।।३।।

श्री नेमिनाथ स्तुति

ब्रह्ममय परिणति के हो धारक प्रभु,
नेमि जिनवर नमन भाव से नित करूँ।
जग में वैराग्य अनुपम विभो आपका,
आप-सा ही दयाभाव चित्त में धरूँ।।१।।
होके भोगों में अंधा भटकता फिरा,
घात निज-पर का करता रहा हर्ष धर।
आपके दर्श कर दृष्टि सम्यक् मिली,
मेरा चैतन्य चिद्रूप आया नजर।।२।।
हे प्रभो ! भावना आपको ध्याय कर,
आप ही आप-सा आत्म योगी बनूँ।
तज के किंपाक फल सम विषय भोग मैं,
आत्मवैभव का स्वाधीन भोगी बनूँ।।३।।
चाहे अनुकूलता हो अथवा प्रतिकूलता,
होवे समतामयी नाथ परिणति मेरी।
भवरहित भाव चैतन्य में लीन हो,
हे प्रभो अब मिटे मेरी भव-भव फेरी।।४।।

श्री पार्श्वनाथ स्तुति

पारस प्रभु की छवि सुखकारी, वीतराग मूरत मनहारी।।टेक।।
पद्मासन अरु नासा दृष्टि, धर्मामृत की करती वृष्टि।
अद्भुत मुद्रा है हितकारी, पारस प्रभु की छवि सुखकारी।।१।।
निरखत परमानन्द उपजावे, भेद-ज्ञान उर में प्रगटावे।
सब संक्लेश मिटें दुखकारी, पारस प्रभु की छवि सुखकारी।।२।।
प्रभु की महिमा कैसे गावें, इन्द्रादिक भी पार न पावें।
चरित नाथ का मंगलकारी, पारस प्रभु की छवि सुखकारी।।३।।
मन में जिनवर यही भावना, करें आप सम आत्मसाधना।
साम्यभाव हो मंगलकारी, पारस प्रभु की छवि सुखकारी।।४।।
चित्त मलिन नहीं होने पावे, निरतिचार संयम प्रगटावे।
प्रभु चरणों में ढोक हमारी, पारस प्रभु की छवि सुखकारी।।५।।
ऐसा निश्चल ध्यान लगावें, कर्म कलंक समूल नशावें।
पंचमगति पावें अविकारी, पारस प्रभु की छवि सुखकारी।।६।।
दिव्य-शान्तिमय तीर्थ आपका,परमशान्त है तत्त्व आपका।
हो प्रभावना मंगलकारी, पारस प्रभु की छवि सुखकारी।।७।।

श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र

लोहा पारस संगति पाकर, स्वर्ण बने पारस न बने।
पार्श्व प्रभो तव दर्शन से, मम उर में सम्यक् ज्योति जगे।।
तुझ-सी प्रभुता निज अन्तर में ही, होती है साक्षात् मुझे।
निज में ही स्थिरता पाऊँ, वन्दन प्रभु निष्काम तुझे।।

(दोहा)

कर जिनपूजा अष्टविधि, भावभक्ति जिन भाय।
अब सुरेश परमेश थुति, करौं शीश निज नाय।।

प्रभु इस जग समरथ ना कोय, जासों तुम यश वर्णन होय।
चार ज्ञान धारी मुनि थकैं, हमसे मन्द कहा कर सकैं॥२॥

यह उर जानत निश्चय हीन, जिनमहिमा वर्णन हम कीन।
पर तुम भक्ति थकी वाचाल, तिसवस होय कहूँ गुणमाल॥३॥

जय तीर्थंकर त्रिभुवन धनी, जय चंद्रोपम चूड़ामनी।
जय-जय परम धाम दातार, कर्मकुलाचल चूरनहार॥४॥

जय शिव कामिनि कंत महन्त, अतुल अनन्त चतुष्टयवंत।
जय-जय आशभरण बड़भाग, तप लक्ष्मी के सुभग सुहाग॥५॥

जय-जय धर्मध्वजाधर धीर, स्वर्ग-मोक्ष दाता वरवीर।
जय रत्नत्रय रत्नकरण्ड, जय जिन तारण तरण तरंड॥६॥

जय-जय समवशरण शृंगार, जय संशय-वन-दहन तुषार।
जय-जय निर्विकार निर्दोष, जय अनन्त गुणमाणिक कोष॥७॥

जय-जय ब्रह्मचर्यदल साज, काम सुभट विजयी भटराज।
जय-जय मोहमहातरु करी, जय-जय मदकुँजर-केहरी॥८॥

क्रोध-महानल मेघप्रचण्ड, मान-महीधर दामिनदण्ड।
माया-बेल धनंजयदाह, लोभ-सलिल शोषण दिननाह॥९॥

तुम गुणसागर अगम अपार, ज्ञान जहाज न पहुँचे पार।
तट ही तट पर डौले सोय, कारन सिद्ध तहाँ ही होय॥१०॥

तुमरी कीर्तिबेल बहु बढ़ी, यत्न बिना जग मंडप चढ़ी।
अवर कुदेव सुयस निज चहैं, प्रभु! अपने थल ही यश लहैं॥११॥

जगत जीव घूमैं बिन ज्ञान, कीना मोहमहाविष पान।
तुम सेवा विषनाशक जरी, तिंह मुनिजन मिल निश्चय करी॥१२॥

जन्म जरा मिथ्यामत-मूल, जन्म-मरण लागे तहँ फूल।
सो कबहूँ बिन भक्ति कुठार, कटै नहीं दुखफल दातार॥१३॥

कल्पसरोवर चित्रा बेल, कामपोरवा नवनिधि मेल।
चिन्तामणि पारस पाषान, पुण्यपदारथ और महान॥१४॥

ये सब एक जन्म-संयोग, किंचित् सुखदातार नियोग।
त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव, जन्म-जन्म सुखदायक देव॥१५॥

तुम जगबाँधव तुम जगतात, अशरण-शरण विरद विख्यात।
तुम सब जीवन के रखवाल, तुम दाता तुम परमदयाल॥१६॥

तुम पुनीत तुम पुरुष पुरान, तुम समदर्शी तुम सब जान।
जय मुनि-यज्ञ-पुरुष परमेश, तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश॥१७॥

तुम जगभर्त्ता तुम जगजान, स्वामि स्वयंभू तुम अमलान।
तुम बिन तीनकाल तिहुँ लोय, नाहीं शरण जीव को होय॥१८॥

यातैं अब करुणानिधि नाथ, तुम सन्मुख हम जोड़ैं हाथ।
जबलौं निकट होय निर्वान, जग निवास छूटै दुखदान॥१९॥

तबलौं तुम चरणांबुज वास, हम उर होय यही अरदास।
और न कछु वाँछा भगवान, ह्वै दयालु दीजे वरदान॥२०॥

(दोहा)

इहिविधि इन्द्रादिक अमर, कर बहु-भक्तिविधान।
निज कोठे बैठे सकल, प्रभु सनमुख सुख मान॥

जीति कर्मरिपु जे भये, केवललब्धि निवास।
सो श्री पार्श्वप्रभु सदा, करो विघ्नघन नाश॥

आत्मा की आराधना का फल अंनत सुख है – मोक्ष है।
आत्मा की विराधना का फल अंनत दुख है – निगोद है।

पार्श्व प्रभो तव दर्शन से

पार्श्व प्रभो तव दर्शन से, मम मिथ्यादृष्टि पलाई।
मेरा पार्श्व प्रभो अन्तर में, देता मुझे दिखाई॥टेक॥

तेरे जीवन की समता, आदर्श रहे नित मेरी।
तेरे सम निज में दृढ़ता ही, मैटे भव-भव फेरी॥
संकट त्राता आनन्द दाता, ज्ञायकदृष्टि सु पाई॥१॥मेरा...

बैर क्षोभ वश होय कमठ, उपसर्ग किया भयकारी।
नहिं अन्तर तक पहुँच सका, प्रभु अन्तर गुप्ति धारी॥
ज्ञेयमात्र ही रहा कमठ, किंचित् न शत्रुता आई॥२॥मेरा...

आ उपसर्ग धरणेन्द्र निवारा, पद्मा मंगल गाये।
धन्य-धन्य समवृत्तिधारी, किंचित् नहिं हरषाये॥
वीतराग प्रभु घातिकर्म तज, केवल-लक्ष्मी पाई॥३॥मेरा...

आत्मसाधना देख कमठ भी, प्रभु चरणों में नत था।
आत्मबोध पाकर वह भी तो, निज में हुआ विनत था॥
दूर हुए दुर्भाव विकारी, सम्यक्-निधि उपजाई॥४॥मेरा...

निज में ही एकत्व सत्य, शिव सुन्दर संकटहारी।
दिव्यतत्त्व दर्शाती प्रभुवर, मुद्रा दिव्य तुम्हारी॥
दर्पण से मुख त्यों तुमसे, निज निधि मैंने लख पाई॥५॥मेरा...

ज्ञानमात्र निज आत्मभाव, में शक्ति अनन्त उछलती।
रागादिक मल बाहर भागें, शान्ति किलोलें करती॥
शान्ति सिंधु में मगन होय मैं, नमन करूँ सुखदाई॥६॥मेरा...

शास्त्र पढ़कर स्व को पढ़ना,
स्वाश्रय करना, पराश्रय छोड़ना।

वीर जिनेश्वर !

वीर जिनेश्वर अब तो मुझको, मुक्ति मार्ग बतलाओ।
निज को भूल बहुत दुःख पाये, अब मत देर लगाओ॥टेक॥

जाना नहीं आपको मैंने, पंच पाप में लीन हुआ।
आतमहित में रहा आलसी, विषयन माँहिं प्रवीन हुआ।
छूटैं विषय-कषाय प्रभो, ऐसा पुरुषार्थ जगाओ॥निज.॥१॥

पर में इष्ट-अनिष्ट ठानकर, हर्ष-विषाद सु-माना।
पर निरपेक्ष सहज आनन्दमय, ज्ञायकतत्त्व न जाना।
महिमावंत परम ज्ञायक प्रभु, अब मुझको दरशाओ॥निज.॥२॥

आस्रव-बंध हैं दुःख के कारण, संवर-निर्जरा सुख के।
चतुर्गति दुःखरूप अवस्था, सुख मुक्ति में प्रगटे।
अब तो स्वामी शिवपथ में, मुझको भी शीघ्र लगाओ॥निज.॥३॥

ऐसी स्तुति करते-करते, इकदिन मन में आई।
कैसे अन्तस्तत्त्व आत्मन्, बाहर देय दिखाई।
प्रभो आपकी मुद्रा कहती अन्तर्दृष्टि लाओ॥निज.॥४॥

मुक्ति की सच्ची युक्ति पा, अपनी ओर निहारा।
प्रभु-सी प्रभुता निज में लखकर, आनन्द हुआ अपारा।
जागी यही भावना आत्मन्, निज में ही रम जाओ॥निज.॥५॥

दुष्टों से बच पितुगृह आकर, कन्या ज्यों हरषावे।
पितु भी उसको धूमधाम, से निजघर में पहुँचावे।
जग से त्रसित शरण त्यों आया, प्रभु शिवपुर पहुँचाओ॥निज.॥६॥

सत्पुरुष के वचन सुनना दुर्लभ है, विचारना दुर्लभ है, तो अनुभवना दुर्लभ हो – इसमें क्या आश्चर्य ?

श्री महावीर स्तुति

हे वीरनाथ तुम दर्शन कर निज दर्शन करने आये हैं।
हम वीरनाथ की भक्ति कर वैराग्य बढ़ाने आये हैं॥टेक॥

तुमको बिन जाने हे स्वामी, भव-भव में व्यर्थ भ्रमाते थे,
सुख की आशा से विषयों में फंसकर, दुख ही दुख पाते थे।
अब तुम साक्षी में हे जिनवर, शिवमारग पाने आये हैं॥१॥

जब ही देखा जिनरूप अहो, विश्वास सहज ही जागा है,
आतम सुखमय सुख का कारण, दुर्मोह सहज ही भागा है।
प्रभु सहज प्राप्य की प्राप्ति का, पुरुषार्थ जगाने आये हैं॥२॥

घबराया चित्त प्रपंचों से, अब भोग रोग सम लगते हैं,
जिनमें फँसकर मोही प्राणी, नित स्वयं स्वयं को ठगते हैं।
निवृत्तिमय निर्ग्रन्थ दशा, तुम सम प्रगटाने आये हैं॥३॥

निरपेक्ष रहें सब जग भर से, निर्द्वन्द स्वयं में लीन रहें,
निज वैभव में सन्तुष्ट रहें, निज प्रभुता में लवलीन रहें।
प्रभु परमज्योतिमय परमानन्दमय, निजपद पाने आये हैं॥४॥

अन्तर में परमातम देखा, अन्तर में मारग पाया है,
अन्तर दृष्टि जब प्रगट हुई, आनन्द न हृदय समाया है।
मन शान्त हुआ निष्काम भाव से, शीश झुका हर्षाये हैं॥५॥

परपदार्थों को इष्ट-अनिष्ट मानना मिथ्यात्व है।

परवस्तु को ग्रहण करने का भाव ही चोरी है।

स्वांग को असली स्वरूप मानना मायाचारी है।

परभावों की चाह ही अनन्तानुबन्धी लोभ है।

श्री सीमन्धर स्तुति

हे सीमन्धर भगवान शरण ली तेरी,
बस ज्ञाता-दृष्टा रहे परिणती मेरी...........॥टेक॥
निज को बिन जाने नाथ फिरा भव वन में,
सुख की आशा से झपटा उन विषयन में।
ज्यों कफ में मक्खी बैठ पंख लिपटावे,
तब तड़फ-तड़फ दुख में ही प्राण गमावे॥
त्यों इन विषयन में मिली, दुखद भवफेरी। बस ज्ञाता-दृष्टा... ॥१॥
मिथ्यात्व रागवश दुखित रहा प्रतिपल ही,
अरु कर्मबन्ध भी रुक न सका पल भर भी।
सौभाग्य आज हे प्रभो तुम्हें लख पाया,
दुख से मुक्ति का मार्ग आज मैं पाया॥
हो गई प्रतीति न रही मुक्ति में देरी। बस ज्ञाता-दृष्टा..... ॥२॥
सार्थक सीमन्धर नाम आपका स्वामी,
सीमित निज में हो गये आप विश्रामी।
करते दर्शन कर भव सीमित भवि प्राणी,
फिर आवागमन विमुक्त बनें शिवगामी॥
चिरतृप्ति प्रदायक शान्ति छवि प्रभु तेरी। बस ज्ञाता-दृष्टा...... ॥३॥
आत्माश्रय का फल आज प्रभो लख पाया,
निज में रमने का भाव मुझे उमगाया।
निज वैभव सन्मुख तुच्छ सभी कुछ भासा,
दर्शन से पलट गया परिणति का पासा॥
चैतन्य छवि अन्तर में आज उकेरी। बस ज्ञाता-दृष्टा..... ॥४॥
हे ज्ञायक के ज्ञायक चैतन्य विहारी,
मैं भाव वन्दना करूँ परम उपकारी।
अपनी सीमा में रहूँ यही वर पाऊँ,
प्रभु भेद भक्ति तज, निज अभेद को ध्याऊँ॥
अब अन्तर में ही दिखे मुझे सुख ढेरी। बस ज्ञाता-दृष्टा..... ॥५॥

श्री शान्तिनाथ-कुंथुनाथ-अरनाथ स्तुति

हे शान्ति-कुंथु-अरनाथ चित्त हर्षाया।
प्रभु दर्शन कर निजदर्शन मैंने पाया॥टेक॥
इन्द्रिय विषयों की सर्व वासना छूटी।
मिट गयी स्वयं पर्याय-दृष्टि प्रभु झूठी॥
अक्षय ज्ञानानन्द स्वाद जिनेश्वर आया। प्रभु....॥१॥
चक्री इन्द्रादिक पद भी हेय सु-भासे ।
शाश्वत अद्भुत प्रभुता निज-माँहिं प्रकाशे॥
अविकारी चेतन पद स्वामी दर्शाया। प्रभु... ॥२॥
ऐसी प्रभुता अन्यत्र न देय दिखाई।
जिन मुद्रा ही दृष्टि में आज समाई ॥
वह धन्य घड़ी जब प्रगटे भाव जगाया। प्रभु...॥३॥
अब नहीं चाह कुछ रही नहीं कुछ चिंता।
प्रभु चरण शरण पा हुई सहज निश्चिंता॥
निर्द्वन्द हुआ निष्काम भाव प्रगटाया। प्रभु... ॥४॥
हो प्रभु ऐसा पुरुषार्थ परम प्रभु ध्याऊँ।
तज सकल उपाधि बोधि समाधि पाऊँ॥
आनंदित हो चरणों में शीश नवाया। प्रभु... ॥५॥

सर्वोत्कृष्ट

अहो ! देव-गुरु-धर्म तो सर्वोत्कृष्ट पदार्थ हैं, इनके आधार से धर्म है। इनमें शिथिलता रखने से अन्य धर्म किस प्रकार होगा? इसलिए बहुत कहने से क्या ? सर्वथा प्रकार से कुदेव-कुगुरु कुधर्म का त्यागी होना योग्य है।

– मो.मा.प्र., १९२

श्री बाहुबली स्तुति

प्रभु बाहुबली ऐसा बल हो॥ टेक॥
जीतूँ मैं मोह महाभट को, श्रद्धान सहज ही सम्यक् हो।
निज-पर का भेद-विज्ञान रहे, अन्तर शुद्धातम अनुभव हो॥१॥
जड़रूप सदा आकुलतामय, भोगों का नहिं आकर्षण हो।
अध्रुव अशरण दु:खरूप, परिग्रह के प्रति नहिं समर्पण हो॥२॥
हो ज्ञान सहज वैराग्यमयी, वैराग्य ज्ञानमय जिनवर हो।
संकल्प सहित निर्ग्रन्थ मार्ग में, विचरण स्वामी सत्वर हो॥३॥
उपसर्ग परीषह चाहे हों, परिणाम सदा समतामय हो।
दशलक्षण प्रगट सदा वर्ते, आराधन नित मंगलमय हो॥४॥
हो ऐसा निश्चल आत्मध्यान, कर्मों का कर्मों में लय हो।
चैतन्य विभूति ध्रुव अनुपम, प्रगटे भक्ति का प्रभु फल हो॥५॥
प्रभु का स्वरूप मन को भाया, ऐसी ही परिणति मेरी हो।
पुरुषार्थ जगे हो सफल भावना, विभुवर सम्यक् वंदन हो॥६॥

श्री सीमन्धर स्तुति

निज सीमा में रहते प्रभु तुम, वस्तु सीमा दर्शाते हो।
हे सीमन्धर ! निज सीमा में, थिरता का भाव जगाते हो॥
'आत्मा हूँ' संवेदन करते, पर परमात्मा कहलाते हो।
परमातम पद आधारभूत, आतम स्वरूप दर्शाते हो॥
निज आत्मबोध पाकर स्वामी, निज आत्मा में ही रम जाऊँ।
आंशिक शुद्धि जिससे प्रगटी, अब पूर्ण शुद्धि उससे पाऊँ॥
मैं ज्ञानानन्द स्वभावी हूँ, आनन्दित जीवन प्रगटाऊँ।
मैं करूँ वन्दना हे भगवन् ! तुमसम शाश्वत निजप्रभु ध्याऊँ॥

आचार्य श्री जिनसेन गाथा

पूछ उठा अपनी माता से, इक बालक छह साल का।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का।।टेक।।

माँ इस घर में कल-सी, गाने की आवाज नहीं है।
ध्वनि क्यों बदली है ? क्या गानेवाली बदल गयी है ?
माँ बोली बेटा इस घर में, कल एक पुत्र जन्मा था।
ढोलक पर थी बजी बधाई, जिसका बँधा समा था।।
अरुण रूप जिसका विलोक, शरमाया रूप प्रवाल का।। सरल...।।१।।

आज वही मर गया, इसी से सब घर के रोते हैं।
मन में टूटी आशाओं का, व्यर्थ भार ढोते हैं।।
बालक बोला सहजभाव से, माँ क्यों पुत्र मरा है।
कल जन्मा मर गया आज ही, ये तो खेल बुरा है।।
माँ बोली बेटा क्या अचरज, नहीं भरोसा काल का।। सरल...।।२।।

बेटा सबको ही मरना है, जिसने जन्म लिया है।
अनादि काल से इस प्राणी ने, जग में यही किया है।
तो क्या माँ मुझको भी, मरना होगा कभी जहाँ से।
माँ बोली चुप रह पगले, मत ऐसा बोल जुबाँ से।।
जग में बाँका बाल न हो, प्रभु कभी हमारे लाल का।। सरल...।।३।।

माँ क्या कोई है उपाय, जिससे न जीव मर पावे।
क्या दुनिया में ऐसा है, जो यह रहस्य बतलावे।।
माँ बोली इसके ज्ञाता, श्री वीरसेन स्वामी हैं।
मिथ्यातम हर भानु आज के, युग में वे नामी हैं।।
वही पकड़ कर हाथ उठाते, विषयाश्रित कंगाल का।। सरल...।।४।।

सुन उपाय माता से बालक, वीरसेन के पास गया।
हो आनन्द विभोर पकड़, जिसने गुरुचरण सरोज लिया।।
विह्वल हो बोला कि देव मैं, मरने से घबराया हूँ।

आप बचा लोगे मरने से, ऐसा सुनकर आया हूँ।।
तेरे आश्रित बाल न बाँका, होगा मुझ-सम बाल का।।
सरल स्वभावी परम चतुर था, जिसका रूप कमाल का।।५।।

मेरी माँ ने इस उपाय का, ज्ञाता तुम्हें बताया है।
दया करो कातर हो बालक, शरण आपकी आया है।।
चरण पकड़ गुरुवर के बालक, फूट-फूट कर रोया है।
अविरल धारा अश्रु बहाकर, गुरुपद पंकज धोया है।।
विह्वल हो बोला प्रभु कर दो, अन्त जगत जंजाल का।। सरल...।।६।।

गुरु ने लिया उठाय प्रेम से, बालक को बैठाया है।
सुधा गिरा से आश्वासन दे, मन का क्लेश मिटाया है।।
कालान्तर में कुशलबुद्धि पर, रंग चढ़ा जिनवाणी का।
पाया मर्म अपूर्व निराकुल, बोध आत्मकल्याणी का।।
गुरु प्रसाद से खुला भेद, शिवपुर की सीधी चाल का।। सरल...।।७।।

वीरसेन गुरुवर ने ही, इस बालक को जिनसेन कहा।
दीक्षा दे अपने समान ही, इन्हें किया मुनिराज महा।।
वीरसेन जिनसेन परम गुरु, मेरे सिर पर हाथ धरो।
चन्द्रसेन से तुच्छ दास का भी, प्रणाम स्वीकार करो।।
तेरा दास दुःखी मैं क्यों? उत्तर दें इसी सवाल का।।सरल... ।।८।।

नित्ये नैमित्तिके चैव जिनबिम्ब महोत्सवे।
शैथिल्यं नैव कर्तव्यं, तत्त्वज्ञैस्तदविशेषतः।।

(पंचाध्यायी, २/७३९)

नित्य एवं नैमित्तिक जिनबिम्ब-महोत्सव (पूजा आदि) में साधारण श्रावक को भी शिथिलता नहीं करनी चाहिए। तथा तत्त्व के जानकार व्यक्तियों को तो इस विषय में विशेष रूप से तत्पर रहना चाहिए।

निर्वाणकाण्ड (भाषा)

वीतराग वन्दौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहूँ काण्ड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय ॥

(चौपाई)

अष्टापद आदीश्वर स्वामि, वासुपूज्य चम्पापुरि नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, बन्दौं भाव-भगति उर धार॥

चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसमेद जिनेसुर बीस, भावसहित बन्दौं निश-दीस ॥

वरदत्तराय रु इन्द्र मुनिन्द, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि हूँठ[१] कोड़ि, बन्दौं भावसहित कर जोड़ि ॥
श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
शम्भु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसुपाय॥

रामचन्द के सुत द्वै वीर, लाडनरिन्द आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागढ़[२] बन्दौं निरधार॥

पाण्डव तीन द्रविड़-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्रीशत्रुंजयगिरि के सीस, भावसहित बन्दौं निश-दीस ॥

जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि औरहु भये।
श्री गजपन्थ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँ काल॥

राम हनू सुग्रीव सुडील, गव गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्याणव मुक्तिपयान, तुंगीगिरि वन्दौं धरि ध्यान॥

नंग-अनंगकुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्द्ध प्रमाण।
मुक्ति गये सोनागिरि शीश, ते बन्दौं त्रिभुवनपति ईस॥

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते बन्दौं धरि परम हुलास ॥

१. साढ़े तीन २. बड़ौदा के पास

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।
द्वै चक्री दश कामकुमार, हूँठ कोड़ि वन्दौं भव पार ॥

बड़वानी बड़नगर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते बन्दौं भव-सागर-तर्ण॥

सुवरणभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर शिखर मँझार।
चेलना नदी-तीर के पास, मुक्ति गये बन्दौं नित तास॥

फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिररूप ।
गुरुदत्तादि मुनीश्वर जहाँ, मुक्ति गए बन्दौं नित तहाँ॥

बालि महाबालि मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते बन्दौं नित सुरत सँभार॥
अचलापुर की दिशा ईसान, तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय ॥

वंशस्थल वन के ढिग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण देशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम॥

जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पांच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करूँ जोरि जुग पान ॥

समवसरण श्रीपार्श्व-जिनंद, रेसिन्दीगिरि नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते बन्दौं नित धरम-जिहाज ॥

मथुरापुर पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामीजी निर्वाण।
चरमकेवली पंचम काल, ते बन्दौं नित दीनदयाल॥

तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ ।
मन-वच-काय सहित सिरनाय, वन्दन करहिं भविक गुणगाय ॥

संवत् सतरह सौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल ।
'भैया' वन्दन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाणकाण्ड गुणमाल ॥

श्री भक्तामर स्तोत्र (संस्कृत)

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो-वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव-जले पततां जनानाम्॥१॥

यः संस्तुतः सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भुत-बुद्धि-पटुभिः सुर-लोक-नाथैः।
स्तोत्रैर्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारैः,
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥२॥

बुद्ध्या बिनापि विबुधार्चित-पाद-पीठ,
स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगत-त्रपोऽहम्।
बालं विहाय जल-संस्थितमिंदु-बिम्ब-
मन्यः क इच्छति जनः सहसा ग्रहीतुम्॥३॥

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र ! शशाङ्क-कान्तान्,
कस्ते क्षमः सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या ?
कल्पान्तकाल-पवनोद्धत्त-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतुमलमम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥४॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान् मुनीश !
कर्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्तः।
प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेन्द्रं,
नाभ्येति किं निज-शिशोः परिपालनार्थम्॥५॥

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी कुरुते बलान्माम्।

यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र -चारु-कलिका-निकरैक-हेतुः॥६॥

त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात् क्षयमुपैति शरीर-भाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वरमंधकारम्॥७॥

मत्त्वेति नाथ ! तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु
मुक्ता-फलद्युति-मुपैति ननूद-बिन्दुः॥८॥

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं,
त्वत् सङ्कथापि जगतां दुरितानि हन्ति।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि॥९॥

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण ! भूत-नाथ !
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥१०॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष-विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छेत्॥११॥

यैः शांत-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैक ललाम-भूत।
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥१२॥

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि,
नि:शेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।
बिम्बं कलङ्क-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाश-कल्पम्॥१३॥

सम्पूर्ण-मण्डल-शशाङ्क-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लङ्घयन्ति।
ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वर-नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम्॥१४॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशाङ्गनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता चलिताचलेन,
किं मन्दिराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित्॥१५॥

निर्धूम-वर्तिरपवर्जित-तैल-पूर:,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रगटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ ! जगत्प्रकाश:॥१६॥

नास्तं कदाचिदुपयासि न राहु-गम्य:,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभाव:,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र ! लोके॥१७॥

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशाङ्क-बिम्बम्॥१८॥

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा,
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ।
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रै:॥१९॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेज: स्फुरन्मणिषु याति यथा महत्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि॥२०॥

मन्ये वरं हरि-हरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्य:,
कश्चिन्मनो हरति नाथ भवान्तरेऽपि॥२१॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्त्र-रश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्॥२२॥

त्वामामनन्ति मुनय: परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमस: पुरस्तात्।
त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्य: शिव: शिवपदस्य मुनीन्द्र ! पन्था:॥२३॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं
ब्रह्माणमीश्वरमनन्तमनङ्ग-केतुम्।
योगीश्वरं विदित-योगमनेकमेकं,
ज्ञान-स्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्त:॥२४॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।
धातासि धीर शिव-मार्गविधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥२५॥

तुभ्यं नमस्त्रिभुवनार्तिहराय नाथ,
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।
तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन ! भवोदधि-शोषणाय ॥२६॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै-
स्त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश।
दोषैरुपात्तविविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नान्तरेऽपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥२७॥

उच्चैरशोकतरु-संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥२८॥

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशुलता-वितानं,
तुङ्गोदयाद्रिशिरसीव सहस्र-रश्मेः ॥२९॥

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क-शुचिनिर्झर-वारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥३०॥

छत्र-त्रयं तव विभाति शशाङ्क-कान्त-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।
मुक्ताफल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभम्,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥३१॥

गम्भीर-तार-रवपूरित-दिग्विभाग-
स्त्रैलोक्य-लोक-शुभ-सङ्गम-भूति-दक्षः।
सद्धर्मराज-जय-घोषण-घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥३२॥

मन्दार-सुन्दर-नमेरु-सुपारिजात-
सन्तानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा।
गन्धोद-बिन्दु-शुभ-मन्द-मरुत्प्रयाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते,
लोक-त्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोम-सौम्याम् ॥३४॥

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्य-ध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥३५॥

उन्निद्र-हेम-नव-पङ्कज-पुञ्ज-कान्ती,
पर्युलसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥३६॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र !
धर्मोपदेशन-विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृत: प्रहतांधकारा,
तादृक्कुतो ग्रह-गणस्य विकासिनोऽपि॥३७॥

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद्भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभमिभमुद्धतमापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानाम्॥३८॥

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकरभूषित-भूमि-भाग:।
बद्ध-क्रम: क्रम-गतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते॥३९॥

कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्जवलमुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम्॥४०॥

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेन निरस्त-शङ्क-
स्त्वन्नाम-नाग-दमनी हृदि यस्य पुंस:॥४१॥

वल्गत्तुरङ्ग-गज-गर्जित-भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपिभूपतीनाम्।
उद्यद्दिवाकर-मयूख-शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति॥४२॥

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार-तरणातुर-योध-भीमे।
युद्धे जयं विजित-दुर्जय-जेय-पक्षा-
स्त्वत्पाद-पङ्कज-वनाश्रयिणो लभन्ते॥४३॥

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण-नक्र-चक्र-
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ।
रंगत्तरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रा-
स्त्रासं विहाय भवत: स्मरणाद् व्रजन्ति॥४४॥

उद्भूत-भीषण-जलोदर-भार-भुग्ना:,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशा:।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोमृत-दिग्ध देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपा:॥४५॥

आपाद-कण्ठमुरु-शृङ्खल-वेष्टिताङ्गा,
गाढं बृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जङ्घा।
त्वन्नाम मन्त्रमनिशं मनुजा: स्मरन्त:,
सद्य: स्वयं विगत-बन्ध-भया भवन्ति॥४६॥

मत्तद्विपेन्द्र-मृगराज-दवानलाहि-
सङ्ग्राम-वारिधिमहोदर-बन्धनोत्थम्।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते॥४७॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर- वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कण्ठ गतामजस्रं,
तं मानतुङ्गमवशा समुपैति लक्ष्मी:॥४८॥